विश्व-जननी

श्री श्री आनन्दमयी माँ

(उनकी संक्षिप्त जीवनी एवं शिक्षण)



श्री श्री आनन्दमयी माँ



श्री श्री आनन्दमयी माँ

विश्व-जननी

श्री श्री आनन्दमयी माँ

(उनकी संक्षिप्त जीवनी एवं शिक्षण)

प्रकाशक
श्री श्री आनन्दमयी संघ
कनखल, हरिद्वार (उत्तराखण्ड) - 24908

लेखक एवं सम्पादक
सोमेश चन्द्र बनर्जी

हिन्दी भाषा में अनुवाद
माधव चतुर्वेदी

प्रथम संस्करण - वर्ष 2016
मूल्य - रु 100/-

ISBN – 81-89558-33-1

मुद्रकः
हिन्दू इलैक्ट्रिक प्रेस
ललतारोपुल, हरिद्वार
मोबा. : 9927015136, 9634077776

पुस्तक की उपलब्धिता - श्री श्री आनन्दमयी आश्रमों में

भूमिका

श्री श्री माँ एक ईश्वरीय विभूति थीं। उनमें निखिल ब्रह्माण्ड की सारी लौकिक शक्तियां पूर्ण रूप से विद्यमान थीं और उससे परे की भी।

प्रख्यात दिवंगत विद्वान एवं ज्ञानी पद्म विभूषण एवं महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज जी ने अपने आलेख में माँ के बारे में लिखा था-"माँ का वास्तविक परिचय जानने का प्रयास असंभव सा है। माँ कौन हैं, माँ का स्वरूप क्या है - इन सब गहरे विषयों की मीमांसा हम जैसे अल्पज्ञान के शिशु के लिए सम्भव नहीं है। शिशु का जन्म नहीं हुआ था तब भी माँ थीं, जब शिशु नहीं रहेंगे तब भी माँ रहेंगी। माँ शुद्ध सनातनी हैं। सभी देवताओं तथा सभी जीवों के प्राणस्वरूप जो आद्याशक्ति हैं, उन्हें कौन समझ सकता है? माँ का स्वरूप भावातीत है - महाभावरूपिणी माँ अनन्त प्रकार से अनन्त भावों का समन्वय एवं उत्स होते हुए भी समस्त भावों के अतीत हैं। माँ के इस तुर्यातीत रूप को ग्रहण करने में कौन समर्थ है? जो उन्हें देखता है या समझता है, उसके निकट उसी भाव से प्रतिभास होती हैं। माँ को मनुष्य कहने से उन्हें छोटा किया नहीं जा सकता है और अवतार अथवा नित्य सिद्ध कहकर स्तुति करने से भी उनकी उच्चता व्यक्त नहीं होती है। उनके लिए छोटा या बड़ा, स्तुति या निन्दा, दोनों ही समान हैं। माँ को समझने के लिए माँ में आत्मसमर्पण कर उनमें एकाग्रता लाभ करना आवश्यक है - माँ से अलग होकर माँ को समझना संभव नहीं है।"

जागतिक दृष्टि से माँ की शिक्षा लगभग नहीं के बराबर थी। किन्तु ऊंची से ऊंची दार्शनिक अवधारणाओं और आध्यात्मिक अनुभूतियों पर उनके वचन सुनकर अत्यंत सुविज्ञ लोग, साधु-संतों और माँ के सम्पर्क में आने वाले लोग विस्मित हो जाते थे। माँ कभी प्रवचन नहीं देती थीं। यद्यपि वे श्रद्धालुओं का मार्गनिर्देशन उनके स्वयं के संस्कारों एवं उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप करती थीं। उन्होंने किसी नये सम्प्रदाय का गठन नहीं किया। यद्यपि दुर्लभ मामलों को छोड़ दें तो वह किसी को दीक्षा भी नहीं देती थीं। यही कारण था कि विभिन्न सम्प्रदायों के श्रद्धालु बिना किसी झिझक के उनके समीप आते थे। विभिन्न धर्मो - हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध, पारसी आदि श्रद्धालु उनके पास मार्गनिर्देशन और उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए आते थे। माँ अपने कृपामय स्वभाव के वशीभूत सदैव उनके सन्देहों और प्रश्नों का निराकरण करती थीं। साथ ही उनकी समस्याओं का ऐसा हल निकालती थीं जो उनके पथ के अनुकूल होता था।

माँ और उनके वचनों पर बहुत से पुस्तकें लिखी गई हैं जिनमें से कुछ

तो अनेक खण्डों में प्रकाशित हुई हैं। तथापि इस बात को अनुभव किया गया कि ऐसे लोग जो माँ के बारे में नहीं जानते हैं तथा उनके एवं उनकी शिक्षाओं के बारे में जानना चाहते हैं, उनके लिए माँ का संक्षिप्त जीवनवृत्त एक ही पुस्तक में संकलित किया जाए।

मेरे द्वारा एक अंग्रेजी भाषा में लिखी गई पुस्तक "द युनिवर्सल मदर, श्री श्री माँ आनन्दमयी - ए शर्ट लाइफ स्केच एण्ड हर टीचिंग्स" सन् 2013 में प्रकाशित की गयी थी जो यथासंभव सरल अंग्रेजी भाषा में लिखी गई थी। वह पुस्तक विशेषकर अंग्रेजी भाषा के जाननेवाले एवं विदेशी भक्तों में यथेष्ट जनप्रिय हो चुकी है। अब उस अंग्रेजी भाषा में लिखी गई मूल पुस्तक को हिन्दी भाषा में अनुवाद कर प्रकाशित किया जा रहा है। इस पुस्तक में श्री श्री माँ की कुछ और लीला कथाओं एवं साधकों के कर्तव्य तथा उनके लिए बाधा एवं विघ्न के विषय में श्रद्धेय भाईजी द्वारा संकलित माँ की कुछ उपयोगी वाणी भी सम्मिलित की गई हैं जिन्हें मूल अंग्रेजी पुस्तक में सम्मिलित नहीं किया जा सका था।

हिन्दी भाषा में अनुवाद करने के लिए श्री माधव चतुर्वेदी जो समाचार एजेंसी पीटीआई भाषा के वरिष्ठ पत्रकार हैं और संसद को कवर करते हैं, हम उनका अत्यधिक आभार व्यक्त करते हैं। उन्होने सरल भाषा में जिस प्रकार अनुवाद किया उससे अल्प शिक्षित व्यक्तियों को भी श्री श्री माँ आनन्दमयी की लीलापूर्ण जीवनी समझने में असुविधा नही होगी। इस निःशुल्क अनुवाद कार्य करने में माधव जी का आग्रह प्रशंसनीय है। अब वह स्वयं माँ के विशेष भक्त हो गये हैं। माँ उन पर कृपा बरसायें यही माँ से प्रार्थना है। विन्ध्याचल आश्रम के स्वामी चेतनानन्दजी ने ही इस पुस्तक के अनुवाद कार्य में अग्रणी होकर श्री माधव चतुर्वेदी से मिला दिया था जिसके लिए मै उनका भी आभार व्यक्त करता हूं। यदि इस पुस्तक के आलेख में अथवा छपाई में कोई त्रुटि रह गई हो तो मातृभक्त मुझे क्षमा करेंगे।

माँ को हमारा सादर प्रणाम। जय माँ।

सोमेश चन्द्र बनर्जी
प्राक्तन जनरल सेक्रेटरी,
श्री श्री आनन्दमयी संघ
कनखल हरिद्वार-249408

19.7.2016
गुरु पूर्णिमा

हिन्दी अनुवाद के बारे में दो शब्द

श्री श्री माँ का चरित्र इतना भव्य एवं आकर्षक है कि उसके बारे में जितना सुनो-पढ़ो, मन नहीं भरता। माँ के शरीर में रहते उनके प्रति देश-विदेश में जो आकर्षण था, वह आज भी कम नहीं हुआ है। हम जैसे कई लोग और आने वाली पीढ़ियां जिनको माँ के स्थूल दर्शन का सौभाग्य नहीं मिला है, उन पर भी माँ की कृपा यथावत बनी हुई है। इसलिए उनसे सम्बन्धित पुस्तकों का महत्व बहुत बढ़ जाता है।

माँ के बारे में भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में कई पुस्तकें लिखी गई हैं। माँ से सम्बन्धित प्रत्येक पुस्तक का अपना वैशिष्ट है। प्रस्तुत कृति मूल रूप में अंग्रेजी में लिखी गई है। इस पुस्तक के लेखक श्री श्री आनन्दमयी संघ के पूर्व जनरल सेक्रेटरी आदरणीय सोमेश चन्द्र बनर्जी (सोमूदा) ने जब मुझसे इस पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद करने के लिए कहा तो लगा कि उन्होंने मेरे मन की ही बात कह दी। पुस्तक के प्रारंभिक कुछ पृष्ठों का अनुवाद मैंने माँ आनन्दमयी आश्रम, कनखल में रहकर किया। अनुवाद कार्य प्रारम्भ करने से पहले ''सोमूदा'' ने मुझे पूरे उत्साह के साथ पूरा कनखल आश्रम स्वयं दिखाया, विशेषकर अतिरुद्र यज्ञशाला। साथ ही वे इन स्थलों के विशेषताओं सम्बन्धित तमाम पहलुओं को भी बताते रहे। उस समय मुझे लगा कि यह सब बताने की क्या आवश्यकता है? किन्तु पुस्तक का अनुवाद करते समय कई ऐसे प्रसंग थे जिनका अनुवाद करने में उनके द्वारा दी गई मौखिक सूचनाओं से मुझे बहुत आसानी हुई।

मुझे इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यही लगी कि इसकी भाषा गंगाजल की तरह प्रवाहमान एवं निर्मल है। माँ के जीवन के विभिन्न प्रसंगों, माँ के सभी आश्रमों से जुड़े कम ज्ञात तथ्यों, माँ के वचनों तथा अन्य महत्वपूर्ण सूचनाओं को इसमें विद्वता के आग्रह के बिना पिरोया गया है। ''सोमूदा'' को किशोर अवस्था से ही लम्बे समय तक माँ का संग मिलने का सौभाग्य मिला। वह उत्तर प्रदेश सरकार के अधीनस्थ चीफ इंजीनियर एवं उत्तराखण्ड सरकार के विभागध्यक्ष एवं एडवाइजर थे। संभवतः इस पेशे ने उन्हें छोटे-छोटे ब्यौरों के प्रति सजग रहने की दृष्टि दी थी। इस पुस्तक में उनकी यही दृष्टि पाठक महसूस करेंगे।

इस पुस्तक की उपयोगिता इस बात को लेकर भी है कि इसमें

आध्यात्मिक प्रगति के इच्छुक साधकों एवं सामान्य गृहस्थों को ध्यान में रखते हुए माँ के उपदेशों, शिक्षा एवं मार्गदर्शन को संकलित किया गया है। माँ के आश्रम में दीक्षा प्रक्रिया, संयम सप्ताह, साधकों के लिए भोजन का महत्व एवं आध्यात्मिक मार्गदर्शन आदि विषय ऐसे हैं जो न केवल सामान्य व्यक्तियों की जिज्ञासाओं को शांत करेंगे बल्कि गंभीर साधकों के आध्यात्मिक यात्रा में सहायक बनेंगे।

माँ ने अपनी सभी संतानों को आश्वासन दे रखा है-"अपनी शक्ति के अनुसार तो तुम कार्य करो, उसके बाद जितना बाकी रहेगा, मैं पूर्ण कर दूंगी - अरे, माँ पूर्ण कर देंगी।" माँ के इस आश्वासन को ध्यान में रखते हुए यह गुरुतर कार्य मैंने अपने हाथ में लिया है। यदि अनुवाद में कोई त्रुटि रह गई हो तो मातृभक्त मुझे क्षमा करेंगे। इसी उम्मीद के साथ....

जय माँ

माधव चतुर्वेदी

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

अध्याय-प्रथम

विश्व जननी श्री श्री आनन्दमयी माँ इस जगत में 19वीं शताब्दी के अंत में प्रकट हुई थीं। उनका जन्म 30 अप्रैल 1896 (19 वैसाख) बृहस्पतिवार को ब्राह्म मुहूर्त में सुबह लगभग साढ़े तीन बजे हुआ था। भारतीय पंचाग के अनुसार उनका जन्म वैशाख माह के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी तिथि में हुआ था। उनका जन्म पूर्वी बंगाल (अब बांग्लादेश) के कुमिल्ला जिले में दूरदराज के एक छोटे-से गांव 'खेवड़ा' के एक पवित्र एवं कर्मकाण्डी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता श्री बिपिन बिहारी भट्टाचार्य ईश्वर में सच्ची आस्था रखने वाले एक उच्चकोटि के भक्त थे। उनकी माता मोक्षदा सुन्दरी देवी, संतों के विभिन्न गुण युक्त, सहिष्णुता, शांति, धैर्य और दया की साक्षात् मूर्ति थीं। उन्होंने अपनी सुन्दर कांतिमयी बालिका का नाम रखा निर्मला सुन्दरी देवी।

श्री श्री माँ के अभिभावक

निर्मला (श्री माँ) के पिता बिपिन बिहारी जी विद्याकूट ग्राम के प्रख्यात 'कश्यप' गोत्र के ब्राह्मण थे। इस वंश के इतिहास में कितने युग-युग अतीत, पूर्व पुरुषों में एक को अपने गुरु प्रदत्त संयोग से सम्पूर्ण प्रकाश एवं आत्म साक्षात्कार हुआ था। तब से इस वंश में कुलविग्रह 'श्री श्री राज राजेश्वर' शालिग्राम शिला की सेवा-पूजा चलती आ रही है। वर्तमान में वाराणसी आश्रम में स्थित माँ अन्नपूर्णा मन्दिर में इस शालिग्राम शिला की नित्य पूजा होती है।

बिपिन बिहारी जी ने प्राचीन गुरु परम्परा की 'गुरुधारा' पूरी तरह अर्जित की थी। इस परम्परा में विश्वास किया जाता है कि गुरु ही वह शक्ति होती है जो कृपा करती है और शिष्य के सुप्त आध्यात्मिक भाव को जाग्रत कर देती है। यहां तो न जाने किस युग से महाऋषितुल्य क्रमगति में वह थे 'गुरु कुमार'। इस परिवार ने अपने को ऋषिकुल जीवनशैली के अनुरूप ढाल लिया था जिसमें किसी प्राचीन ऋषि की तरह जीवन यापन किया जाता है। यह जीवन शुद्धता, संयम और आध्यात्मिक मूल्यों से परिपूर्ण रहता था। इस परिवार में कई पीढ़ियों से यही जीवनशैली चली आ रही थी।

बिपिन बिहारी जी की मानसिक दशा अधिकतर समय ईश्वरमयी

अवस्था में रहती थी। वह संसार और उसकी समस्याओं के प्रति सदा बेसुध रहते थे। वह एक ऐसे उच्चस्तरीय गायक थे जिनकी आवाज बहुत हृदयस्पर्शी व सुरीली थी। उन्हें भगवद् नाम संकीर्तन और भजन गाना बहुत प्रिय था। उनके समकालीन प्रख्यात संगीतकार भी उनके सुरीले गायन की सराहना करते थे। वह प्राय: अपने परिवार से दूर रहकर कीर्तन दल के साथ जगह-जगह घूमते थे। उस दशा में उनकी स्थिति पूरी तरह विरक्त महात्मा जैसी होती थी और पारिवारिक मामलों के प्रति उनकी कोई सुध नहीं रहती थी।

माँ के इस संसार में प्रकट होने से पहले बिपिन बिहारी जी ने करीब तीन वर्ष तक 'रमता जोगी' जैसा जीवन बिताया। तथापि माँ के जन्म से कुछ पहले गांववालों ने उन्हें तलाशा और उन्हें अपने साथ लिवाकर लाए एवं परिवार के साथ रहने को मजबूर किया। वे परिवार के साथ रहते हुए भी पारिवारिक जीवन से विरक्त बने रहते, विशेषकर जब वे कीर्तन कर रहे हों। एक बार वे मध्य रात्रि तक कीर्तन में इतने मगन थे कि उसी समय आए तूफान में उनके कमरे की टिन की छत उड़ गई और इसकी उन्हें कुछ भी सुध नहीं थी। बारिश में उनके कपड़े और बिस्तर पूरी तरह गीले हो गए थे किन्तु फिर भी वे बेसुध ही रहे। बाद में उन्हे तब होश आया जब पत्नी मोक्षदा उनके कमरे में जाकर उन्हे धक्का देकर चारों ओर हो रही घटनाओं के प्रति उनका ध्यान दिलाया। गायन के अलावा उन्हें विभिन्न वाद्य यंत्र जैसे इकतारा, वीणा, वायलिन, सरोद एवं सितार बजाने में विशेष दक्षता थी। हालांकि इसके लिए उन्होंने कोई विशेष प्रशिक्षण नहीं लिया था और स्वयं ही इन्हें बजाना सीखा था।

माता मोक्षदा सुल्तानपुर के एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार की थीं। उनके पूर्वजों का जीवन और आचरण भी ऋषियों की तरह था। उनके परिवार में कई पीढ़ियों से उत्कृष्ट विद्वानों का जन्म हुआ था। मोक्षदा देवी के पिता श्री रमाकान्त भट्टाचार्य त्रिपुरा नरेश के सभा पण्डितों में से एक थे। माता मोक्षदा तो अति सुशीला थीं। धरती माता की सहनशीलता उनमें निहित थी। स्वभाव में सज्जन और सरल होने के साथ-साथ वे भीतर से बहुत संतुष्ट रहती थीं। सत्य के प्रति उनकी अविचल निष्ठा थी और यही उनका सहज स्वभाव था। उनके भीतर तनिक भी क्रोध नहीं था। गरीबों और पीड़ितों के प्रति उनके भीतर अनुकरणीय करुणा थी। माता मोक्षदा के पास

गृहस्थी चलाने के साधन बहुत सीमित थे तथा लगभग विपन्नता की स्थिति थी, पर उन्हें इस बात की तनिक परवाह न थी। वास्तव में वे हृदय से पूरी तरह सम्पन्न थीं और हर परिस्थिति में संतुष्ट रहती थीं। स्वयं अनाहार रहकर भी अपना भोजन अतिथि को खिलाकर प्रसन्न होती थीं। एक गृहिणी के रूप में वह इतनी कुशल थीं कि सीमित साधन होने और लगभग विपन्नता की स्थिति होने के बावजूद उनके परिवार का कोई भी व्यक्ति बिना भोजन के नहीं रहता था। उनका तौर-तरीका और प्रबंन्ध कौशल अनूठा था। पिता बिपिन बिहारी और माता मोक्षदा, दोनों ने ऋषियों की जीवन शैली को ग्रहण किया था। इस तरह के उच्च आध्यात्मिक परिवार में माँ प्रकट हुई थीं। आगे चलकर माँ के श्रद्धालुओं ने उनके पिता को 'दादामोशाय' एवं माता को 'दीदीमा ' कहना प्रारम्भ कर दिया था।

माँ का संसार में आविर्भाव और उनका बाल्यकाल

बिपिन बिहारी जी की माता त्रिपुरा सुन्दरी देवी का ननिहाल खेवड़ा ग्राम में था। वे अपने माता-पिता की एकमात्र सन्तान थीं। इस कारण वे उनकी संपत्ति की कानूनी उत्तराधिकारी भी थीं। बिपिन बिहारी जी के पिता श्री त्रिलोचन भट्टाचार्य के निधन के बाद बिपिन बिहारी जी अपनी पत्नी एवं मां के साथ अपने पैतृक गांव विद्याकूट से अपने माता के ननिहाल 'खेवड़ा' ग्राम चले आए थे। इस दम्पति की पहली सन्तान एक पुत्री हुई जो जन्म लेने के नौ माह बाद चल बसी। इसके पश्चात श्री श्री माँ का खेवड़ा ग्राम में जन्म हुआ।

माता मोक्षदा स्वभाव से बहुत धर्मपरायण थीं। माँ के गर्भ में आने की अनुभूति से पहले माता मोक्षदा को कई बार देवी-देवताओं के प्रत्यक्ष या स्वप्न में दर्शन हुए। गर्भावस्था में एक दिन माता मोक्षदा अपने कमरे में पूरी तरह जाग्रत अवस्था में बैठी थीं। तभी उन्होंने एक दिव्य महिला को देखा जो लाल किनारे वाली साड़ी पहनी हुई थी और उनके सिर पर पल्लू था। उन्होंने मोक्षदा को मंगल द्रव्य रखे हुए एक सूप दिया जिसे 'वरणकुला' कहते हैं। बंगाल में इसे देव-देवीओं के वरण (आवाहन) के समय उपयोग किया जाता है। यह सूप देने के बाद वह महिला वहीं अदृश्य हो गयीं।

इसके बाद से माता मोक्षदा इस वरणकुला का उपयोग केवल तभी

करती थीं जब उन्हें देवी-देवताओं, अवतारों, ऋषियों और मुनियों के दर्शन होते थे। वे सभी उनके सामने 'पूर्ण ज्योति' सहित्त प्रकट हुआ करते थे। माता मोक्षदा ने बाद में बताया, "जिन अवतारों आदि के दर्शन होते थे, वे सब उन स्वरूपों में आने वाली तुम्हारी माँ ही थीं।" वे जिस स्थान पर प्रकट होते थे, उसी स्थान पर अंतर्ध्यान हो जाते थे। माता मोक्षदा ने कभी भी किसी को बाहर से आते या जाते हुए नहीं देखा। माँ के जन्म के बाद भी उन्हें कुछ समय तक इस प्रकार के दर्शन होते रहे। उन दिनों माता मोक्षदा के शरीर की आभा दिव्य थी। उन्हें देखने वाले लोग प्रायः विस्मय से कह उठते थे- हे भगवान! कितनी सुन्दर कांति निकल रही है?

इस ईश्वरीय शिशु के जन्म के साथ ही पूरे गांव के वातावरण में कुछ अद्‌भुत अथवा कहा जाए तो अप्राकृतिक परिवर्तन होने लगे। बालिका के प्रसव के समय माता मोक्षदा को कोई पीड़ा नहीं हुई और वह शिशु सामान्य नवजात शिशुओं की तरह रोयी भी नहीं। इस सुन्दर बालिका से निकलने वाली कांति को देखकर सारी चिन्ताएं मिट जाती थीं। इसके बदले प्रसन्नता एवं विश्वास का भाव जाग जाता। माँ ने बाद में अपने जन्म के बारे में खुलासा किया कि इस संसार में उनका आगमन स्वयं स्वतःप्रकाश के कारण हुआ है। अन्य बच्चों की तरह माता-पिता के संयोग से उनका जन्म नहीं हुआ था।

माँ के जन्म के पहले चूंकि उनके परिवार में एक बच्ची का निधन हो चुका था, इसलिए माता मोक्षदा इस बच्ची को लगभग अठारह महीने तक प्रति दिन सुबह के समय तुलसी के पौधे के नीचे थोड़ी देर लेटाकर ले आती थीं। वे तुलसी माता से इस बच्ची की दीर्घायु की कामना करती थीं। आश्चर्यजनक ढंग से बाद में इस बालिका ने स्वयं ही इस क्रम को जारी रखा और वह प्रति दिन तुलसी के पौधों के समक्ष स्वयं ही लोटपोट हो जाया करती थी।

जब बालिका निर्मला नौ माह की हुई तो एक आश्चर्यजनक घटना हुई। उस समय माता मोक्षदा और परिवार कुछ समय के लिए अपने पैतृक गांव विद्याकूट आये थे । एक दिन माता मोक्षदा भले ही अपने कामों में व्यस्त थीं किन्तु उनका ध्यान बालिका में ही लगा हुआ था। अचानक उन्होंने महसूस किया कि एक असाधारण तेजयुक्त दिव्य वेषधारी महात्मा

प्रकट हुए। वे बालिका निर्मला के अत्यन्त समीप खड़े हुए थे। माता मोक्षदा भी वहां आ गयीं और बालिका के पीछे खड़ी हो गयीं। बालिका घुटने के बल उस दिव्य पुरुष के पास पहुंची और उनकी ओर देखकर हंसने लगी मानों कितना प्राना परिचय और अपनापन हो। महात्मा ने इस दिव्य शिशु के पूरे शरीर को बहुत ही ध्यान से देखा। फिर वे वहीं स्थिर ध्यानस्थ भाव से बैठ गए। महात्मा ने न जाने बालिका में क्या अद्भुत देखा कि उन्होंने उसे उठाकर उसके चरणों का स्पर्श अपने मस्तक पर किया। फिर निर्मला को पास बैठाकर पूजा की मुद्रा में मंत्रोच्चारण करते हुए कुछ क्रियाएं पूर्ण कीं। उनका प्रणाम करने का ढंग ऐसा था मानों उन्होंने अपने को लुटा दिया हो। अन्त में बालिका को माता मोक्षदा की गोद में देते हुए कहा-"इन्हें जो देख रही हो यह 'माँ' हैं, स्त्री-पुरुषों में नहीं, विश्वातीत में हैं। उसे घर में रख नहीं सकोगी, रहेगी भी नहीं।" इतना कहकर वे अचानक अदृश्य हो गए। जहां से प्रकाश का उद्भव हुआ था, वहीं उसका अंतर्ध्यान हो गया। उन्होंने ही बालिका निर्मला को पहली बार "माँ" सम्बोधित कर विश्व में उनकी पहचान का खुलासा किया था। किन्तु वे महात्मा कौन थे? जिनके ख्याल से वे इस रूप में प्रकट हुए, वे ही जानें!

माता मोक्षदा कई बार गांव में होने वाले हरिनाम कीर्तन में भाग लेने जाया करती थीं। ऐसे अवसरों पर वह नन्हीं निर्मला को भी गोद में उठाकर अपने साथ ले जाया करती थीं। हरिनाम कान से सुनाई देते ही नन्हीं निर्मला का शरीर स्थिर हो जाता था और वह समाधिस्थ हो जाती थी। नन्हीं बालिका को सामान्य अवस्था में लाने के लिए माता मोक्षदा उसे कई बार थपथपाकर उठाने का प्रयास करती थीं। आसपास के लोग बालिका के इस असामान्य व्यवहार को समझ नहीं पाते थे। बाद में माँ ने प्रकाश किया था "शरीर की एक अस्वाभाविक अवस्था (समाधि) हो जाती थी। कमरा अन्धेरा - पिता माता कोई भी देख न सका और भीतर भी एक ऐसा भाव रहता कि कोई देखने न पाए। इसीलिए शायद गुप्त रूप में ही रह जाता।"

पैतृक गांव विद्याकूट में नन्हीं निर्मला प्रायः एक कटोरी लेकर छाछ खाने ताईजी के पास पहुंच जाती थी, जब वह मथनी से दही मथन कर माखन निकालती थी। एक दिन ताईजी ने दही मथना प्रारम्भ ही किया था कि निर्मला पहुंच गई। ताईजी झल्लाकर बोली कि रोज छाछ लेने पहुंच

जाती है - जा, आज छाछ नहीं मिलेगा। इतनी बात कहते ही ताईजी देखती हैं कि मिट्‌टी से बनी मथनी का घड़ा अपने आप एकाएक फूट गया और दही भूमि पर फैलने लगा। ताईजी को समझ में नहीं आया कि ऐसा हुआ कैसे? टूटे घड़े में से कुछ दही देकर उस दिन उन्होंने निर्मला को बिदा किया। आगे से वे नन्हीं निर्मला को पहले छाछ देकर ही माखन निकालती थी।

माता मोक्षदा जब इस बालिका को खाना खिलाती थीं तो वे प्रायः यह पाती थीं कि बच्ची कहीं गुमसुम है। माता उसके मुंह में भोजन का ग्रास रख देती किन्तु बालिका ऊपर की ओर तब तक ताकती रहती जब तक कि माता उसे थपथपाते हुए यह नहीं कहती-"तुम खाने के लिए बैठी हो लेकिन खा नहीं रही। तुम ऊपर क्या ताकती रहती हो?" ऐसे अवसरों पर नन्हीं निर्मला चुप्पी साधे रखती थी। बाद में माँ ने खुलासा किया कि उस समय वह देखती थी कि कितने देवी-देवतायें आ और जा रहे हैं। ऐसी बहुत से असामान्य व्यवहार हुए जिस कारण लोग विस्मित हो जाते थे। लोग यह नहीं समझ पाते थे कि यह सब कैसे हुआ? तथापि सभी लोग बालिका निर्मला से प्रेम करते थे। उसके अंदर से प्रसन्नता फूटती रहती थी और जो भी उसके सम्पर्क मे आता वह उसके लिए आनन्द का स्रोत बन जाती।

अपने छोटे मामा के घर में दुर्गा पूजा त्योहार के समय छह वर्ष की आयु में बालिका निर्मला को देवी के कन्या स्वरूप में पूजा की गई थी। उसी समय मामाजी देखकर आश्चर्य चकित हो गए कि निर्मला एक तरह से समाधि में चली गई और उसके मुंह से अपने आप कुछ मंत्रों का उच्चारण होने लगा। जब मामा ने इस बारे में प्रश्न पूछे तो निर्मला मौन रही।

निर्मला के बचपन में खेलने की उसकी पसंदीदा सखी उसकी अपनी दादी ही थी, जो एक 'परम योगिनी' थीं। उन्हें वह 'ठाकुरमा' कहकर बुलाती थी। दादी ने समीप के गांव कसबा के काली मंदिर में बिपिन बिहारी को पुत्र रत्न प्राप्ति की मनोकामना के लिए अत्यन्त विश्वास के साथ पूजा की थी। किन्तु जब मनोकामना मांगने की बारी आयी तो उनके मुंह से निकला-"बिपिन के एक पुत्री हो।" इसी के बाद परिवार में निर्मला का आगमन हुआ।

निर्मला की स्कूली शिक्षा कभी नियमित नहीं रही। उसे घर के कामकाज में हाथ बंटाना पड़ता। इसके अतिरिक्त स्कूल उसके घर से

पर्याप्त दूर था। जिस कारण उसे स्कूल तक छोड़ने के लिए या साथ में जाने वाले किसी व्यक्ति की आवश्यकता पड़ती जो प्रतिदिन सुलभ नहीं हो पाता था। वास्तव में कहा जाए तो निर्मला की स्कूली शिक्षा अग्रसर होने के बजाय अधिकतर बाधित ही रही और केवल छोटी सी अवधि में ही सम्भव हो सकी। इस अवधि में भी वह स्कूल में उपस्थित रहने की जगह अधिकतर अनुपस्थित ही रहती थी। स्कूल के अध्यापक इस बालिका की तीक्ष्ण बुद्धि से यथेष्ट प्रभावित रहते थे। अपने स्कूली दिनों की चर्चा करते हुए माँ ने एक बार कहा था कि यद्यपि वे परीक्षा के लिए समुचित अध्ययन नहीं कर पाती थीं परन्तु अध्यापक जिन प्रश्नों को पूछते थे वे उनका सही उत्तर देती थीं। अध्यापक उनके उत्तरों से बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें अगली कक्षा में प्रोन्नत कर दिया। बाद में उनकी स्कूली शिक्षा विभिन्न पारिवारिक समस्याओं के कारण आगे जारी नहीं रह सकी।

निर्मला एक सामान्य बालिका की तरह सबसे व्यवहार करती थी। उसके काम करने के ढंग को देखकर बड़े भी लज्जित हो जाते थे। सिलाई, कढ़ाई, रसोई एवं बेंत के काम वह अपने भाव से नये-नये ढंग से करती थी। वह जो भी करती उसमें कुछ नया और अनूठापन होता। उसे इन कामों को करते देख लोग दंग हो जाते थे।

निर्मला बहुत लोकप्रिय थी और मित्रों के बीच उसकी सदा मांग रहती थी। उनकी हमेशा यह मंशा रहती थी कि वे जब भी खेलें, निर्मला उनके साथ रहे क्योंकि उसकी उपस्थिति उन्हें बहुत भाती थी। यही नहीं, पशु-पक्षी, गाय-बछड़े भी आकर्षित होकर उसकी ओर खिंचे चले आते थे। मैदान में बच्चों संग खेलते समय यह देखा जाता था कि मैदान में अन्यत्र चर रही गायें भी निर्मला को देखकर उसके पास स्वयं आ जाती थीं। गायों के इस व्यवहार को देखकर साथ खेल रहे बच्चे हंसी-मजाक करते। निर्मला हंसते हुए चींखती परन्तु कभी गायों को अपने से दूर नहीं भगाती।

माँ के सहोदर भाई एवं बहनें

निर्मला (श्री माँ) अपने अभिभावकों की आठ में से दूसरी संतान थीं। निर्मला के बाद तीन भाइयों का जन्म हुआ। एक बड़ी बहन के रूप में निर्मला अपनी छोटे भाइयों के बहुत समीप थीं। वे उनके साथ खेलती

थीं और किसी भी माता की तरह उनकी देखभाल भी किया करती थीं। किन्तु निर्मला जब मात्र आठ वर्ष की थीं तो छह माह के भीतर उनके सभी भाइयों का एक-एक करके निधन हो गया।

इन तीनों भाइयों में काली प्रसन्न सबसे बड़े थे। लगभग छह वर्ष की आयु वाले उनके यह भाई बहुत कमजोर और प्रायः बीमार रहते थे। एक बार निर्मला के अपने मामा के घर जाने का प्रस्ताव आया। उनके यह भाई ने कहा कि वह अभी नहीं जाएं बल्कि उनकी मृत्यु के बाद जाए। एक रात काली प्रसन्न की तबीयत बहुत बिगड़ गई। जब उनके पिता बिपिन बिहारी जी ने उसके स्वास्थ्य के बारे में पूछा तो उसने कहा कि वह अब और नहीं जी पाएगा। ऐसा लग रहा था कि उसका अंत निश्चित है। सुबह के समय उसे बहुत कठिनाई से सांस लेते हुए पाया गया और लग रहा था कि उसके प्राण छूट रहे हैं। सामान्य ग्रामीण परम्परा के अनुरूप उसे घर के बाहर आंगन में लाकर लिटाया गया। वहां आकर उसने अपनी अंतिम सांस ली और उसकी देह को वस्त्र से ढंक दिया गया।

लगभग आठ वर्ष की बालिका निर्मला वहीं खड़ी थी और सब कुछ देख रही थी। उसी समय उसके मन में ख्याल आया - ऐसा भी तो हो सकता है कि उसके भाई में फिर से प्राण संचार हो जाए और उसे फिर से कमरे में ले जाया जाए तथा वह कुछ खाये और अपनी रो रही माता मोक्षदा से कुछ बातें करे। जैसे ही निर्मला के मन में यह विचार आया, तत्क्षण प्राणहीन देह में प्राणों का पुनः संचार हुआ और उसने अपनी आंखें खोल दी। इसके तुरंत बाद काली प्रसन्न को घर के भीतर ले जाया गया। इस पूरी अवधि में नन्हीं निर्मला शांत खड़ी सब देखती रही। माता मोक्षदा का प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने काली प्रसन्न को पीने के लिए बार्ली वाटर (जौ का पानी) दिया। उसकी सांसों की गति भी बेहतर हो गयी। उसने अपनी माता से कुछ बातें भी की, किन्तु शीघ्र ही उसकी सांसें फिर उखड़ने लगी। इस बार जब उसे घर से बाहर ले जाया जा रहा था तो उसने निर्मला की ओर देखते हुए कहा-''माँ, माँ मैं अब मरता हूं, मरता हूं, मरता हूं।'' और जैसे ही वह खुले आकाश के नीचे पहुंचा, उसने प्राण त्याग दिए। एक अशरीरी आत्मा ने इससे पहले निर्मला को एक दवा देना चाहा ताकि काली प्रसन्न स्वस्थ हो सके। किन्तु निर्मला ने दवा लेने से मना कर



श्री श्री आनन्दमयी माँ

दिया। उन्होंने उससे कहा- "नहीं, वह अपने स्वरूप में स्थित होने जा रहा है" अर्थात् वह परम सत्ता की ओर अपनी अंतिम यात्रा पर है।

इसके पश्चात निर्मला का दूसरा भाई बीमार पड़ा। उसके मस्तक पर तिलक का चिन्ह था। इस चिन्ह को देखकर किसी ने कहा था कि वह किसी राजघराने से आया है तथा एक विपन्न परिवार में उसका रह पाना संदिग्ध है। वह लगभग पांच महीने तक पीड़ित रहा और मात्र चार वर्ष की आयु में उसका निधन हो गया। तीनों भाइयों में सबसे छोटा भाई तो मात्र डेढ़ महीना ही जीवित रहा और दिवाली के दिन उसके प्राण छूटे। इस तरह छह माह की अवधि में खेवड़ा गांव में श्री माँ की उपस्थिति में उनके तीनों भाइयों का देहांत हो गया।

अभिभावकों और परिवार के लिए यह अवधि गहरे शोक और परिवेदना से भरी थी। तथापि माँ के अभिभावकों ने गहन सहनशक्ति का परिचय देते हुए अपने बच्चों के बिछड़ने के इस मारक दुख एवं पीड़ा को निःशब्द सहा। उन्होंने अपने दुख एवं त्रासदी को भगवान का प्रसाद मानकर स्वीकार कर लिया। परिणामस्वरूप ईश्वर में उनकी आस्था और दृढ़ हो गई। माता मोक्षदा ने अपने शांत स्वभाव को बनाए रखा तथा परिस्थितियों के अनुरूप लोगों से अपने सहज एवं सरल स्वभाव के अनुरूप बातचीत करना नहीं छोड़ा। बाद में माँ कहा करती थीं, "इस परिवार में कष्ट को भी कष्ट पाकर जाना पड़ा" अर्थात्, दुख भी उनके माता-पिता को विचलित नहीं कर सका।

तीन भाइयों के निधन के बाद दो बहनों -'सुरबाला' और 'हेमांगिनी' तथा एक और भाई यदुनाथ (माखन) का जन्म हुआ। सुरबाला श्री माँ से करीब नौ वर्ष छोटी थीं। वे बहुत सुंदर थीं और माँ के प्रति उनमें असाधारण आकर्षण था। हेमांगिनी सुरबाला से दो वर्ष छोटी थीं। जब दोनों बहनों का विवाह तय हुआ तो माँ ने सुरबाला का विवाह जिस वर के साथ किया जा रहा था उस पर आपत्ति जताई। किन्तु अन्य लोगों को इस विवाह से कोई आपत्ति नहीं थी। दोनों बहनों का एक ही तिथि पर ढाका में विवाह हुआ। विवाह से पहले होने वाले आशीर्वाद समारोह में माँ शामिल नहीं हुई। बाद में पता चला कि सुरबाला के पति मानसिक विकारग्रस्त थे। अपने पति के घर जयदेवपुर विदा होने से पहले जब सुरबाला माँ का आशीर्वाद लेने

आई तो माँ ने उनसे कहा कि वह पारिवारिक जीवन में अधिक समय तक नहीं रहें। एक वर्ष के भीतर सुरबाला गंभीर रूप से बीमार पड़ गईं। उनके देखने एवं सुनने की क्षमता बाधित हो गई। माँ उन्हें देखने तब गई जब उनका लगभग अंत आ चुका था। माँ ने उनके कान में धीमे से कुछ कहा। सुरबाला के चेहरे पर प्रसन्नता की लहर देखी गई। इसके बाद माँ ढाका लौट आई और उस रात सिद्धेश्वरी काली मंदिर में रहीं। सुबह तड़के अचानक माँ के मुंह से निकला- "अब तुम मुक्त हो जाओ।" अगले दिन माँ को उनके निधन का समाचार मिला। सुरबाला अपने विवाह के पश्चात मात्र तीन वर्ष जीवित रहीं। इस प्रकार श्री माँ के ख्याल से उनका मोक्ष हो गया।

माँ की छोटी बहन हेमांगिनी ने वैवाहिक जीवन कुशलतापूर्वक जिया परन्तु केवल सैंत्तीस वर्ष की आयु तक जीवित रहीं। उनके पति वाराणसी के समीप शाहगंज में एक चीनी मिल में केमिस्ट थे। अपने अंतिम दिनों में गंभीर बीमारी की अवस्था में वे वाराणसी में गंगा नदी पर एक नौका में रहने लगी थीं। निधन के पहले उन्होंने माँ की उपस्थिति में अपनी स्वयं की माता मोक्षदा से सन् 1949 में संन्यास मंत्र लिया था। वर्षों पूर्व माता मोक्षदा संन्यासिनी हो चुकी थी तथा 'स्वामी मुक्तानन्द गिरि' अथवा 'दीदीमा' के नाम से परिचित हुईं। संन्यासिनी बनने के बाद हेमांगिनी को नाम दिया गया स्वामी जयानन्द गिरि। उन्होंने उस अवस्था को प्राप्त किया था जो अनुभूति सम्पन्न संन्यासियों की होती है।

हेगांगिनीजी का जब वाराणसी में देहांत हुआ तो उनकी माता 'दीदीमा' देहरादून के रायपुर आश्रम में थीं और वहां उन्होंने एक अलौकिक दृश्य देखा। उन्होंने देखा कि भगवान श्रीकृष्ण अपने माता-पिता देवकी एवं वसुदेव के साथ उनके समक्ष प्रकट हुए। माँ भी उस क्षण वहां उपस्थित थीं। दीदीमा श्रीकृष्ण की आकर्षक छटा देखकर भाव-विभोर हो गई। उन्हें एक क्षण के लिए हेमांगिनी भी उनके साथ दिखायी दीं और फिर वह अदृश्य हो गई। दीदीमा समझ गई कि वाराणसी में हेमांगिनी अब नहीं रहीं। किन्तु विशेषकर वसुदेव, देवकी ओर श्रीकृष्ण के साथ हेमांगिनी को मृत्यु के बाद दिखायी देने का तात्पर्य क्या हो सकता है यह बात अनजान रह गई। हेमांगिनीजी के चार पुत्र एवं एक कन्या हुए थे जिनमे से वर्तमान में केवल दो वयोवृद्ध पुत्र अनिलदा एवं शिबुदा जीवित हैं जो मुम्बई में रहते हैं। वे

सभी दीदीमा के शिष्य हैं।

श्री माँ के एकमात्र जीवित भाई उनके छोटे भ्राता यदुनाथ भट्टाचार्य थे। उन्हें घर में 'माखन' कहा जाता था और आश्रम में वे 'मामाजी' के नाम से लोकप्रिय थे। वे माँ से करीब उन्नीस वर्ष छोटे थे। माँ के विशेष ख्याल के कारण ही उनका जन्म हुआ था। माखन जब छोटे बालक थे, उस समय उनके गाल पर एक जहरीली फुन्सी पनप गयी थी। तेज बुखार के साथ उनका समस्त मुंह फूल गया एवं गांव के कविराज ने जीवन का आशा छोड़ दी। माँ उस समय ढाका के शाहबाग में रह रही थीं। उन्होंने भाई को अपने पास बुलवा लिया एवं स्वयं कोई पत्ती पीसकर एवं उसकी गोली बनाकर जहरीली फुन्सी पर लगा दी। उस गोली ने समस्त मवाद सुखाकर आराम पहुंचाया। उसके बाद से माखन अपने स्कूली दिनों में माँ के पास ही उनकी देखभाल में रहे। माँ की उपस्थिति में उनका यज्ञोपवीत संस्कार भी वहीं हुआ था।

शिक्षा पूरी होने के बाद उन्हें एक अच्छी नौकरी मिल गई। उनका विवाह सावित्री देवी से हुआ जिन्हें आश्रम में 'मामीजी' पुकारा जाता था। माँ के पिता ने अपनी मृत्यु से पहले सावित्री को अपने पुत्र के लिए पंसद किया था किन्तु यह विवाह उनके निधन के बाद ही हो पाया। मामाजी के विवाह के कुछ समय बाद माता मोक्षदा ने संन्यास ग्रहण कर लिया। वे अपनी किशोरवय पुत्रवधू को माँ के संरक्षण में दे गईं। मामीजी माँ के समीप पांच वर्षों तक रहीं और इस अवधि में उन्होंने आश्रम ब्रह्मचारिणी की तरह जीवन व्यतीत किया। मामा और मामीजी अपने जीवन पर्यन्त एक अच्छे साधक की तरह रहे।

बहुत बाद में मामाजी से अनुरोध किया गया कि वह नवगठित "श्री श्री आनन्दमयी संघ" का हिसाब-किताब (एकाउंट्स) उसके वाराणसी स्थित मुख्यालय में आकर देखने का उत्तरदायित्व लें। इसके लिए मामाजी ने लखनऊ में अपनी एक अच्छी नौकरी को त्याग दिया और वे अपने परिवार के साथ वाराणसी आकर आश्रम के समीप अपने छोटे से मकान में बस गए। इसके बाद उन्होंने एक वानप्रस्थी की तरह जीवन जिया और वह गृहस्थ जीवन से दूर हो गए। उन्होंने सत्यनिष्ठा के साथ आश्रम सेवा को जारी रखा और अपना शेष जीवन आश्रम एवं माँ की सेवा में लगा दिया। मामाजी की पत्नी मामीजी भी आश्रम के लिए विशेष सहायक रहीं। वह

बहुत परिश्रमी थीं। वह पाककला में दक्ष थीं तथा सभी पूजा का प्रबंध करने में पारंगत थीं। यह सब उन्होंने माँ से ही सीखा था। उनके शान्त स्वभाव एवं सबसे मित्रवत् व्यवहार के कारण सभी उन्हें पसंद करते थे।

मामाजी पूजा प्रक्रियाओं में भी यथेष्ट दक्ष थे। माँ ने कभी-कभी विशेष पूजा के अवसरों पर उन्हें आश्रम में पूजा सम्पन्न कराने का दायित्व दिया। उन्होंने दीर्घ अवधि तक वाराणसी आश्रम में गोपालजी की पूजा-अर्चना की जिम्मेदारी निभायी। माँ की उपस्थिति में उन्होंने 1963 में वाराणसी स्थित अपने घर पर दुर्गा पूजा एवं काली पूजा सम्पन्न की थी। मामाजी ने सामान्य आयु पायी थी और नवंबर 1983 में 69 वर्ष की आयु में उनका देहान्त हुआ। उनकी पत्नी मामीजी का देहान्त सन् 1995 में दिल्ली में हुआ।

मामाजी की छह सन्तान हुई, उनमें से चार पुत्र हैं - श्री जगदीश भट्टाचार्य (बच्चूदा) जो वर्तमान में अधिकतर दिल्ली रहते हैं, श्री जगबन्धु भट्टाचार्य (बलाइदा) जो हरिद्वार रहते हैं, श्री जगन्नाथ भट्टाचार्य (कनाईदा) जिनका वर्ष 2014 में कोलकाता में 60 वर्ष की उम्र में देहान्त हो गया एवं सबसे छोटा पुत्र केवल डेढ़ वर्ष तक ही जीवित रहा। मामाजी के दो पुत्रियां हैं - 'गीतादी' जो कोलकाता रहती हैं और 'गायत्री' जो माँ के आश्रमों में 'बुलुदी' के नाम से परिचित हैं। माँ के निर्देशानुसार मामाजी के उपरोक्त पुत्र एवं पुत्रियों ने बचपन से ही माँ के विद्यापीठ तथा कन्यापीठ में वर्षो रहकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए हाई स्कूल तक शिक्षा प्राप्त की। आगे उच्चतर शिक्षा प्राप्तकर विवाहोपरान्त वे सभी अब प्रसन्नतापूर्वक धार्मिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वे सभी माँ की माता स्वामी मुक्तानन्द गिरिजी के शिष्य हैं।

मामाजी के सबसे छोटे पुत्र के निधन के बाद माँ ने मामीजी से कहा था कि माँ ने पूर्व में देखा था कि दो महात्मा (सूक्ष्म रूप में) माँ के समीप आये। उनमें से एक माँ के पास ही रह गया एवं दूसरा वापस लौट गया। जो रह गया था वह हैं बच्चूदा एवं जो चला गया वह था मामाजी के सबसे छोटे पुत्र जो केवल डेढ़ वर्ष ही जीवित रहा। बच्चूदा के छोटे भाई बलाईदा के विषय में माँ ने कहा था कि वह पिछले जन्म में माँ के छोटे मामा (गिरिजी के भाई) ही थे जिन्होंने अपने घर में दुर्गापूजा के समय छोटी बच्ची श्री माँ को बुलाकर कुमारी पूजा किये थे। इस मामा की मृत्यु

के समय माँ स्वयं उपस्थित थीं। कनाईदा के विषय में माँ ने कहा था कि पिछले जन्म में वे राज परिवार के सदस्य थे।

माँ के उपरोक्त वर्णित सभी भाई-बहनों एवं वंशजों ने उन्नत आत्मा होने के विशिष्ट चिन्हों के साथ जन्म लिया था और सभी शारीरिक रूप से सुन्दर थे। किन्तु माँ ने कभी इस बात का खुलासा नहीं किया कि उनके भाई एवं बहनें कहां से आये थे और उनके परिवार में जन्म लेने से पहले उनकी वास्तविक पहचान क्या थी? माँ ने कहा था कि वे उनका साथ देने के लिए आए थे और अपने मोक्ष से पहले वह इस संसार में अपना जीवनचक्र पूरा करने के लिए आए थे। माँ ने यह भी संकेत दिया था कि निश्चित अवधि के अन्तराल पर विशिष्ट सिद्ध महात्माओं के आगमन से इस वंश की पवित्रता अक्षुण्ण रहेगी। इसलिए माँ ने कहा था-''यदि कोई इस वंश के व्यक्तिओं का आदर नहीं करे तो यह उसके अपने विवेक की बात है, किन्तु कभी उनके प्रति असम्मान नहीं दिखाना।''

श्री माँ ने संकेत किया था कि माँ की अनन्य सेविका गुरुप्रिया दीदी अपने पूर्व जन्म में दीदीमा की प्रथम संतान के रूप में पैदा हुई थीं और उनका निधन माँ के जन्म से पहले ही हो गया था। यही कारण था कि आश्रम में सभी गुरुप्रियाजी को दीदी (बड़ी बहन) कहकर पुकारते थे। वे ढाका के सिविल सर्जन डॉ. शशांक मोहन मुखोपाध्याय की पुत्री थीं और माँ से उनका मिलन सन् 1926 में हुआ था। उसके बाद से वे ब्रह्मचारिणी बन गईं और जीवनपर्यन्त माँ की सेवा में निरत रहीं। दीदी के पिता ने जब संन्यास ले लिया, वे उनके साथ पैदल बदरीनाथ एवं केदारनाथ की यात्रा पर गई थीं। वे बहुत कठिन परिश्रमी, पाक कला में पारंगत और प्रबंधन कर्म में कुशल थीं। माँ के कई आश्रमों की स्थापना के पीछे उनके विशेष प्रयास थे। वे बांग्ला भाषा की एक उत्कृष्ट लेखिका थीं। वे माँ के दैनन्दिन क्रियाकलापों एवं वचनों को डायरी में लिखा करती थीं। ये डायरियां बांग्ला में 17 और हिन्दी भाषा में 20 खण्डों में प्रकाशित हो चुकी हैं। दीदी की ये रचनाएं आने वाले समय में माँ के श्रद्धालुओं के लिए प्रेरणा का स्रोत बनी रहेंगी। इनमे से कुछ डायरियों के अंग्रेजी और गुजराती भाषाओं के अनुवाद का भी प्रकाशन हो चुका है। गुरुप्रिया दीदी को स्वयं माँ से संन्यास

मन्त्र प्राप्त हुआ था। सितंबर 1980 में गुरुप्रिया दीदी का वाराणसी के आश्रम में देहान्त हुआ। उनके पार्थिव शरीर का गंगा में जल-समाधि दिए जाने के उपरान्त माँ ने कहा था, "प्रतिमा विसर्जन हो गया।"

माँ की गृहस्थ लीला

निर्मला (श्री माँ) जन्म के बाद शैशवावस्था, बाल्यावस्था और फिर किशोरावस्था की ओर धीरे-धीरे बढ़ीं। वे कोई साधारण बालिका नहीं थीं। स्वभाव में निर्मलता, मधुरता, निस्पृहता एवं सत्यनिष्ठा जैसे गुणों के कारण वे सबकी प्रिय थीं। निर्मला के सम्पर्क में आने वाला हर व्यक्ति उससे आकर्षित हो जाता था। छोटी उम्र क्या बड़ी वय वाले लोग भी उनके प्रति आदर का भाव रखते थे। स्वाभाविक रूप से लोग उनके प्रति सम्मान एवं प्रेम प्रकट करते थे।

दादी के देहान्त के छह माह बाद निर्मला का विवाह हो गया। उस समय छोटी उम्र में विवाह का चलन था। उनका विवाह रविवार 7 फरवरी 1909 को श्री रमणीमोहन चक्रवर्ती के साथ हुआ था। उस समय निर्मला की उम्र केवल 12 वर्ष 10 माह थी। बारात कसबा से खेवड़ा गांव आई थी और वर हाथी पर सवार था। बारात के आगे शहनाई आदि मंगल ध्वनियां बजाई जा रही थीं। विवाह के उपरांत विदाई के समय निर्मला फूट-फूटकर रोई थीं। क्या वे अन्य लोगों को रोने से रोकने के लिए ही स्वयं ऐसा कर रही थीं? ससुराल से शीघ्र ही निर्मला अपने मातृ गृह वापस आ गईं और कुछ समय वहीं रहीं।

निर्मला के पति श्री रमणीमोहन ढाका जिला (अब बांग्लादेश) के अन्तर्गत "आटपाड़ा" गांव के प्रख्यात भारद्वाज वंश के थे। उनके पिता श्री जगतबन्धु चक्रवर्ती और माता त्रिपुरा सुंदरी देवी थीं। अपने माता-पिता के पांच पुत्रों एवं पांच पुत्रियों में से वे तीसरे पुत्र थे। उनके विवाह के समय उनकी माता इस संसार में नहीं थी जबकि उनके पिता का देहान्त रमणीमोहन के विवाह के दो वर्ष बाद हुआ। रमणीमोहन सरल एवं पवित्र स्वभाव के थे किन्तु उनकी आयु माँ से यथेष्ट अधिक थी। उन्हें भजन एवं कीर्तन का शौक था। बाद में वे 'बाबा भोलानाथ' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

विवाह के बाद रमणीमोहन जी को कुछ समय बिना रोजगार के

रहना पड़ा और उनके पास रहने के लिए अपना स्वयं का कोई स्थान भी नहीं था। निर्मला को रमणीमोहन के बड़े भाई श्री रेवतीमोहन चक्रवर्ती और उनकी पत्नी प्रमोदा देवी के पूर्वी बंगाल (अब बांग्लादेश) में 'श्रीपुर' में स्थित घर में ले जाया गया। रेवती मोहन जी श्रीपुर रेलवे स्टेशन के स्टेशन मास्टर थे। हिन्दू संयुक्त परिवार की परम्पराओं के अनुसार घर के रीति-रिवाजों को नववधू को सिखाने का दायित्व उन पर आ गया था। निर्मला को उसके ससुराल भेजते समय माता मोक्षदा ने उसे कहा था, "स्त्रियों को सती धर्म की सदा सर्वदा रक्षा करनी चाहिए। यदि प्राण देने पड़े तो भी सती धर्म नहीं छोड़ना चाहिए। पति या अभिभावक लोग जब जो कहें, चुपचाप रहकर आदेश का पालन करना चाहिए।"

निर्मला उस समय बहुत शर्मीली थीं और नववधू के सभी नियमों एवं रीति-रिवाजों का पालन करती थीं। बड़ों को सम्मान देना उनका स्वभाव था। वे विनम्रता से बोलती थीं, बड़ो के समक्ष सिर पर घुंघट डालकर खड़ी रहती थीं। वे किसी भी तरह की प्रशंसा की कामना किए बिना प्रसन्नतापूर्वक सबकी सेवा में लगी रहती थीं जो दूसरों के लिए एक अनुकरणीय शिक्षा है। निर्मला ने घर के सारे काम-काज का दायित्व अपने ऊपर ले लिया था। वे भोजन पकातीं, बर्तन मांजतीं, घर की साफ-सफाइ करतीं और जेठ के बच्चों का लालन-पालन भी करती थीं। निर्मला कामों को इतने अच्छे एवं प्रसन्नतापूर्वक ढंग से करती थीं कि शीघ्र ही वे सबके स्नेह की पात्र बन गई। वे बच्चों की तो इतनी पसंदीदा बन गई थीं कि वे परिवार के किसी भी सदस्य की तुलना में उन्हीं के साथ रहना एवं सोना पसंद करते थे।

निर्मला पाक कला में बहुत दक्ष थीं। वे बहुत तरह के पकवान बनाना जानती थीं। एक बार उन्होंने बहुत सारे अतिथियों के लिए बहुत कम समय में अकेले ही सारा भोजन बना दिया था। अतिथि इस बात पर विस्मित थे कि इतने कम समय में इतना स्वादिष्ट भोजन कैसे बनाया जा सकता है? अब तक सब कुछ ठीक ही चल रहा था, पर इसी दौर में कुछ बार ऐसा भी हुआ कि प्रमोदा देवी को रसोई से जलने का गंध आने का अनुभव हुआ। जब उन्होंने अंदर जाकर देखा तो निर्मला रसोई में बेसुध पड़ी थीं। ऐसे ही एक प्रसंग में बेसुध निर्मला का गर्म चूल्हे के स्पर्श से हाथ

बुरी तरह झुलस गया था। समाधि की उस अवस्था में वे अपने आसपास और अपने शरीर को लेकर पूरी तरह बेसुध रहती थीं। यह अवस्था परिवार के समझ से पूरी तरह परे थी। उन्हें यह लगता कि काम के अत्यधिक बोझ के कारण वे थककर बेहोश हो जाती हैं। समाधि की इन कुछ घटनाओं को छोड़कर माँ की आध्यात्मिक दशा के बारे में तब तक किसी को कुछ भी पता नहीं लग सका था।

कुछ वर्षों बाद रेवतीमोहन बीमार पड़े और नरून्दी में उनका देहान्त हो गया। मृत्यु से कुछ समय पहले ही उनका नरून्दी में तबादला हुआ था। इसके बाद उनका परिवार अपने पैतृक गांव आटपाड़ा लौट आया जहां माँ छह माह तक रहीं। इसके उपरांत वे छह माह तक अपने मायके में रहीं।

माँ अष्टग्राम में

श्री श्री माँ ने सन् 1914 में रमणीमोहन के साथ अष्टग्राम में रहना प्रारम्भ किया। वहां उन्हें ढाका के नवाब की सम्पदा के बंदोबस्त विभाग में नौकरी मिली थी। पति के साथ जीवन व्यतीत करने का यह प्रारम्भ था। रमणी मोहन ने श्री जयशंकर सेन के मकान के परिसर में एक कमरा किराये पर लिया था। वहां माँ की सदा प्रसन्नचित्त मुद्रा और आनन्दमयी स्वभाव के कारण सभी लोग उन्हें "खुशीरमा" (खुशीमा) कहने लगे थे।

माँ और रमणीमोहन जी का दांपत्य जीवन अनूठा था। इस दांपत्य जीवन में सांसारिक सुखों का पूरी तरह त्याग कर पवित्रमय निष्काम जीवन यापन किया जाता था। ऐसा शुद्ध एवं पवित्रमय जीवन साधारण व्यक्ति की समझ से सर्वथा परे है। दिन के समय माँ घर के कामकाज में पूरी तरह व्यस्त रहती थीं। रात में अपने पति को भोजन कराने के बाद श्री माँ कमरे के एक कोने में फर्श पर बैठ जाती थीं। बिना किसी प्रयास एवं इच्छा के माँ के शरीर में असाधारण आसन एवं मुद्राएं होने का क्रम स्वयमेव प्रारंभ हो जाता था। कभी-कभी माँ का शरीर भूमि से ऊपर उठकर शून्य में झूलने लगता। माँ के भीतर घटित होने वाली इन असाधारण आध्यात्मिक गतिविधियों के एकमात्र साक्षी रमणीमोहन जी ही थे। वे सरल, शुद्ध हृदय एवं भगवत् प्रेमी मनुष्य थे। वे माँ की इन गतिविधियों को समझ नहीं पा रहे थे किन्तु उन्हें शीघ्र ही समझ आ गया कि उनकी पत्नी बहुत ही उच्च आध्यात्मिक

अवस्था में हैं और कोई सामान्य ग्रामीण बालिका नहीं हैं। सुबह होते ही माँ अपने कामों में फिर से व्यस्त हो जाती थीं। दिन भर कठिन परिश्रम करने और रात भर जागने के बावजूद उनमें थकावट या शक्ति की कमी के कोई लक्षण दिखाई नहीं देते थे।

जयशंकर सेन के साले हरकुमारजी ने निर्मला को "माँ" कहकर पुकारना शुरू कर दिया। यद्यपि वे माँ से उम्र में बहुत बड़े थे। वे बहुत अच्छे साधक थे और श्री माँ में गहरी आस्था रखते थे। माँ उस समय तक घूंघट काढ़ती थीं और मिलनेवालों से बोलती तक नहीं थीं। निराशा में हरकुमार ने एक दिन माँ से कहा, "अभी केवल मैं तुम्हें 'माँ' कहता हूं। एक दिन सारा विश्व तुम्हें पहचानेगा और माँ कहेगा।" हरकुमार की यह भविष्यवाणी आगे चलकर सत्य साबित हुई। उस समय भला यह कौन विश्वास कर सकता था कि निर्मला (श्री माँ) आगे चलकर अत्यंत विद्वतापूर्ण प्रश्नों के इतने सरल शब्दों में उत्तर देंगी कि विद्वान और पण्डितगण विस्मित हो जाएंगे। उस समय यह बात कल्पना से परे थी कि लोग एवं श्रद्धालु उनके चरणों में बैठकर मंत्रमुग्ध होकर उन्हें देखेंगे और सुनेंगे।

एक बार किसी ने माँ से पूछा, "हम जैसे गृहस्थों के लिए मुक्ति पाने का क्या मार्ग है?" माँ ने कहा-"दूसरों की सेवा और मंत्र जप से होगा। उनका नाम लेने से सब कुछ मिलेगा। जितना भी समय हो सके नामजप में लगाओ। यदि पर्याप्त समय नहीं निकाल पा रहे हो तो कम से कम भगवत चर्चा ही करो, उनका गुणगान करो अथवा शास्त्रों का अध्ययन करो।" माँ यह भी कहती थीं कि जीवन के प्रथम चरण 'ब्रह्मचर्य आश्रम' का कठोरता से पालन किए बिना तीन अन्य चरण - गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम भी बेकार हो जाते हैं। गृहस्थ होकर भी ब्रह्मचर्य का पालन किया जा सकता है। प्राचीन काल में ऋषिगण प्राय: ऐसा ही करते थे।

वर्ष 1916 में माँ बुरी तरह बीमार पड़ गयीं और अपने अभिभावकों के पास चली गई एवं करीब तीन वर्ष अपने मातापिता के पास विद्याकूट गांव में रहीं। इस बीच रमणी मोहन (बाबा भोलानाथ) का तबादला वर्ष 1918 में पूर्वी बंगाल के मैमनसिंह जिले के बाजितपुर में हो गया और वे वहां चले गये।

अध्याय–द्वितीय

माँ बाजितपुर में

माँ वर्ष 1918 में रमणीमोहन के पास बाजितपुर पहुंचीं और वहां करीब छह वर्ष रहीं। बाजितपुर पहुंचने के कुछ दिन बाद कीर्तन, भजन और प्रवचन सुनने पर उनके भीतर विचित्र प्रतिक्रिया होने के प्रथम संकेत मिले, जब वे स्वतः ही भावावस्था में चली जाती थीं।

उनकी अलौकिक शक्तियों का दिव्य प्रकाश तब देखने को मिला जब रमणी मोहन जी (बाबा भोलानाथ) ने वार्षिक काली पूजा की रात अपनी कुल की काली पूजा का प्रबंध किया। किसी सामान्य अमावस्या रात्रि की तरह उस रात भी घोर अंधकार था, किन्तु एकाएक पूरा स्थान स्निग्ध ज्योत्सना से भर उठा, जैसा कि पूर्ण चन्द्रमा के उदय से होता है। रमणी मोहन जी एवं अन्य लोगों का ध्यान इस अलौकिक प्रकाश की ओर गया ही नहीं और वे इसकी रोशनी में अपने कामों में व्यस्त रहे। किसी ने कोई आश्चर्य भी व्यक्त नहीं किया। पूजा सम्पन्न होने के बाद जब हवन प्रारंभ हुआ तो एक लम्बी, शुभ्र और प्रकाशवान पुरुष आकृति माँ की शरीर के दाहिनी ओर से प्रकट हुई जिसमें से लालिमा छटा निकल रही थी। इस दिव्य आकृति समीप के उस कमरे में प्रवेश किया जहां माँ काली के लिए अन्नभोग बनाकर थालियों में परोसकर तैयार रखा गया था। वह दिव्य आकृति वहीं बैठ गई और उसने प्रत्येक थाली से तीन–तीन बार थोड़ा भोग सांकेतिक रूप से ग्रहण किया और इसके उपरांत वह आकर माँ में ही विलीन हो गई।

इस घटना के बाद अन्नभोग की उन्हीं थालियों को जब रमणी मोहन जी पूजास्थल पर ले जा रहे थे तो अचानक कहीं से एक कुत्ता आ गया और उसने उन्हें स्पर्श किया जिस कारण यह अन्नभोग देवी को अर्पित करने के योग्य नहीं रह गया। रमणी मोहन जी ने उस भोग को पेड़ के नीचे ले जाकर डाल दिया और समीप के तालाब में जाकर स्नान किया। इसके बाद वे नये सिरे से बनाये गये अन्नभोग को लेकर पूजा स्थल तक गये। जब पुजारीजी को इस घटना के बारे में पता चला तो उन्होंने कहा कि पहले जो अन्नभोग बनाया गया था वही असली प्रसाद है। इसके बाद अप्रत्याशित रूप से बहुत लोग प्रसाद ग्रहण करने आ गये किन्तु मॉ की कृपा से कोई भी सामग्री कम नहीं पड़ी।

माँ की दीक्षा लीला

बाजितपुर में 3 अगस्त 1922 को झूलन पूर्णिमा की रात माँ की साधना लीला में एक अलौकिक घटना घटी। उस रात माँ ने अपने आप को स्वयं के द्वारा दीक्षा देने की लीला की। इस लीला में माँ स्वयं गुरु थीं और वे ही शिष्य भी, माँ ही इष्ट थीं और स्वयं ही मन्त्र थीं। दीक्षा के समय यज्ञ के समस्त आयोजन एवं स्वयं अग्निदेव भी माँ के भीतर से ही प्रकट हुए तथा यज्ञोपरांत माँ में ही विलीन हो गए। माँ ने अपनी लीलाओं का लोगों से गोपन कर रखा था किन्तु वे धीरे-धीरे प्रकाश में आने लगे।

माँ की स्व-दीक्षा की असामान्य रीति का पता चलने पर माँ के ममेरे भाई निशिकान्त भट्टाचार्य ने रमणी मोहन जी की उपस्थिति में माँ से किंचित क्रोध में पूछा- "तुम कौन हो?" इस पर माँ ने गंभीर स्वर में कहा-"पूर्ण ब्रह्म नारायण।" इस पर रमणी मोहन जी ने माँ से अपने बारे में पूछा कि फिर स्वयं वे कौन हैं? माँ का उत्तर था- "महादेव।" उन्होंने पूछा कि इसका क्या प्रमाण है कि वे 'पूर्ण ब्रह्म नारायण' हैं? माँ ने रमणी मोहन को बुलाया और उनके मस्तक को स्पर्श किया। इसके तुरंत बाद रमणी मोहन "शिवम्" कहकर भूमि पर बैठ गये और गहरी समाधि में लीन हो गए। ऐसा होते उन्हें पहले कभी नहीं देखा गया था। वे शांति और आनन्द की इस अवस्था में बहुत देर तक निमग्न रहे। उस समय उनका भतीजा आशु भी माँ के साथ ही रहता था। शाम को स्कूल से लौटने पर जब उसने अपने चाचा को असामान्य अवस्था में देखा तो वह रोने लगा। इसके उपरांत उन सभी ने माँ से इस बात के लिए गंभीरतापूर्वक विनती की कि रमणी मोहन जी को सामान्य चेतनावस्था में लाया जाए। माँ ने उनके मस्तक पर पुनः हाथ रखा और वे सामान्य स्थिति में लौट आए। बाद में रमणी मोहन जी ने कहा कि वे उस समय किसी असीम आनन्द की अवस्था में थे जिसका वर्णन शब्दों से नहीं किया जा सकता।

श्री माँ ने सन् 1923 में रमणी मोहन को दीक्षा दी। मन्त्र देने की समग्र प्रक्रिया माँ के भीतर से स्वतःस्फूर्त एवं प्रयास रहित रीति से आई। माँ के प्रति रमणी मोहन जी तनिक भी सांसारिक बर्ताव नहीं करते थे। उन्हें माँ की उन्नत अवस्था की पूरी जानकारी थी। उन्होंने "माँ" के चरणों में

अपने आप को समर्पित कर दिया था और उन्हें अपना गुरु स्वीकार कर लिया था। माँ ने उनके विषय में इंगित किया था कि उन्होंने अपने पूर्व जन्म में गहन तपस्या की थी एवं वे एक महापुरुष एवं सिद्ध संत थे। माँ की सेवा में उन्होंने पवित्रतापूर्ण एवं साधनापूर्वक जीवन व्यतीत किया।

रमणी मोहन जी की दीक्षा के कुछ दिनों बाद माँ ने बातचीत करना बन्द कर दिया था तथा उनके मौन का यह क्रम करीब तीन वर्ष तक चला। उन्होंने कहा था, ''इस शरीर के कोई प्रणम्य नहीं है।'' उसके बाद से माँ किसी को अपने चरण स्पर्श नहीं करने देती थीं।

माँ की साधना लीला

बाजितपुर में माँ की साधना की लीला पूरी गति से चल रही थी। उनकी साधना लीला की कुछ विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए यह स्मरण रखना होगा कि आध्यात्मिक साधना की विभिन्न धाराओं की क्रियाएं आदि से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त करने के लिए माँ को किसी से प्रशिक्षण या धार्मिक ग्रन्थ के अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। वे उनके ख्याल से स्वतः स्फूर्त रूप से प्रकाशित हुए थे। घंटा बजाने पर जैसे आपसे आप ध्वनि होता है, उसी प्रकार सभी योगासन, मुद्राएं एवं साधन प्रक्रियाएं एवं दिव्यभाव-तरंग माँ में अपने आप प्रवाहित होकर प्रकाशित होती थी। माँ की साधना लीला में देवी-देवताओं एवं पूजा के सभी अनिवार्य सामग्री माँ की देह से स्वयं प्रकट होते थे। इसके बाद मन्त्र, पूजा, स्तोत्र, आसन आदि स्वतः स्फूर्त ढंग से होने लगते थे। पूजा के उपरांत देवी-देवता व पूजन सामग्री माँ की देह में ही विलीन हो जाते थे।

साधना लीला के दौरान माँ ने नौ वर्ष बिना निद्रा के व्यतीत किए। उनका सोने के लिए कोई बिछौना नहीं था। समाधि अवस्था में वे भूमि पर पड़ी रहती थी या बैठी रह जाती थीं। साधना लीला के बाद भी साधारण निद्रा जीवनभर नहीं रही। उन्हें भोजन में कोई रुचि नहीं रह गयी थी। यही नहीं, स्वयं भोजन करने की सामर्थ्य भी नहीं रह गई थी। उन्हें अन्य के हाथों से भोजन कराया जाता था और यह क्रम उनके जीवन पर्यन्त चला। भोजन-जल के बिना माँ कई सप्ताह तक रह जाती थीं, तथापि उनकी कांति एवं शांत स्वभाव स्थिर रहता था। बाद में आठ-नौ माह का एक ऐसा

अंतराल आया जब श्री माँ दिन और रात में भोजन के नाम पर मात्र तीन-तीन कौर ग्रहण करती थीं। फिर कुछ समय ऐसा नियम चला कि दिन में एक बार ही खाएंगी परन्तु जो खिलाएगा वह एक सांस में जितना पानी एवं अन्न खिला सके, उतना ही माँ खायेंगी। कुछ दिन बाद ऐसा भी नियम आया कि माँ ने भोजन के नाम पर दिन में दो बार मात्र उबले हुए चावल के तीन दाने ग्रहण किये। यह क्रम करीब छह माह चला। इस प्रकार के कम भोजन करने के और भी नियम बने और कुछ काल चलने के बाद यह बदल गया। माँ इतनी अल्प मात्रा में भोजन केवल इसलिए स्वीकार कर रही थीं कि कहीं भोजन ग्रहण करने की आदत पूरी तरह समाप्त न हो जाए। इस प्रकार माँ कई वर्षों तक वस्तुतः बिना भोजन के ही रहीं, किन्तु उनका स्वास्थ्य नहीं बिगड़ा। उनके मुख पर सदैव दिव्य आभा दिखाई पड़ती थी। इस सन्दर्भ में माँ ने एक बार कहा था- "साधना के कारण शरीर ऐसा बन गया था कि शारीरिक रूप से कोई भोजन ग्रहण नहीं होता था। अपने को रखने के लिए जो भी आवश्यक होता था वह प्रकृति से ग्रहण हो जाता था।"

श्रद्धालु एवं परिजन माँ के भोजन ग्रहण नहीं करने से कभी-कभी बहुत चिन्तित हो जाते थे। वे उनसे पूरा भोजन करने का अनुरोध करते। एक दिन रमणी मोहन जी की बहन ने उपवासी रह कर माँ एवं अन्यों के लिए अनेक मात्रा में कई व्यंजन और आधा मन (लगभग 20 लीटर) दूध की खीर बनायी। माँ को भोजन कराते समय वह बार-बार अधिक लेने का आग्रह कर रही थीं जबकि माँ उन दिनों मात्र तीन कौर का आहार ही लेती थीं। रमणी मोहन जी ने भी अपनी बहन का अनुरोध स्वीकार कर लेने के लिए माँ से कहा। जब माँ ने भोजन ग्रहण करना प्रारंभ किया तो वे न केवल उस दिन तैयार किए गए सारे व्यंजन एवं खीर खा गई बल्कि उसके बाद भी और खीर मांगती रहीं। इतनी अधिक मात्रा में भोजन करते देख रमणी मोहन जी को यह भय सताने लगा कि कहीं माँ के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। उन्होंने माँ से भोजन समाप्त करने का अनुरोध किया। इसके बाद माँ ने उन्हें सावधान किया कि वे कभी उनके ख्याल में हस्तक्षेप न करें। उन्होंने यह भी संकेत किया कि यदि 'यह शरीर' खाना ही शुरू कर दे तो कोई भी उसकी भूख तृप्त नहीं कर सकता।

इस प्रकार माँ की विविध साधना लीला, मार्ग के अन्त तक पहुंच

गई और वे अपने में ही पूर्ण हो गई। माँ ने कहा था कि उनकी साधना लीला किसी एक मार्ग तक सीमित नहीं थी बल्कि उसमें साधना की समस्त धाराएं सम्मिलित थी। ऋषियों द्वारा अब तक जितने प्रकार की साधनाएं प्रकाश की गयी हैं, उन सभी साधनाओं को पूरे किया गया। साधारणतः, साधना में किसी एक मार्ग पर चलकर किसी परिणाम तक पहुंचने में काफी समय लग जाता है। कई लोगों को उस मार्ग में उन्नत अवस्था प्राप्त करने के लिए कई जन्म बीत जाते हैं। परन्तु, माँ ने इन सभी अवस्थाओं को क्षणों में उपलब्ध कर लिया था। माँ ने कहा था कि यह सब उसी प्रकार हुआ जैसे किसी ऐसी पुस्तक के पन्नों को पलटा गया जिसमें लिखे हुए विषय पहले से ही ज्ञात हो, पढ़ने की जरूरत नहीं पड़ी। इस प्रकार माँ को सभी विगत, वर्तमान एवं भविष्य में होने वाली समस्त प्रकार की धार्मिक परम्परा एवं साधनाओं का पूर्ण ज्ञान एवं अनुभूति थी। माँ ने यह भी कहा कि उन्होंने जो भी साधना की थीं, वे स्वयं उनके द्वारा उन्हीं के शरीर में की गई लीला के अतिरिक्त कुछ भी न था। यद्यपि यह सब उनके लिए न होकर समूची मनुष्यता के लिए हुआ था। जब किसी भी धर्म के सत्य जिज्ञासु साधना सम्बन्धी अपनी कोई भी कठिनाई या संशय लेकर माँ के समीप आते थे, वे आवश्यकता के अनुरूप उनका समुचित मार्गनिर्देशन करती थीं। कई बार वे अपनी साधना का उदाहरण देती थीं ताकि उन्हें अच्छी तरह से संतुष्ट किया जा सके।

माँ को जन्म से ही सम्पूर्ण आध्यात्मिक शक्तिओं पर पूर्ण नियन्त्रण था किन्तु उनके उपयोग की उनके भीतर कोई भी इच्छा नहीं थी। प्रकृति के नियमों और विधि के विधान में माँ आमतौर से हस्तक्षेप करने के पक्ष में नहीं रहती थीं। सर्वशक्तिमान की इच्छा उनकी इच्छा थी, जिसे वे "ख्याल" कहती थीं। यह मानव मात्र की कल्पना से परे की एक अलौकिक अवस्था है। तथापि माँ के ख्याल से जब कोई अलौकिक घटना घटती थी तो माँ उसे गोपन रखने का प्रयास करती थीं। कई बार माँ बिना कहे दूसरों के दुःखभोग, रोग आदि अपने शरीर पर ले लेती थीं ताकि सम्बन्धित व्यक्ति को राहत मिल सके। यह सब करने के बाद भी वे कहती थीं- "भगवान की कृपा से ही कष्ट दूर हुआ।" माँ की अलौकिक कार्यवाही इतने अनायास एवं गुप्त रूप से हो जाता था कि जिन्होने यह

देखा या अनुभव किया वे आश्चर्य में पड़ जाते थे कि ऐसा कैसे सम्भव हो सका?

वास्तव में संतों की विभूतियों के किसी भी तरह के बाहरी प्रदर्शन के पक्ष में माँ नहीं थीं। उनके शब्दों में....''आतंरिक अनुभूतियों को प्रकट नहीं करना चाहिए, बल्कि तिजोरी के भीतर बंद करके रखना चाहिए। तिजोरी की परिपूर्णता के उपरान्त यदि छलककर कुछ बाहर निकल पड़े एवं भेद खुल जाये तो चिंता मत करना, परवाह किये बिना अपने पथ पर बढ़ते चलो। बल्कि इस बात का ध्यान रखना कि वे तुम्हारे माध्यम से सामने न आये।''

माँ शाहबाग में और महाभाव का प्रदर्शन

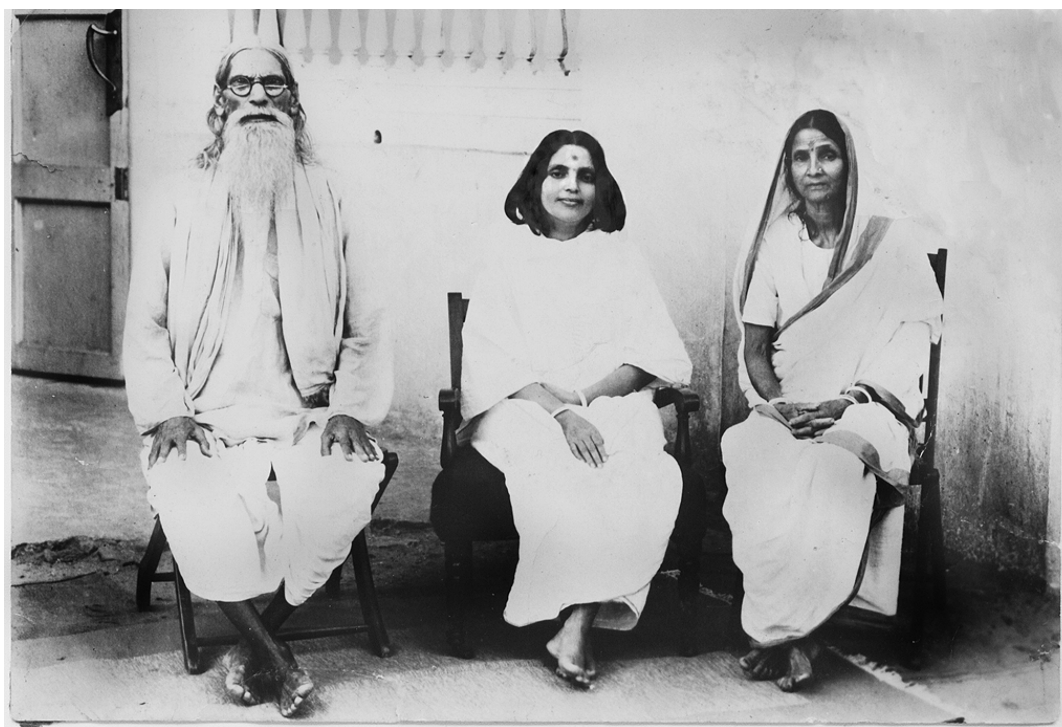
रमणी मोहन (भोलानाथ) की नौकरी सन् 1923 के अंत में चली गई थी। स्वाभाविक रूप से वे बहुत परेशान थे और बहुत सोच-विचार कर उन्होंने नौकरी की तलाश में माँ के साथ ढाका जाकर रहने का निर्णय किया। कुछ समय बाद उन्हें वहां नौकरी मिल गयी। अप्रैल 1924 में उन्हें विशाल एवं भव्य शाहबाग उद्यान का प्रबंधक (मैनेजर) बनाया गया। उस उद्यान की मालिकिन ढाका की नवाबजादी प्यारी बानू थीं जो कोलकाता रहती थीं। रमणी मोहन जी को रहने के लिए उद्यान के भीतर ही निर्मित एक सुन्दर मकान दिया गया। इस मकान में एक बड़ा हॉल था जिसके दोनों ओर दो छोटे कमरे थे। साथ ही एक अन्य छोटा सा हॉल था - 'खानाघर'। माँ के साथ रमणी मोहन शीघ्र ही इस मकान में रहने के लिए आ गए।

शाहबाग में माँ में उल्लेखनीय परिवर्तन देखे गये एवं यहीं 'मातृलीला' सामने आने का क्रम प्रारंभ हुआ। यद्यपि माँ उस समय तक एक सामान्य गृहिणी की तरह रमणी मोहन जी की भोजन आदि सामान्य आवश्यकताओं का ध्यान रख रही थीं किन्तु धीमे-धीमे माँ भोजन पकाने, बर्तन साफ करने जैसे घरेलू कामकाज को सम्पन्न करने में असमर्थ होने लगीं क्योंकि माँ प्रायः गहरी भावावस्था में डूब जाती थीं। ऐसे समय में उन्हें आसपास ही नहीं, अपने देह तक की सुध नहीं रहती थी। ऐसी अवस्था कई बार कुछ घण्टे और कई बार कुछ दिनों तक खिंच जाती थी। रमणी मोहन जी माँ की अवस्था को लेकर चिंतित रहने लगे। वे भी इस बात को

स्वीकार करने लगे कि माँ अब गृहिणी की तरह घरेलू कामकाज नहीं संभाल सकतीं। इसके कुछ ही समय बाद यह समस्या तब हल हुई जब रमणी मोहन जी की छोटी बहन विधवा होने के पश्चात उनके घर रहने के लिए आ गईं। उन्होंने घर के सारे दायित्व संभाल लिए। उन्हें सब 'मटरी पिशीमा' बुलाते थे। (बुआ को बांग्ला भाषा में पिशीमा कहते हैं)

बाल्यावस्था से ही माँ को कीर्तन गान और इनकी धुन में असीम आकर्षण और खिंचाव था। "हरि बोल" कीर्तन होने पर माँ का भाव और अवस्था में विचित्र परिवर्तन हो जाती थी तथा उनकी देह में अलौकिक अवस्थाएं प्रकाशित होने लगती थीं। भाव की यह अवस्था दिनोंदिन गाढ़ी होने लगी थी। माँ के कानों में जैसे ही कीर्तन की ध्वनि पड़ती, उनकी देह स्थिर हो जाती और कोई काम करना सम्भव नहीं हो पाता था। कभी इसी अवस्था में वे भूमि पर गिर पड़ती थीं। फिर कभी दोनों बाहें ऊपर उठाए, आंखें बिना पलकें झुकाए, पांव के अंगूठे पर या कभी पंजों पर, कभी एड़ियों पर एकदम सीधी खड़ी हो जाती थीं। कभी सिर पीछे को झुककर पीठ से मिल जाता था, मानों गर्दन में हड्डी ही नहीं हो। कभी बिना हिले-डुले शिला की तरह खड़ी रहती थीं। कभी सांस की चाल, कीर्तन की ताल से मिलने लगती और शरीर झूमने लगता। कभी ऐसे वेग से कीर्तन के स्थल पर पहुंचती कि बिजली की चमक की भांति देखते-देखते कहीं से कहीं पहुंच जाती। बहुधा आनन्द विह्वल होकर भूमि पर लोटने लगतीं जैसे सूखे पत्ते को हवा उड़ा ले जाती है। उस समय उन्हें रोकना या पकड़ कर रखना बहुत कठिन हो जाता था। देखने से यह आश्चर्य होता कि जो अभी घूंघट काढ़े एक संकोची वधू की तरह बैठी थी, अब उसकी यह अवस्था है कि उसे न देह की खबर है न वस्त्र संभालने की सुधि। ऐसी प्रत्येक अवस्था में माँ को अपने आसपास की परिस्थितियों की कोई सुध नहीं रह जाती थी।

कभी-कभी इस भावावस्था में शरीर बहुत लम्बा हो जाता था और कभी बहुत छोटा। कभी गोल पिण्डी बन जाता था मानों शरीर में कोई हड्डी ही न हो। कभी उनका शरीर भावावस्था में कांपने लगता था। कभी उनका शरीर आनन्द से इतना भर जाता कि वह रक्ताभ हो जाता था और रोंगटे खड़े हो जाते थे। कई बार जब वह रोने लगती थीं तो मानों उनकी



माँ अपने पिता बिपिन बिहारी भट्टाचार्य एवं माता मोक्षदा सुंदरी के साथ



माँ, माता स्वामी मुक्तानन्द गिरिजी एवं माँ के एकमात्र भाई माखन (मामाजी) के साथ



माँ, बाबा भोलानाथ के साथ

आंखों से आंसुओं का झरना फूट पड़ता था अथवा जब वह बेतहाशा हंसने लगती थीं तो कई बार लोग किसी अनिष्ट की आशंका से कांप जाते थे। माँ जब भी कीर्तन सुनती थीं तो उनके शरीर में होने वाले असंख्य दिव्य भावों का समुचित वर्णन करना असंभव है।

बर्षो बाद जब माँ से किसी ने पूछा था कि वे उस प्रकार के "महाभाव" अब क्यों नहीं दिखाती हैं जो माँ में पहले दिखाई पड़ता था, तो माँ ने कहा था कि उस समय जब भी कोई व्यक्ति उस भाव को देखने की प्रबल इच्छा के साथ माँ के पास आता था तो वह भाव स्वयं अपने आप माँ के भीतर से प्रकट हो जाता था। यद्यपि माँ ने स्पष्ट किया कि उनका शरीर क्रमिक रूप से अब इतना सामान्य हो गया है कि लोगों को कभी कभी यह भी संदेह होने लगता है कि माँ में कोई आध्यात्मिकता है भी? जब कि माँ की स्थिति बिल्कुल वैसी ही थी जैसा कि वह पहले थीं।

जनवरी 1926 में सूर्य ग्रहण के अवसर पर शाहबाग में कीर्तन आयोजित हुआ था। यह पहला अवसर था जब माँ का 'महाभाव' सार्वजनिक तौर पर लोगों की दृष्टि में आया। लोगों ने माँ के कांतिमय और अद्भुत व्यक्तित्व के बारे में चर्चा शुरू कर दी। उनके अलौकिक चुंबकीय व्यक्तित्व एवं उच्च आध्यात्मिक शक्तियों की चर्चा एक मुंह से दूसरे मुंह फैलने लगी, जैसे-वे दूसरों का मन स्वतः जान लेती हैं, यदि उन्हें भाता है तो वह दूसरों को भावी घटनाएं बता देतीं हैं जो बाद में सत्य सिद्ध हो जाती, लोग उनके पास प्रार्थना कर असाध्य रोगों से मुक्ति पा जाते हैं, आदि। न जाने ऐसी कितनी बातें - कितने प्रसंग होते रहे। शाहबाग में उनके निवास स्थान में बड़ी संख्या में लोगों के आने का क्रम शुरू होने लगा। उनमें से कई लोगों की यह मान्यता थी कि माँ स्वयं दुर्गा माता का मानवीय अवतार हैं। कई उन्हें साक्षात माँकाली मानते थे और "मानुष काली" कहकर सम्बोधित करते थे। यद्यपि अधिकतर लोगों के बीच वे "शाहबाग की माँ" के नाम से प्रसिद्ध थीं।

उस समय ढाका में पदस्थ कई बड़े सरकारी अधिकारी एवं शहर के विभिन्न गणमान्य लोग आजीवन के लिए सपरिवार माँ के शरण में आ गए। उनमें से सबसे महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट थे - श्री ज्योतिष चन्द्र राय, आई. एस. ओ.। वे ब्रिटिश इम्पीरियल सर्विस में कृषि निदेशक के निजी

सहायक के रूप में उच्च पद पर पदस्थ थे। बाद में चलकर वे ''भाईजी'' के नाम से विख्यात हुए। उस समय माँ के एक अन्य विख्यात भक्त थे डॉक्टर शशांक मोहन मुखोपाध्याय। वे काफी प्रसिद्ध डॉक्टर और ढाका के सिविल सर्जन थे। बाद में उन्होंने माँ के निर्देशानुसार संन्यास ले लिया था और स्वामी अखण्डानन्द के रूप में जाने जाते थे। उनकी पुत्री माँ के भक्तों में ब्रह्मचारिणी गुरुप्रिया देवी के रूप में काफी प्रसिद्ध हुईं। आयकर आयुक्त श्री शचिकांत घोष, उप महा डाकपाल श्री प्राणगोपाल मुखोपाध्याय, आयकर सहायक आयुक्त श्री निरंजन राय, राय बहादुर श्री योगेश घोष, ढाका लॉ कालेज के प्रोफेसर श्री अमूल्य कुमार दत्तगुप्त तथा कई अन्य प्रबुद्ध लोग माँ से अत्यधिक प्रभावित हुए थे। इसी समय से सभी ने उन्हें 'माँ' और रमणी मोहनजी को 'बाबा भोलानाथ' कहकर सम्बोधित करना शुरू कर दिया था।

इस समय बहुत से लोगों को श्री माँ की असंख्य विभूतियों का अनुभव एवं माँ के विभिन्न दिव्य रूपों का प्रत्यक्ष दर्शन करने का भी परम सौभाग्य मिला। जैसे-जैसे लोगों को माँ की अनन्त दैवी शक्तियों के बारे में पता चलना शुरू हुआ, उनका अपने व्यक्तिगत उद्येश्यों की पूर्ति के लिए माँ के पास आने का क्रम भी प्रारंभ हो गया। कुछ माँ की कृपा प्राप्त करने के लिए तो कई अपनी आध्यात्मिक आकांक्षाओं अथवा सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए आते थे। कुछ लोग बीमारियों, गरीबी, निकट परिजन को गंवाने के शोक आदि सांसारिक तापों से मुक्ति पाने के लिए उनके समीप आने लगे। सभी माँ का आशीष एवं कृपा प्राप्त करना चाहते थे।

भक्तों ने सन् 1926 में नवरात्रि के समय दुर्गापूजा के अंतिम तीनों दिन शाहबाग में श्री श्री माँ की पूजा करने की आकांक्षा व्यक्त की थी। यद्यपि सप्तमी पूजा के दिन देखा गया कि माँ सुबह से शाम तक अपना कमरा बंद करके बैठी रहीं। केवल बाबा भोलानाथ ही अन्दर जा सकते थे। परिणाम स्वरूप माँ के कमरे के बंद द्वार पर ही पूजा सम्पन्न करवाई गई। इसी ढंग से अष्टमी एवं नवमी तिथि को भी पूजा सम्पन्न हुई। दशमी के दिन माँ ने समीप के तालाब में छलांग लगाकर सबको विस्मय में डाल दिया। उनका यह कृत्य इस अवसर पर दुर्गा प्रतिमा के विसर्जन के समान था। माँ तालाब से बाहर आने को बिल्कुल तैयार नहीं थीं। बाद में काफी

अनुरोध एवं मनाने के बाद वे बाहर निकलीं। श्रद्धालु इस बात को लेकर आश्चर्य व्यक्त कर रहे थे कि क्या माँ स्वयं हीं माँदुर्गा में परिवर्तित हो गई हैं?

शाहबाग में सन् 1926 में दीपावली की रात्रि में काली पूजा की व्यवस्था हुई। इसके एक दिन पहले देखा गया कि भोजन ग्रहण करते समय माँ ने भावावस्था में हाथ ऊपर उठा दिया एवं ऊपर की ओर उनकी दृष्टि स्थिर हो गयी थी। कुछ दिन बाद माँ ने प्रकाश किया कि शून्य में प्रकाशित हुईं माँकाली उछल कर उनकी गोद की ओर आ रही थीं। बाबा भोलानाथ के सुझाव के अनुसार माँ के उठे हुए हाथ के नाप के बराबर माँकाली की मूर्ति लाना निश्चित हुआ। बहुत ढूंढने के बाद एक मूर्तिकार के पास मिट्टी से बना ऐसी ही एक मूर्ति मिल गई जिसे खरीद कर लाया गया। इस सुन्दर मूर्ति के शरीर का वह रंग था जो नीला व हरा रंग के मिश्रण से बनता है। मूर्तिकार ने इसे किसी ग्राहक के आदेश के बिना अपने मन से ही बनाया था। दीपावली की रात्रि को बाबा भोलानाथ ने माँ से यह विशेष आग्रह किया कि वे स्वयं माँकाली की पूजा करें। पूजा के उपरान्त यज्ञ प्रारम्भ किया गया। माँ के अपने ख्याल से यज्ञ के अन्त में पूर्णाहुति संपन्न नहीं की गई और उसके बाद से यज्ञाग्नि को अक्षुण्ण रखा गया। माँकाली की प्रतिमा का भी विसर्जन नहीं किया गया। तीन युवा ब्रह्मचारियों...योगेश, कमलाकान्त एवं अतुल की सहायता से माँकाली प्रतिमा की नित्य पूजा एवं पवित्र अखण्ड यज्ञाग्नि में नित्य हवन को जारी रखा गया। तीनों ब्रह्मचारियों ने जीवन पर्यन्त माँ की सेवा की और आश्रम में रहकर आध्यात्मिक जीवन व्यतीत किया। माँ ने कहा था- ''तुमने ऋषि-मुनियों के बारे में पढ़ा होगा - क्या नहीं पढ़ा? उनका आज भी अस्तित्व है।'' उन्होंने इसके सर्वोत्तम उदाहरण के रूप में इन तीन ब्रह्मचारियों की ओर इंगित किया। बहुत बाद में उन तीनों ने माँ के निर्देशानुसार संन्यास वरण किया था।

इनमें से कमलाकांत अनाथ थे। वह माँ के पास किशोर अवस्था में ही आ गए थे। वे उस समय मिर्गी के रोग से पीड़ित थे। माँ को एक बार कहीं जाना था और कमलाकांत को सवारी लाने के लिए भेजा गया। वे सवारी को शाहबाग के फाटक तक ले आए और जब वह माँ को सूचित करने जा रहे थे, अचानक उन पर मिर्गी का दौरा पड़ गया। वे दौड़े और गिरने से पहले उनके मुंह से निकला- ''मां...सवारी'', और यह कहकर वे

अचेत हो गए। माँ बाहर निकली और सवारी की ओर जाते हुए उन्होंने अपने पैर के अंगूठे से उनके सिर पर हल्का सा स्पर्श किया। उसके बाद कमलाकांत इस रोग से सदा के लिए मुक्त हो गए।

ढाका में माँ के कुछ मुसलमान भक्त भी थे। ढाका का नवाबी परिवार और शाहबाग की मालिकिन नवाबजादी शाहबानो भी उनमें शामिल थे। वे माँ का विशेष आदर एवं सम्मान करते थे। एक बार नवाबजादी ने सपरिवार माँ के स्थान पर भोजन किया। माँ ने उनके लिए स्वयं भोजन पकाया था। इस अवसर पर नवाबजादी ने माँकाली के गले में सोने की 'मुण्डमाला' पहनायी थी।

शाहबाग में प्रायः रात को कीर्तन आयोजित होता था जिसमें मात्र महिलाएं ही उपस्थित रहती थीं। ऐसे कीर्तनों में महिलाएं बड़ी संख्या में आती थीं और पूरी रात माँ के साथ कीर्तन करते हुए बिता देती थीं। एक रात एक मुस्लिम लड़का कीर्तन हॉल के बाहर अन्धेरे में छिपकर कार्यक्रम को देख रहा था। माँ का दिव्य भावस्थ अवस्था देखकर वह न जाने कहां खो गया। माँ स्वतः बाहर निकल आई और उस लड़के को लेकर शाहबाग के एक ओर निर्जन स्थल पर गयीं जहां एक मुसलमान संत की मजार थी। माँ ने एक आस्तिक मुसलमान की तरह पहले ऊंचे स्वरों में अजान दी और फिर नमाज अदा की। नमाज के दौरान मुस्लिम युवक ने माँ का साथ दिया। सभी आश्चर्य चकित थे क्योंकि उन्हें मालूम था कि माँ ने कभी इस्लाम धर्म की शिक्षा नहीं ली। बाद में उस लड़के ने खुलासा किया कि उसने पहले कभी ऐसी सटीक अजान नहीं सुनी और इसे सुनने के दौरान उसे दिव्य आनन्द की अनुभूति हुई।

इस घटना का समाचार शाहबाग की नवाबजादी तक भी पहुंचा। वे माँ को उस मजार में ले गईं और वैसे नमाज अदा करने की प्रक्रिया को दोहराने का अनुरोध करने लगीं। किन्तु माँ के मुंह से नमाज के बदले अरबी भाषा में कुरान की आयातें धाराप्रवाह ढंग से निकलने लगीं। माँ के इन असामान्य वचनों को सुनने के बाद नवाबजादी की शिक्षित पुत्रवधू ने कहा कि माँ के शब्द उस पवित्र कुरान के हैं जो मूल अरबी भाषा में लिखी गई है। इस प्रकार यह खुलासा हुआ कि माँ सभी धर्म एवं भाषा की सीमाओं से परे हैं तथा सभी धर्मों एवं भाषाओं के प्रति उनमें समान आदर का भाव है। इसका दूरगामी प्रभाव हुआ।

सिद्धेश्वरी में प्राचीन पीठ का पुनरूद्धार

बाजितपुर में रहते समय माँ को सूक्ष्म रूप से एक वृक्ष के दर्शन हुए थे। ढाका आने के बाद माँ ने सिद्धेश्वरी के बारे में बात करना और पता लगाना शुरू कर दिया। माँ के एक भक्त तथा बाबा भोलानाथ के बचपन के मित्र, बाउल चन्द्र बसाक, अगस्त 1926 में माँ को सिद्धेश्वरी ले गये। ढाका नगर के सीमान्त में यह सिद्धेश्वरी स्थल था। यह जगह लोगों के लिए अज्ञात थी और उस समय चारों ओर से घने जंगलों से घिरी हुई थी।

काफी पूछताछ और तलाश के बाद पता चला कि सिद्धेश्वरी एक प्राचीन स्थल था जहां सुमेरूवन नामक एक संन्यासी ने वहां प्राचीन काली-मंदिर की स्थापना की थी। वहां वट, चन्दन और पीपल के तीन पेड़ एक दूसरे से लिपट कर एक ही वृक्ष बन गये थे जिसे ''तिन्तिरी'' के नाम से जाना जाता था। माँ जब वहां पहुंची थी तो वहां केवल पीपल का ही वृक्ष था जो भूमि पर गिरा हुआ था एवं सुरक्षित बच गया था। माँ ने बताया कि उन्होंने बाजितपुर में रहते हुए इस स्थान और इस वृक्ष के सूक्ष्म रूप में पहले ही दर्शन किये थे। इसे सुनकर बाउल बाबू ने कहा कि यहां प्राचीन मान्यता है कि कभी तिन्तिरी से निकली हुई ज्योति काली मंदिर में स्थित काली प्रतिमा में समा गई थी। वहां एक अलग पंचमुंडी आसन भी है जो तांत्रिक साधना के लिए बहुत अनुकुल माना जाता है।

कुछ समय बाद माँ भोलानाथ जी के साथ सिद्धेश्वरी काली मंदिर गईं। मंदिर के पीछे एक कमरे में माँ सात दिनों तक रहीं। रात-दिन उस कमरे के फर्श पर माँ लेटी रहती थीं। इन दिनों लगातार वर्षा होती रही। सातवें दिन भोर में बाबा भोलानाथ के साथ माँ बाहर निकलीं। उस समय वर्षा प्रायः बंद हो चुकी थी। माँ एक स्थल तक गईं और उसकी तीन बार परिक्रमा की तथा वहीं बैठ गईं। माँ ने उस जगह की भूमि पर हाथ रखकर किंचित दबाव डाला तो उनका हाथ कंधे तक जमीन के भीतर धंसता गया। यह देखकर चिंता में पड़े भोलानाथ जी ने जोर डालकर माँ का हाथ बाहर निकाल लिया। जैसे ही माँ का हाथ बाहर निकला उस छोटे से छेद में से रक्त के रंग वाला लाल जल-धारा के रूप में बाहर निकलने लगा। यह वह विशिष्ट पवित्र स्थल था जिसके बारे में माँ ने इंगित किया कि यह ''सिद्धेश्वरी पीठ'' है। यह काली मंदिर की उत्तर दिशा में स्थित थी। इस

स्थान के बारे में माँ के श्रीमुख से यह वचन निकला-" पांच हजार पांच सौ पांच वर्ष के अन्तराल में विशेष साधकगण इस स्थान पर आते रहते हैं। बाबा भोलानाथ भी उनमें से एक थे जिन्होंने प्राचीनकाल में यहां तप किया था।" कहा जाता है कि आदि शंकराचार्य भी इस स्थान पर आये थे।

माँ के निर्देशों के अनुसार इस स्थल पर डेढ़ हाथ लम्बी एवं डेढ़ हाथ चौड़ी वेदी निर्मित की गई। इस पवित्र स्थल को चारों ओर से दस हाथ लम्बे एवं उतने ही चौड़े बांसों से घेर दिया गया। इस प्रकार माँ ने सिद्धेश्वरी पीठ का पुनरूद्धार किया। सन् 1926 में माँ का प्रथम आश्रम इस पवित्र भूमि पर एक कमरे के निर्माण होने से प्रारम्भ हुआ था। बाद में सन् 1928 में यहां एक बड़े आश्रम का निर्माण सम्पन्न हुआ। उसी वर्ष उस स्थल पर माँ का द्वितीय जन्मोत्सव मनाया गया। जन्मोत्सव के अवसर पर बाबा भोलानाथ ने माँ की पूजा की थी।

कई बार माँ सिद्धेश्वरी आश्रम में जाकर उस वेदी पर बैठ जातीं और गहरे भाव में निमग्न हो जातीं। उस समय उनके चारों ओर कीर्तन प्रारम्भ हो जाता। इसी वेदी पर बैठी माँ का दिव्य स्वरूप निहार कर ज्योतिष बाबू (भाईजी) ने बाबा भोलानाथ से भाव विह्वल होकर कहा था कि अब से हम माँ को "आनन्दमयी माँ" कहेंगे। भोलानाथ जी ने इसके लिए तुरंत सहमति दे दी। उसके बाद से "आनन्दमयी माँ" के रूप में ही माँ सर्वत्र परिचित हुईं। यहीं पर बैठे हुए माँ ने सबसे कहा था-"तुम लोगों के कर्म के लिए इस शरीर को तुम लोग ही ले आए हो।"

इसी स्थान पर अप्रैल 1926 के नवरात्रि में प्रथम बसंत दुर्गा पूजा सम्पन्न की गई जिसके लिए बाबा भोलानाथ की बहुत आकांक्षा थी। माँ के प्रति सभी के श्रद्धा और प्रेम भाव के कारण देवी दुर्गा की प्रतिमा की ऊंचाई माँ के समान रखी गई। माँ ने इच्छा व्यक्त की थी कि तीन दिवसीय पूजा में उपस्थित सभी लोगों को भोग-प्रसाद दिया जाए किन्तु जो भी अन्नभोग एक बार पकाया जाए एवं देवी को अर्पित किया जाए, उसी का वितरण हो। रसोई दोबारा न पकायी जाए।

अष्टमी पूजा के दिन माँ की "अन्नपूर्णा" लीला तब देखने को मिली जब भोग प्रसाद के वितरण के बाद केवल वितरकों के लिए ही बहुत कम भोग प्रसाद बचा था। दोपहर बाद कई पुरुष एवं महिलाओं का एक

दल माँदुर्गा के दर्शन के लिए वहां पहुंच गया। माँ ने निर्देश दिया कि जो थोड़ा बहुत प्रसाद बचा है उसी में से इन लोगों को भोजन करवा दिया जाए। आश्चर्य की बात यह हुई कि सबको भरपेट भोजन कराने के बाद भी आश्रम में प्रसाद पाने से बचे लोगों के लिए भी पर्याप्त भोग प्रसाद बच गया था।

इससे एक दिन पहले सप्तमी पूजा दिवस पर एक विचित्र घटना घटी। भोलानाथ जी के बड़े भाई की पुत्री लावण्य इस पूजा में शामिल होकर बड़ी प्रसन्न थी। उसी दौरान जब माँ भावावस्था में वेदी पर खड़ी हो गईं तो लावण्य उनके पास चली गई। उसने अपनी काकीमाँ का कुशल क्षेम पूछते हुए उन्हें आलिंगनबद्ध कर लिया। उसने जैसे ही माँ को स्पर्श किया उसके भाव में एकाएक अद्‌भुत परिवर्तन आ गया। माँ के वहां से जाने के बाद अन्य सभी लोग जब उस कमरे से बाहर चले गए, लावण्य उस भावविभोर अवस्था में पहले लड़खड़ाई और फिर नीचे गिर पड़ी। वह आसपास की परिवेश से बेसुध होकर कमरे के समीप फिसलन भरी गीली मिट्‌टी में आनन्द से लोट रही थी और उसके मुंह से मंद-मंद स्वरों में निकल रहा था-"हरि बोल।" लावण्य को इस स्थिति में देख उसकी जननी प्रमोदा देवी (माँ की जेठानी) बहुत दुविधा में पड़ गईं और उन्होंने लगभग क्रोधित स्वरों में माँ से उसे सामान्य स्थिति में लाने को कहा। उस समय उसकी आध्यात्मिक उच्च स्थिति को देख माँ ने कहा कि वह जिस अवस्था में स्थित है वह काफी साधना के बाद भी प्राप्त नहीं होती। माँ ने अनिच्छा से उस पर एक क्रिया की और लावण्य सामान्य हो गई। यद्यपि दिव्य आनन्द का बोध उसमें काफी दिनों तक बना रहा।

माँ के जन्मोत्सव पर बाबा भोलानाथ ने सन् 1932 में यहां एक शिवलिंग स्थापित किया। वहां एकत्रित लोगों की ओर देखते हुए माँ ने एक बार कहा था-"द्वेष, हिंसा, भूल जाने का प्रयत्न करो। द्वेष, हिंसा निंदा ही यदि करनी है तो यहां आने से क्या लाभ? जो भी यहां आ रहे हैं, उन सभी को तैयार होना होगा। अभी तक तो कुछ नहीं हुआ है, भूमि पर फावड़े की केवल चोट ही पड़ी है। कितना सहना पड़ेगा, कितने तूफान उठेंगे। उस तूफानी हवा में जिनको चला जाना है, वे चले जाएंगे। जिनको रहना है, रह जाएंगे।"

माँ का यह संकेत करीब दो दशक बाद जाकर स्पष्ट हुआ। भारत के दो स्वतंत्र देशों में विभाजित होने के दौरान भीषण सांप्रदायिक दंगे हुए।

भारत एवं पाकिस्तान, दो स्वतंत्र देशों का गठन हुआ। बड़ी संख्या में लोग मारे गए। हिन्दुओं की बड़ी आबादी को पूर्वी एवं पश्चिमी पाकिस्तान से विस्थापित होकर स्वतंत्र भारत में आना पड़ा।

ढाका में रमणा आश्रम की स्थापना

सन् 1928 में शाहबाग उद्यान ब्रिटिश सरकार को सौंप दिया गया। इसके फलस्वरूप भोलानाथ जी और कई अन्य कर्मचारियों को नौकरी गंवानी पड़ी। भोलानाथ जी और माँ सिद्धेश्वरी आश्रम में आ गईं। माँकाली की प्रतिमा और यज्ञ की पवित्र अग्नि को भी सिद्धेश्वरी ले आया गया।

माँ ने सन् 1929 में बाबा भोलानाथ को श्रद्धालुओं को दीक्षा देने के लिए अधिकृत किया। वे एक सिद्ध महापुरुष थे। भोलानाथ जी श्रद्धालुओं से सदा यह कहते थे कि वे अपने हृदय में माँ को सर्वोपरि रखें। वे अपने लिए कुछ नहीं चाहते थे, माँ ही उनके लिए सर्वस्व थीं। बाबा भोलानाथ श्रद्धालुओं के प्रति अपने दयालु स्वभाव के लिए ही नहीं, उन्हें माँ के समीप लाने में सहायक एवं साधना में उनके मार्गदर्शक के रूप में भी जनप्रिय थे। किसी की साधना में सहयोग करने में वे सर्वदा तत्पर रहते थे। बाबा भोलानाथ और भाईजी इस बात को लेकर काफी सतर्क रहते थे कि केवल वास्तविक आध्यात्मिक जिज्ञासु ही माँ से व्यक्तिगत रूप से भेंट कर पाएं।

माँ जब शाहबाग में थीं तो एक दिन ज्योतिष बाबू एवं निरंजन बाबू ने माँ से एक उपयुक्त आश्रम बनवाने की आवश्यकता की विनती की। इस पर माँ ने कहा–"जगतव्यापी तो एक ही आश्रम है, अलग एक आश्रम बनवाकर क्या करोगे?" ज्योतिष बाबू ने कहा कि वे एक ऐसा स्थान चाहते हैं जहां माँ के चरणों में रहकर साधन-भजन आदि किया जा सके। उस समय माँ ने रमणा के मैदान में एक स्थान की ओर इशारा कर कहा कि गोकुल ठाकुर का वह स्थान ही तुम लोगों के लिए उपयुक्त है। जमीन लेते समय यह ज्ञात हुआ कि वह भूमि बहुत पहले गोकुल ठाकुर नाम के किसी व्यक्ति की ही थी। माँ ने यह भी इंगित किया कि इस जगह पर पहले दुर्गा बाड़ी थी और यहां इतनी अधिक बार यज्ञादि सम्पन्न हुए कि यहां के धूल के कण भी पवित्र हैं। बाद में माँ का आश्रम भी ठीक उसी स्थान पर बना।

प्राचीनकाल में यह भूखंड दशनामी संप्रदाय के महान योगियों की तपोस्थली थी। वहां आश्रम के निर्माण के समय ऐसे महात्माओं की कई समाधि मिलीं। वे सभी सूक्ष्म रूप में माँ के पास आए थे और उन्होंने माँ से वहीं रहने की प्रार्थना की थी। मई 1929 में सिद्धेश्वरी में आयोजित जन्मोत्सव के बाद श्री माँ नवनिर्मित आश्रम में स्थानांतरित हो गईं। माँकाली की प्रतिमा और यज्ञ की पवित्र अग्नि को भी सिद्धेश्वरी से वहां ले आया गया।

वर्ष 1930 में ढाका से काफी दूर 'कक्स बाजार' (बांग्लादेश) में जब माँ कुछ समय के लिए गई थीं उस समय एक विचित्र घटना घटी। माँ ने अमावस्या की रात में विचित्र ढंग से व्यवहार करना प्रारंभ कर दिया। माँ ने उस रात अपने ही एक हाथ से दूसरे हाथ को मरोड़ना शुरू कर दिया और कहने लगी कि वे इसे तोड़ देंगी। बाद में माँ का हाथ कसकर पकड़ा गया और उन्हें ऐसा करने से रोका गया। उस समय उनके चेहरे पर दैवीय मुस्कान थी किन्तु आंखों से आंसू निकल रहे थे। पूरी रात माँ की यह विचित्र स्थिति बनी रही। कुछ दिनों बाद ढाका से भाईजी का एक पत्र प्राप्त हुआ। उससे पता चला कि एक चोर अमावस्या की रात को रमणा के आश्रम में घुस गया था। उसने माँकाली की प्रतिमा का एक हाथ तोड़कर पहनाए गए स्वर्णाभूषण चुरा लिये। इस पत्र से यह भी पता चला कि जिस समय माँकाली की मृण्मयी मूर्ति का हाथ तोड़ा जा रहा था, उसी समय माँ में यह विचित्र व्यवहार दिखाई दिया और उन्हें स्वयं अपना हाथ तोड़ने का प्रयास करते हुए देखा गया। कुछ दिनों बाद जब इस प्रतिमा के टूटे हाथ को मिट्टी से जोड़ा जा रहा था तो माँ ने उस मिट्टी में अपने रक्त की बूंदें मिला दी थीं। यह अनूठी घटना क्या यह नहीं प्रदर्शित करती है कि देवी काली एवं माँ में कोई भेद नहीं है?

उन दिनों उच्च आध्यात्मिक विभूतियों वाले कई महापुरुष माँ के दर्शन करने रमणा आश्रम आते थे। पूर्वी बंगाल के उच्च अनुभूति सम्पन्न वयोवृद्ध संत राम ठाकुर एक दिन आए और माँ को साष्टांग प्रणाम किया। पूज्य राम ठाकुर अन्य लोगों से कहा करते थे-''जाइए और माँ के दर्शन करिए। वह मनुष्य रूप में स्वयं भगवती हैं।''

रमणा आश्रम के मंदिर में सन् 1931 में चांदी के सिंहासन पर आसीन माँ अन्नपूर्णा की एक स्वर्ण प्रतिमा स्थापित की गई। अन्नपूर्णा की

एक तरफ भगवान शिव अपना कमंडल लिए विराजमान थे तो दूसरी तरफ माँकाली की प्रतिमा थी। माँ ने इन प्रतिमाओं का इन्हीं स्वरूप में पहले दर्शन किया था। चांदी के सिंहासन के ऊपर भगवान विष्णु का विग्रह था और नीचे गणेश जी। इन प्रतिमाओं को माँ के द्वारा व्यवहारित स्वर्णाभूषणों और चांदी के कलश से बनाया गया था। सन् 1932 में ज्योतिष दा (भाईजी) के दिशानिर्देशन में इन प्रतिमाओं को फिर से गढ़ा गया। बाबा भोलानाथ ने स्वयं माँ अन्नपूर्णा की प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा की थी।

उन दिनों माँ के जन्मोत्सव की पूजा माँ अन्नपूर्णा की इस प्रतिमा पर ही सम्पन्न होती थी। माँ ने प्रतिमा की पूजा, भोग आदि सम्पन्न कराने का दायित्व पांच ब्रह्मचारियों को दिया था। इन पांचों के लिए किसी अन्य का दिया या पकाया गया भोजन ग्रहण करना निषिद्ध था। कई बार माँ ने देवी के अन्नभोग के लिए स्वयं भोजन पकाया था।

माँ अन्नपूर्णा के आसन के नीचे गुफानुमा कमरे में माँकाली की पूर्वोक्त प्रतिमा को स्थापित कर द्वार बंद कर दिया गया। वर्ष में केवल एक ही दिन माँ के जन्मोत्सव पर इस कमरे को दर्शन के लिए खोला जाता था। वर्ष 1938 में माँकाली प्रतिमा के स्वयमेव खंडित हो जाने के कारण भूमिगत कमरे के द्वार पर ईंट की दीवार चिनवा कर उसे सदा के लिए बंद कर दिया गया।

एक रात्रि यहां उत्सव के दौरान माँ तथा लगभग तीस महिला भक्तों ने बिना रुके निरंतर भगवत नामों का कीर्तन किया। अगले दिन करीब 150 महिलाओं ने पूरी रात कीर्तन किया तथा माँ भी प्रसन्नता से उसमें शामिल हुईं। इस प्रकार के कीर्तन के बारे में माँ का कहना था-"कीर्तन क्यों किया जाता है, उसका आशय क्या है? जब उनका नाम लेकर पुकारोगे तो वह जवाब देगा। देखो! जब तुम अपनी माँ को पुकारते हो तो वह तुरंत तुम्हारे पास आ जाती है।" बाद में भाईजी ने "माँ नाम कीर्तन" की शुरुआत की।

सन् 1947 में भारत का विभाजन होते समय यज्ञ की पवित्र अग्नि और अन्नपूर्णा की उपरोक्त प्रतिमा को काशी आश्रम लाया गया। सन् 1950 में इस आश्रम में नवनिर्मित अन्नपूर्णा मंदिर में इस विग्रह को स्थापित किया गया। रमणा आश्रम में 31 मई 1945 को बाबा भोलानाथ की जो प्रतिमा

स्थापित की गई थी, उसे भी बाद में वहां से लाकर कोलकाता के आगरपाड़ा आश्रम में स्थापित किया गया।

रमणा आश्रम अब अस्तित्व में नहीं है। जब 1971 में पाकिस्तान की सेना ने रमणा मैदान में भारतीय सेना के समक्ष आत्मसमर्पण किया तो वहां की नवगठित सरकार ने ''शहीद स्मारक'' बनवाने के लिए रमणा मैदान की सफाई करवा दी। उसी समय रमणा मैदान में स्थित माँ का आश्रम भी ध्वस्त कर दिया गया। माँ ने बाद में कहा था- ''रमणा आश्रम अब ध्वस्त हो चुका है किन्तु सिद्धेश्वरी आश्रम अक्षुण्ण रह गया। यह तब तक वहां बना रहेगा जब तक कि वहां कोई बुराई न पनपे।'' देश विभाजन के पहले माँ का ढाका में अंतिम प्रवास 17 से 22 अप्रैल 1946 के बीच रहा एवं तदपश्चात माँ का वहां जाना नहीं हुआ। उस समय माँ के कई करीबी भक्त काशी आ गये और वहीं रहने लगे।

अध्याय-तृतीय

माँ का भारत भ्रमण

श्री माँ समग्र मानवता के कल्याण के लिए मानवीय स्वरूप में आईं थीं। परिणामस्वरूप माँ के लिए मात्र ढाका तक सीमित रह जाना संभव नहीं था। वर्ष 1926 में ढाका में तैनात डाक उपमहापाल श्री प्राणगोपाल मुखोपाध्याय ने श्री माँ से आग्रह किया कि वे उनके गुरु एवं प्रसिद्ध योगीराज बालानन्द ब्रह्मचारी से भेंट करें। उन्होंने माँ, बाबा भोलानाथ और कुछ अन्य को बिहार के 'देवघर' में स्थित उनके गुरु के आश्रम में ले गए। उस समय बालानन्द जी की आयु लगभग सौ वर्ष की थी। माँ से मिलकर वे बहुत प्रसन्न हो गए और बोले-"बेटी, एक दिन तुम सूक्ष्म रूप में दर्शन दे गई थी, आज स्थूल रूप में दर्शन देने आई हो।" माँ ने विनम्रतापूर्वक कहा-"बाबा का शरीर ठीक नहीं था इसलिए ये बच्ची देखने के लिए आ गई थी।" वहां उपस्थित सभी लोग अचम्भित हो गए क्योंकि उससे पूर्व माँ का इस स्थान पर कभी आना ही नहीं हुआ था।

एक दिन संध्या कीर्तन हुआ। जैसे ही "हरिनाम कीर्तन" प्रारंभ हुआ, श्री माँ समाधि की अवस्था में चली गईं। वह अकस्मात उठीं और वहां चली गईं जहां लोग कीर्तन कर रहे थे। भावावस्था में वे तेज हवा में निराश्रय डोलने वाले पत्ते के समान भूमि पर लोटने लगीं। कुछ समय तक वे अपने पैर के अंगूठे के बल पर खड़े होकर नाचती रहीं और उनके मुख से "हरि ओम - हरि ओम" की मधुर ध्वनि निकलती रही। उस समय माँ मानवीय स्वरूप में साक्षात देवी प्रतीत हो रही थीं। बालानन्द जी और अन्य लोग उन्हें अचम्भित होकर देख रहे थे। उसी अवस्था में माँ ने बालानन्द जी के सिर को स्पर्श किया। उन्होंने तुरंत माँ का हाथ पकड़ लिया एवं अपने साथ अपने ध्यान मंदिर में ले गए। दोनों के बीच कुछ देर तक वार्तालाप हुआ। उस समय वहां केवल बाबा भोलानाथ ही उपस्थित थे। बाद में बालानन्द जी ने रहस्योद्घाटन किया कि श्री माँ न तो आध्यात्मिक साधिका हैं और न ही उन्हें किसी आध्यात्मिक साधन या प्रार्थना की आवश्यकता है। माँ 'नित्य-सिद्धा' हैं। वे मानवता के कल्याण हेतु किसी शुभ कार्य के लिए आईं हैं और उसके पूर्ण होने पर वापस चली जाएंगी।

देवघर से लौटने के पश्चात माँ ढाका तक ही सीमित नहीं रहीं। वह कोई पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के बिना समस्त भारत के विभिन्न राज्यों का निरंतर भ्रमण करती रहीं। माँ की यात्रा अचानक एवं स्वत: स्फूर्त हुआ करती थीं तथा कोई उन्हें बाधित नहीं कर सकता था। कभी कभी वे मध्यरात्रि में भी चलने का निर्णय ले लेती थीं। वे जहां भी जाती थीं उनके चारों ओर एक अनूठा आनन्दपूर्ण एवं उत्सवमय वातावरण बन जाता था। साधु, महात्मा, विद्वान, दार्शनिक तथा जीवन के सभी क्षेत्रों के लोग उनकी ओर खिंचे चले आते थे। वे उनके आनन्दपूर्ण पवित्र एवं आकर्षक व्यक्तित्व एवं सरल विद्वतापूर्ण वचनों से मंत्रमुग्ध हो जाते थे। उन दिनों कई लोगों को पूजा करते समय पूजा कमरा में एकाएक माँ की दिव्य उपस्थिति अनुभव किया गया।

माँ को कीर्तन बड़ा प्रिय था। कीर्तन दल प्राय: माँ के पास उनकी उपस्थिति में कीर्तन करने के लिए आते थे। कई बार माँ स्वयं नाम कीर्तन करना शुरू कर देती थीं और लोग उसका अनुसरण करते थे। वह भावावस्था में पूर्णत: लेट जाती या हाथ उठाकर मधुरता से नृत्य करने लगती थीं। माँ के इस अनूठे दिव्य भावों को देखकर कीर्तन में भाग लेने वालों का उत्साह और भी बढ़ जाता था। माँ जहां भी जाती लोगों की भीड़ दिनों दिन बढ़ती जाती थी। जो भी आता वह उन्हें भुला नहीं पाता तथा बार-बार उनके पास आना प्रारंभ कर देता। माँ को जो कुछ भी भेंट किया जाता, वे उसे दूसरों में बांट देती थीं। प्रत्येक व्यक्ति उनका सान्निध्य चाहता था और उसकी आकांक्षा पूर्ण हो जाती थी।

कई बार जब लोग माँ को आकुल होकर स्मरण करते थे तो उनकी पुकार से खिंचकर माँ स्वयं उनके पास पहुंच जाती थीं। यह बताना सम्भव नही था कि माँ किसकी व्याकुल पुकार से बंधकर किस ओर चल देगीं। एक ऐसी ही उल्लेखनीय घटना वाराणसी के समीप सारनाथ में घटी। बरेली की एक सरल भक्त महिला माँ के दर्शन के लिए अकेली ही वाराणसी के लिए निकल पड़ी। वाराणसी रेलवे स्टेशन पहुंचने पर उसे यह गलत सूचना मिली कि माँ सारनाथ में हैं जो वहां से दस मील दूर है। अत: वह सारनाथ चली गई। उस समय सारनाथ बहुत निर्जन स्थल था जहां भगवान बुद्ध ने बौद्ध धर्म की शिक्षा पहली बार दी थी। यह महिला वहां काफी भटकी पर उसे कहीं माँ नहीं मिली। इस बीच दिन ढल गया और अंधेरा छा गया।

अपरिचित स्थान होने के कारण महिला घबरा गई। विवश होकर वह बिड़ला धर्मशाला गई और वहां पहली मंजिल पर बने एक कमरे में उसे रुकने को जगह मिल गयी। उसने कमरे में प्रवेश के बाद मोमबत्ती जलाई और निरुपाय होकर माँ को पुकारते हुए रोने लगी।

माँ उस समय वाराणसी में थीं। माँ के आसपास सत्संग चल रहा था। वे सहसा वहां से उठ खड़ी हुईं। उन्होंने आश्रम के एक ब्रह्मचारी को बुलाया और वहां से वे वाराणसी रेलवे स्टेशन की ओर तेजी से बढ़ गईं। स्टेशन के प्लेटफार्म पर जो रेलगाड़ी खड़ी थी, माँ उसी में चढ़ गईं। इस रेलगाड़ी को सारनाथ में नहीं रुकना था किन्तु वह आउटर सिंग्नल पर एकाएक रुक गयी। माँ गहन अंधकार में गाड़ी से उतर गईं और सीधे सारनाथ की ओर चल दीं। अपरिचित स्थान होने के कारण ब्रह्मचारीजी माँ के पीछे पीछे चल रहे थे। माँ तेजी से चलते हुए सीधे बिड़ला धर्मशाला की पहली मंजिल पहुंच गईं और उन्होंने महिला के कमरे की सांकल खटखटाई। उस भक्त महिला ने जब द्वार खोला तो देखा कि माँ सामने खड़ी हैं। क्या यह बताना सम्भव है कि उस सौभाग्यशाली महिला की ऐसी अनहोनी घटना पर क्या हालत हुई होगी? माँ ने सरलता से उसे कहा, ''तुमने इस शरीर को याद किया और मैं यहां आ गई।'' ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिनमें माँ अपने भक्तों की भावपूर्ण पुकार को सुनकर उनके पास पहुंच गईं।

उन दिनों बिना पूर्व निर्धारित भ्रमण के दौरान माँ धर्मशाला, मंदिरों और कई बार वृक्ष के नीचे ही रुक जाती थीं। माँ ने ऐसे किसी भी भवन में रुकना बंद कर दिया था जहां गृहस्थ परिवार निवास करता हो। भाईजी, गुरुप्रिया दीदी एवं अन्य लोग ऐसे दौरों में माँ की रहने की सुविधा को लेकर काफी चिंतित रहते थे तथा वे यह भी चाहते थे जिससे भक्तों को सुविधापूर्वक माँ का दर्शन हो सके। उन्होंने ऐसे स्थानों पर आश्रम के निर्माण की पहल की जहां माँ प्रायः जाया करती थीं। परन्तु माँ को अपने स्वयं के लिए किसी आश्रम की आवश्यकता नहीं थी। एक बार उनके श्रीमुख से निकला था-''यह शरीर तो उड़ती हुई चिड़िया है। यह अपनी मर्जी से कहीं चला जाता है और अपनी मर्जी से ही उड़ जाता है। जब तुम आश्रम कहते हो तो क्या यह नहीं दिखता कि पूरा संसार ही एक आश्रम है?''

बहरहाल, भक्तों के आग्रह पर धीरे-धीरे माँ द्वारा इंगित उन विशेष स्थानों पर माँ के नाम पर आश्रम बने जो प्राचीन समय में साधना स्थल रहे एवं उन स्थानों के प्राचीन साधकों ने सूक्ष्म रूप में प्रकट होकर माँ से वहां रहने की प्रार्थना की थी, अथवा माँ की उपस्थिति में कुछ ईश्वरीय अलौकिक घटना घटी थी।

भारत की स्वाधीनता से पहले बनने वाले आश्रमों में ढाका का सिद्धेश्वरी (1926), विंध्याचल (1928), ढाका में रमणा (1929), उत्तरकाशी (1934), देहरादून में किशनपुर (1936), बांग्लादेश में खेवड़ा (1938), पुरी (1939), बड़ौदा के समीप भीमपुरा (1939), देहरादून में रायपुर (1940), अल्मोड़ा (1943), कोलकाता में एकाडलिया रोड(1944), वाराणसी (1944) और देहरादून में कल्याणवन (1944) आश्रम शामिल हैं।

वर्ष 1947 में भारत की स्वतंत्रता के पश्चात सोलह और आश्रमों की स्थापना की गई। उनमें वृंदावन (1949), नयी दिल्ली (1953), रांची (1953), राजगीर (1955), अल्मोड़ा जिले में धवलछीना (1957), कोलकाता में आगरपाड़ा (1958), पुणे (1961), नैमिषारण्य (1961), वृंदावन में वर्द्धमान कुंज (1962), देहरादून में जाखन (1964), तारापीठ (1968), कनखल (1970), भोपाल (1975), अगरतला (1977), केदारनाथ (1980) और जमशेदपुर (1988) आश्रम शामिल हैं। कोलकाता का एकाडलिया आश्रम और ढाका का रमणा आश्रम अब नहीं रहा।

आगे हम माँ के विभिन्न महत्वपूर्ण स्थानों पर प्रवास और उसके परिणामस्वरूप वहां माँ के नाम पर आश्रमों का सृजन होने से संबंधित कई विवरण और जानकारियों का उल्लेख करेंगे। माँ की निवास के समय वहां होने वाली कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं का विवरण भी दिया जा रहा है।

माँ कोलकाता में

श्री माँ हरिद्वार जाने के क्रम में वर्ष 1927 में पहली बार कोलकाता गईं थीं। माँ को एक खाली पड़े मकान में ठहराया गया जो "भाग्यकुल एस्टेट" से सम्बन्धित था। इस प्रवास में ढाका के शाहबाग उद्यान की मालिकिन नवाबजादी प्यारी बानो ने माँ को कोलकाता में अपने

भव्य निवास स्थल पर आमंत्रित किया। माँ के स्वागत में उन्होंने वहां हरि नाम कीर्तन का आयोजन किया था। कीर्तन में माँ गहरे भाव में चली गयीं।

श्री माँ का दूसरी बार कोलकाता आगमन प्यारी बानो के निमंत्रण पर ही हुआ। उन्होंने अपने पुत्री एवं पुत्र के निकाह के अवसर पर श्री माँ को निमंत्रित किया था। उस अवसर पर आये कई गणमान्य अतिथियों में प्रख्यात कांग्रेस नेता देशबन्धु चित्तरंजन दास की पत्नी श्रीमती बासंती देवी भी शामिल थीं। वह मां की गरिमामयी एवं आर्कषक उपस्थिति से बेहद प्रभावित हुईं और उन्होंने यह भी बताया कि उन्होंने स्वप्न में श्री माँ का पहले दर्शन किए थे। बासंती देवी माँ का स्नेहपूर्वक आलिंगन करने से अपने को रोक नहीं पायीं। उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि माँ उनकी गोद में बैठें। बाद में उनकी पुत्री श्रीमती अपर्णा रे माँ की भक्त बन गईं और माँ की दिव्य सानिध्य पाने के लिए वे कई बार माँ के आश्रम में आकर रहीं। इनके पुत्र श्री सिद्धार्थ शंकर रे भी बाद में माँ के दर्शन के लिए आये जो आगे चलकर पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री व केन्द्र सरकार में कैबिनेट मन्त्री बने थे।

अक्तूबर 1938 में माँ दक्षिणेश्वर मंदिर आयीं और थोड़े समय के लिए वहां रहीं। उन्हें 'नहवत खाना' में ठहराया गया था जहां प्रख्यात आध्यात्मिक विभूति श्री रामकृष्ण परमहंस देव की सहधर्मिणि शारदा माँ पहले रहा करती थीं। वहां प्रवास के दौरान प्रख्यात स्वतंत्रता सेनानी नेताजी सुभाष चन्द्र बोस श्री माँ से मिलने आये। एक वर्ष पहले नेताजी के बड़े भाई एवं लोकप्रिय देशभक्त श्री शरतचन्द्र बोस भी माँ से मिलने आए थे जब वे पहली बार कोलकाता आई थीं।

माँ ने सुभाष बाबू से कहा, "बाबा, हमने सुना है कि तुम बहुत अच्छे बोलते हो। यहां भी कुछ बोलो।" अनुरोध को अस्वीकार करते हुए नेताजी ने कहा, "मैं यहां केवल आपको सुनने आया हूं।" इसके बाद समीप के पवित्र स्थल 'पंचवटी' में माँ और नेताजी के बीच दीर्घ वार्तालाप हुआ। जब उन्होंने माँ से कहा कि उन्हें देश सेवा करने में आनन्द मिलता है तो माँ ने उसकी सराहना की, किन्तु साथ ही यह भी कहा कि यह आनन्द क्षणस्थायी है एवं कुछ ही समय तक रहेगा। जबकि भगवान की ओर ध्यान लगाने से उन्हें स्थाई ईश्वरीय आनन्द प्राप्त होता रहेगा। उन्होंने

धार्मिक मार्गदर्शन और 'प्रसाद' ग्रहण करने के बाद माँ से विदा ली तथा माँ से पुनः भेंट करने की आकांक्षा व्यक्त की। यद्यपि उनकी यह आकांक्षा अधूरी ही रह गई थी क्योंकि वे ब्रिटिश शासन से देश को स्वाधीन करवाने के आंदोलन में बहुत व्यस्त हो गए और बाद में वे निर्वासन में चले गए। बहरहाल, बाद में नेताजी के एक भाई एवं अन्य परिजन माँ से भेंट करने के लिए कई बार आए।

कोलकाता में माँ से मिलने के लिए आने वाले श्रद्धालुओं की संख्या क्रमशः बढ़ने लगी। श्रद्धालुओं को वहां माँ के लिए एक आश्रम की आवश्यकता प्रतीत हुई। उन सभी ने 1944 में बालीगंज क्षेत्र के एकडालिया रोड पर स्थित तीन मंजिला एक मकान में छोटा-सा आश्रम स्थापित किया। उस मकान का आकार देख श्री माँ इसे 'गोविन्द का टिफिन केरियर' कहती थीं। बाद में वर्ष 1958 में कोलकाता के समीप अधिक स्थान वाला एक आश्रम गंगा नदी के तट पर आगरपाड़ा में स्थापित किया गया। उस वर्ष माँ का जन्मोत्सव वहीं मनाया गया। बाद में कोलकाता स्थित एकडालिया आश्रम को छोड़ दिया गया।

सितंबर 1960 में आगरपाड़ा आश्रम में तीन मंदिरों की स्थापना के अवसर पर एक विशाल उत्सव का आयोजन किया गया। बाद में माँ की उपस्थिति में वहां कई उत्सव, जैसे श्री माँ का जन्मोत्सव, दुर्गा पूजा, संयम सप्ताह, भागवत सप्ताह आदि का भी भव्य आयोजन किया गया। यहां माँ के रहने के दौरान बड़ी संख्या में लोग उनके दर्शनों के लिए आश्रम आते थे। ऐसे अवसरों पर विशाल भीड़ को नियंत्रित करना बहुत कठिन हो जाता था। कई बार ऐसा भी हुआ कि विश्राम देने के लिए माँ को किसी अज्ञात स्थान पर ले जाना पड़ा। आश्रम परिसर में गंगा नदी के समीप एक छोटी-सी कुटिया थी जिसमें माँ अल्प विश्राम के लिए जाती थीं। ऐसा कहा जाता है कि सदियों पहले चैतन्य महाप्रभु 'पानीहाटी' जाते समय उसी स्थान पर एक वृक्ष के नीचे कुछ समय रुके थे।

वर्ष 1960 की दुर्गा पूजा के समय एक दिलचस्प घटना हुई। राजघराने की एक महिला ने श्री माँ की पूजा करते समय उन्हें मोतियों का एक कीमती हार भेंट किया। वहीं समीप खड़ी श्याम वर्ण की एक विपन्न लड़की इस पूरे उपक्रम को देख रही थी। उसे मोतियों का वह हार बहुत

आकर्षित कर रहा था। माँ से उसे मांगने पर श्री माँ ने उस लड़की से बाद में आने को कहा। विजय दशमी की संध्या पर माँ स्वयं अपने हाथों से श्रद्धालुओं कों मिठाई वितरण कर रही थीं। उसी समय वही लड़की माँ से मिठाई लेने के लिए आई। जब यह लड़की मिठाई ले चुकी तो माँ ने उसे पास ही खड़े होकर प्रतीक्षा करने को कहा। इसके बाद माँ ने अपनी परिचारिकाओं में से एक को बुलाकर वह मूल्यवान मोती की हार लाने को कहा। हार आने पर माँ ने उसे उस लड़की को दे दिया। यह हार पाकर वह लड़की प्रसन्नता से झूमने लगी और उछलते हुए उसे लेकर वहां से चली गई।

माँ के आश्रम के वरिष्ठ संन्यासी एवं दंडी स्वामी नारायणजी यह सब देख रहे थे और वह माँ से यह पूछने का लोभ संवरण नहीं कर पाए कि उन्होंने इतना मूल्यवान हार एक अज्ञात विपन्न लड़की को क्यों दे दिया? निश्चित रूप से इसके पीछे कोई रहस्य छिपा होगा। इस प्रश्न पर माँ मुस्कुरा दी। उन्होंने कहा कि बहुत पहले जब वह बाजितपुर में गृहस्थी संभाल रही थीं, यह लड़की (अपने पूर्व जन्म में) वहां नौकरानी थी। उस समय वह बड़ी प्रसन्नता से माँ के साथ घर के कामों में हाथ बंटाया करती थी। माँ ने यह भी खुलासा किया कि पूर्व जन्म में वह निम्न वर्ण की थी किन्तु वर्तमान जन्म में उसे उच्च्व जाति मिली है। इस प्रकार कीमती इनाम देने का रहस्य खुला। इस घटना से यह भी बात सामने आई कि माँ से कुछ भी अज्ञात नहीं रहता है। पूर्व जन्मों का विवरण भी उन्हे तत्काल ज्ञात हो जाता है। माँ ने एक बार गुरुप्रिया दीदी को बताया था कि ऋषि-मुनिगण ध्यान के माध्यम से मन को केन्द्रित कर वांछित जो जानकारी प्राप्त कर लेते थे, माँ वह सब बिना किसी प्रयास किये पल भर में जान लेती हैं।

फरवरी 1974 में माँ कोलकाता के जोधपुर पार्क में आयोजित भागवत सप्ताह में शामिल हुई थीं। माँ के दर्शन करने के लिए हजारों लोगों की भीड़ वहां उमड़ पड़ी। दोल पूर्णिमा (होली) के दिन भागवत सप्ताह संपन्न होने के बाद श्री माँ और विख्यात संत सीताराम बाबा ओंकारनाथजी को एक खुली सवारी में बैठाकर शोभायात्रा निकाली गई ताकि लोग श्री माँ के दर्शन सहजता से कर सकें। इस शोभायात्रा का आयोजन करवाने वालों में प्रमुख थे विख्यात अखबार के सम्पादक श्री तुषारकांति घोष। लाखों लोगों ने सड़क के दोनों ओर खड़े होकर शोभायात्रा में श्री माँ का दर्शन करने का

सौभाग्य प्राप्त किया। उन्हें देशप्रिय पार्क ले जाया गया जहां उन्होंने श्रद्धालुओं के अनुरोध पर कुछ भजन भी गाए।

माँ अप्रैल 1982 में स्वामी मुक्तानन्द गिरि जी के मूर्ति प्रतिष्ठा समारोह के उपलक्ष्य में आगरपाड़ा आश्रम आई थीं। माँ के निर्देश पर मामाजी (माँ के छोटा भाई) के ज्येष्ठ पुत्र बच्चूदा ने अपने गुरु की मूर्ति प्रतिष्ठा पूजा संपन्न की। यह माँ की अंतिम कोलकाता यात्रा थी।

माँ विंध्याचल में

उत्तर प्रदेश में विंध्याचल एक तीर्थस्थान है जो माँ विंध्यवासिनी मन्दिर के लिए प्रसिद्ध है। मिर्जापुर शहर के समीप यह एक छोटा कस्बा है जिसकी एक ओर गंगाजी बहती है एवं दूसरी ओर विंध्याचल पर्वत की अष्टभुजा पहाड़ी है। श्री माँ भोलानाथजी के साथ पहली बार सन् 1927 में विंध्याचल आई थीं। गुरुप्रिया दीदी के चाचा श्री कुंजमोहन मुखोपाध्याय (बाद में स्वामी तुरियानन्दजी के नाम से परिचित) ने वहां अष्टभुजा पहाड़ी पर एक कुटिया बना रखी थी। उन्होंने इसे माँ के चरणों में अर्पित कर दिया। वर्ष 1928 से उस जगह पर आश्रम के निर्माण की गतिविधियां शुरू हो गई।

वर्ष 1929 में माँ बांग्लादेश के कक्स बाजार, आदिनाथ एवं चटगांव तथा कोलकाता, हरिद्वार, देहरादून, अयोध्या, एवं अन्य स्थलों में भ्रमण करती हुईं फिर विंध्याचल पहुंचीं। उस समय तक गुरुप्रिया दीदी के पिता एवं चाचा के प्रयासों से आश्रम का निर्माण सम्पन्न हो चुका था। माँ की उपस्थिति में उन्होंने अपने वार्षिक पारिवारिक दुर्गा पूजा यहीं सम्पन्न की। बाद में रामनगर के महाराजा (काशी नरेश) ने आश्रम के आसपास की 28 बीघा जमीन माँ को दान कर दी। उस समय वह पूरा क्षेत्र बेहद सूनसान था। उस समय बाघ और बड़े-बड़े सांप भी प्रायः दिखाई पड़ते थे। पहाड़ी पर बने इस आश्रम से करीब एक मील दूर बहने वाली गंगा नदी का विशाल वक्षस्थल का मनोरम दृश्य यहां से दिखाई देता है। विशेषकर अगस्त एवं सितंबर के महीनों में जब नदी में बाढ़ आ जाती है। उस समय का दृश्य और भी मनमोहक हो जाता है। माँ उस एकांत स्थल में विश्राम करने के लिए कई बार वहां रुकीं। यहां पर हवा का बहाव माँ को पसन्द था।

कभी-कभी माँ भावाविष्ट होकर आसपास के पहाड़ी क्षेत्र में निकल जाती थीं।

माँ ने बताया था कि आश्रम के समीप भूमि के नीचे कोई प्राचीन मन्दिर दबा पड़ा है। उन्होंने यह भी संकेत किया कि मन्दिर में दबी प्रतिमाओं ने सूक्ष्म रूप में आकर माँ से प्रार्थना की थी कि उन्हें बाहर निकाला जाना चाहिए। इसके बाद जिला प्रशासन के अधिकारियों ने माँ द्वारा इंगित किये गये स्थल पर उत्खनन करवाया। वहां उन्हें किसी विशाल मंदिर के अवशेष मिले। उन्होंने उत्खनन में प्राप्त हुई सामग्रियों को लखनऊ संग्रहालय में भिजवा दिया, जहां उनका संरक्षण किया जा रहा है। जिस स्थान पर प्राचीन मंदिर के अवशेष मिले थे, वहां माँ के निर्देश पर पत्थर का एक बड़ा चबूतरा बनवा दिया गया है। हो सकता है कि इसे इसलिए बनवाया गया था जिससे भविष्य में इस चबूतरे पर एक मन्दिर का निर्माण सम्भव हो सके। अत: चबूतरे के आकार के अनुसार एक भव्य मन्दिर का नक्शा बनाया गया है जो वहां के साधु-इन्चार्ज स्वामी चेतनानन्दजी के पास उपलब्ध है।

एक समय की बात है - एक यूरोपीय युगल विंध्याचल आश्रम में माँ के पास आया। उन्होंने माँ को बताया कि उस प्राचीन मंदिर के समीप बने पत्थर के चबूतरे पर बैठने के बाद महिला को आकाश में एक उज्ज्वल त्रिकोण दिखाई दिया। उस समय माँ आश्रम की पहली मंजिल के बरामदे में थीं। माँ ने उन्हें बताया कि महिला की स्थिति देखकर माँ को यह ख्याल आया था कि उसे कुछ अलौकिक दर्शन होना चाहिए। उसी पल उसे आकाश में वह उज्ज्वल त्रिकोण दिखाई दिया जिसे उसी समय माँ ने भी देखा था। माँ ने कहा कि वह त्रिकोण शक्तिस्थल का प्रतीक है। उस त्रिकोण के तीन अंतिम बिन्दु समीपवर्ती शक्तिपीठ - विंध्यवासिनी, अष्टभुजा एवं कालीखोह मंदिरों की स्थिति का प्रतीक था। माँ ने उसे यह भी कहा कि वह उस त्रिकोण के मध्य का बिन्दु देखना भूल गई जो इस आश्रम की स्थिति का प्रतीक था। इस प्रकार माँ ने यह संकेत दिया कि विंध्याचल आश्रम भी पवित्र शक्ति स्थल के भीतर ही है और वह साधना के लिए पूरी तरह से उपयुक्त है। माँ ने एक बार आश्रम में देवी के अष्टांग योग का प्रदर्शन भी किया था। स्थानीय लोगों में यह मान्यता है कि भगवती दुर्गा ने

इसी अष्टभुजा पहाड़ी पर दैत्य महिषासुर का वध किया था। इसलिए लोग इस पूरे स्थल को बहुत पवित्र मानते हैं।

विंध्याचल में माँ की उपस्थिति में दुर्गा पूजा, संयम सप्ताह आदि कई बड़े समारोह आयोजित किये गये। यद्यपि उस समय तक आश्रम में बिजली और जल जैसी बुनियादी सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं थीं। आश्रम के लिए जल का एकमात्र स्रोत पहाड़ी के नीचे बना एक कुआं था जहां से जल भरकर ऊपर लाया जाता था। एक बार माँ ने इंगित किया कि उन्होंने देखा था कि प्राचीन समय में पहाड़ी के ऊपर आश्रम के पास एक कुएं से साधुगण जल निकाल रहे हैं। यद्यपि माँ ने उस कुएं का स्थान नहीं बताया।

बहुत वर्ष बाद सन् 1980 में विंध्य के पठारी इलाके में सूखे की अभूतपूर्व स्थिति उत्पन्न हो गई। उन्हीं दिनों माँ विंध्याचल आईं और कुछ दिनों आश्रम में रुकीं। आश्रम में भी जल की बहुत किल्लत थी। सूखा ग्रस्त इलाकों का दौरा करने के लिए तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी भी वहां आई थीं। श्रीमती गांधी माँ के दर्शन करने के लिए आश्रम आईं और उन्होंने वहां दोपहर का भोजन भी ग्रहण किया। उस अवसर पर पहाड़ी के नीचे से जल का पर्याप्त प्रबंध करने के लिए आश्रम को विशेष उपाय करना पड़ा।

कुछ दिन बाद जब माँ आश्रम से जाने लगीं तो आश्रम में जल की समस्या को देखते हुए स्वामी निर्वाणानन्द जी ने माँ से उस प्राचीन कुएं के बारे में संकेत करने के लिए कई बार विनती की। मां ने आश्रम की चहारदिवारी के बाहर पहाड़ी ढलान के समीप खाली स्थान की ओर संकेत किया। यद्यपि वहां किसी कुएं का कोई पता नहीं चल पाया एवं वह जगह अन्य स्थल की भांति चट्टानी ही थी।

उन दिनों सूखा राहत के लिए राज्य सरकार उस क्षेत्र में बड़ी संख्या में इण्डिया मार्क-2 हैंडपम्प लगवा रही थी। एक प्रख्यात जियोहाइड्रोलाजिस्ट (भूमिगत जल विशेषज्ञ) की सेवा ली गयी थी जो यन्त्र के सहायता से बोरिंग के लिए ऐसे स्थान का चयन करते थे जहां भूगर्भ से जल मिल सके। आश्रम परिसर में प्राचीन कुओं का पता लगाने के लिए इन लोगों की मदद ली गयी। जियोहाइड्रोलाजिस्ट ने कई जगहों का परीक्षण किया किन्तु वह कुएं का पता लगाने में असफल रहा। अंततः जब उनसे

उस जगह पर पता लगाने को कहा गया जहां माँ ने संकेत किया था तो उनके इलेक्ट्रिकल उपकरणों ने सकारात्मक संकेत दिये जिससे वहां कुआं होने की बात की पुष्टि हुई। यद्यपि जियोहाइड्रोलाजिस्ट ने सूचित किया कि पुराने कुएं को फिर से बहाल करना संभव नहीं हो पाएगा क्योंकि उसका जलस्तर बहुत नीचे उतर गया है। यदि उसे फिर से बहाल किया गया तो बरसात के मौसम को छोड़कर उससे जल बाहर निकालना संभव नहीं हो पाएगा क्योंकि बरसात में ही भूमिगत जलस्तर बढ़ जाता है। बहरहाल, बाद में राज्य सरकार की मदद से आश्रम में बिजली एवं जलापूर्ति की सुविधा स्थापित हो गई।

एक श्रद्धालु ने विंध्याचल आश्रम में एक बार माँ से प्रश्न किया कि इस जीवन में उनका दायित्व क्या है? साधना पर ध्यान केन्द्रित करने की सलाह देते हुए माँ ने उनसे कहा, ''नहर खोदते जाओ, उचित समय पर जल का बहाव आ जायेगा।''

जनवरी 1982 में इलाहाबाद अर्द्ध कुम्भ में भाग लेने के बाद माँ लगभग एक सप्ताह तक विंध्याचल आश्रम में रुकीं थीं। इस आश्रम में यह उनकी अंतिम प्रवास था।

तारापीठ में माँ

तारापीठ पश्चिम बंगाल के बीरभूम जिले में स्थित है और इसे देश में तांत्रिक साधना के लिए पवित्र पीठ माना जाता है। इस जगह पर एक विशाल श्मशान स्थल है जहां आसपास के इलाकों के शवों का अंतिम संस्कार करने के लिए लाया जाता है। तारा माँ का भव्य मंदिर भी इसी श्मशान के पास ही स्थित है।

बाबा भोलानाथ जब ढाका में सिद्धेश्वरी के काली मंदिर में साधना कर रहे थे उस समय उन्हें सिर विहीन माँकाली के दर्शन हुए थे। यह सुनने के बाद माँ ने उनसे तारापीठ जाने को कहा। माँ का निर्देश पाने के बाद दिसंबर 1928 में बाबा भोलानाथ ढाका से तारापीठ आए। उन्होंने कुछ काल रहकर तारा माँ के मंदिर में एकांत साधना की और ध्यान लगाया। एक बार ब्राह्म मुहूर्त में वह तारा माँ की प्रतिमा के स्नान के समय मंदिर में उपस्थित थे। उन्होंने देखा कि तारा माँ के चांदी वाले मुख को उनके शरीर से अलग

रखा गया था। उन्हें पता चला कि मंदिर के परम्परा के अनुसार प्रत्येक रात को तारा माँ के शयन से पहले उनके सिर को शरीर से अलग कर दिया जाता है तथा अगले दिन स्नान के बाद सिर को फिर उसके स्थान पर लगा दिया जाता है। बाबा भोलानाथ को समझ में आया कि क्यों माँ ने उन्हें तारापीठ भेजा था ताकि वे सिर विहीन कालीमाँ के दर्शन कर सकें जिसका रूप उन्होंने सिद्धेश्वरी रहते समय दर्शन किया था। बाबा भोलानाथ को इस यात्रा से बहुत लाभ मिला। उन्हें "तारा सिद्धि" एवं "शिव सिद्धि" प्राप्त हुई। उन्हें तारा देवी से यह निर्देश मिला कि वे वर्ष में कम से कम एक दिन तारापीठ में अवश्य बितायें जिसका उन्होंने आजीवन पालन किया।

बाबा भोलनाथ के कुछ दिनों के एकांतवास के बाद श्री माँ भी वहां पहुंच गयीं। माँ का तारापीठ में यह पहला आगमन था। वहां कई मातृलीलाएं भी हुई। कभी कभी माँ भावाविष्ट होकर वहां खुले मैदानों में घूमती थीं। माँ के दर्शनों के लिए हिन्दुओं एवं मुसलमानों की भीड़ उमड़ पड़ी। वह मुस्लिम परिवारों से भी घुलमिल जाती थी तथा कभी किसी परिवार के मुखिया की बेटी बन जाती। कई बार वह अकेले ही बाहर निकल जाती थी एवं अन्य लोगों को अपने साथ आने से मना कर देती। घंटों तक माँ की प्रतीक्षा करने के बाद वे उन्हें या तो समीप की मस्जिद अथवा किसी वृक्ष के नीचे भावावस्था में निमग्न पाते थे। एक बार देर रात में माँ सर्दी के मौसम में अकेले बाहर निकल गई और कुछ समय पैदल चलने के बाद भावावस्था में समीप के एक सरोवर में कूद गईं। उस समय वे सभी वस्त्र और गर्म शॉल आदि पहनी हुई थीं। यह पवित्र सरोवर तारा माँ के मंदिर के पीछे स्थित है और "जीवित पुष्करिणी" के नाम से यह जाना जाता है। भाईजी कुछ दूरी बनाकर उस समय माँ का पीछा कर रहे थे। वे जल्दी से सरोवर पहुंचे और उन्होंने माँ को बाहर निकाला।

चन्द्र ग्रहण के दिन माँ के दर्शन करने के लिए अभूतपूर्व भीड़ वहां उमड़ पड़ी। माँ के चुंबकीय व्यक्तित्व ने वहां के स्थानीय लोगों को बहुत आकर्षित किया। उन्हें लगा कि उमकी इष्ट देवी तारा माँ ही स्वयं मानवीय स्वरूप में आ गई हैं। माँ अधिकतर समय इसी प्रकार साधारण ग्रामीण लोगों से घिरी रहती थीं जिसमें से कई मुसलमान भी होते थे। वे माँ को बताते थे कि तारपीठ शक्तिपीठ होने के कारण अनेक साधु एवं संन्यासी वहां

आते-जाते रहते हैं और वे उनसे परिचित हैं, परन्तु माँ जैसी भगवती माँ का दर्शन करने का उन्हें कभी अवसर नहीं मिला। कुछ बार ऐसा भी हुआ कि माँ के जाने के अवसर पर कई महिलाएं तो ऐसे विह्वल होकर रोने लगीं मानों उनका कोई प्रियजन बिछड़ रहा हो।

श्री माँ ने संकेत किया था कि पूर्व जन्म में तारापीठ बाबा भोलानाथ जी की साधना स्थली थी। भोलानाथजी को भी इस स्थान से बहुत लगाव था और वे लगभग प्रति वर्ष यहां आते थे। तारापीठ में माँ ने दो ब्राह्मण कुमारी कन्याओं गुरुप्रिया दीदी व मरणी दीदी का यज्ञोपवीत अनुष्ठान कर प्राचीन वैदिक परम्परा को पुनर्जीवित किया। यज्ञोपवीत के बाद गुरुप्रिया दीदी ने आजीवन ब्रह्मचारिणी जीवन पालन किया परन्तु बाबा भोलानाथ के बहन की पोती मरणी दीदी जो अपने बचपन से ही माँ के साथ रही थी उनका यज्ञोपवीत संस्कार के बाद वहीं विवाह भी संपन्न कराया गया। यज्ञोपवीत धारण करने वाली इन कन्याओं को नित्य गायत्री साधना उसी तरह करनी पड़ती थी जैसा कि ब्राह्मण पुरुष करते हैं। बहुत बाद में इसी परम्परा के अनुसार वाराणसी स्थित कन्यापीठ की तीन कन्याओं- चन्दन दीदी, जया दीदी एवं गीता दीदी का भी माँ ने यज्ञोपवीत संस्कार करवाया एवं वर्तमान में वे आश्रम में रहकर आजीवन ब्रह्मचारिणी जीवन पालन कर रही हैं।

बहुत बाद में वर्ष 1968 में एक श्रद्धालु ने तारापीठ में श्री माँ का एक आश्रम तथा एक शिव मंदिर बनवाया। दिनाजपुर के महाराजा द्वारा दान दी गयी भूमि पर यह आश्रम बनवाया गया था। बाद में इस आश्रम का और विस्तार किया गया तथा वर्ष 1989 में नवनिर्मित मंदिर में श्री माँ के विग्रह की प्रतिष्ठा की गई और वहां नित्य पूजा-अर्चना की जाती है। अब वहां ठहरने के लिए एक गेस्ट हाउस भी बनवाया गया है।

माँ का दक्षिण भारत में भ्रमण

श्री माँ वर्ष 1930 में दक्षिण भारत के भ्रमण पर निकलीं। इस समय भोलानाथजी, स्वामी अखण्डानन्दजी, गुरुप्रिया दीदी तथा कई अन्य लोग उनके साथ थे। उन्होंने वाल्टेयर (विशाखापत्तनम), मद्रास (चेन्नै), पक्षीतीर्थ, कांचीपुरम, चिदंबरम, मदुरै एवं श्रीरंगम की यात्रा की। इन स्थानों

पर माँ एक या दो दिन रुकीं। किन्तु वे रामेश्वरम में पांच दिन और कन्याकुमारी में पन्द्रह दिनों तक ठहरीं। वे जिस भी स्थान या मंदिर में गयीं उनकी अगवानी ठीक उसी प्रकार की गयी जिस तरह किसी आध्यात्मिक विभूति को की जाती है।

कन्याकुमारी से माँ त्रिवेंद्रम (तिरूवनंतपुरम) के पद्मनाभं मंदिर गईं। भगवान पद्मनाभं की विशाल प्रतिमा को पवित्र शालिग्राम शिलाओं से निर्मित किया गया है। माँ वहां तीन-चार दिन रहीं। पुजारी तथा मंदिर की देखभाल करने वाले माँ के दर्शन कर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने माँ को मंदिर का प्रत्येक भाग दिखाया। त्रिवेंद्रम से माँ मंगलूर, वहां से बम्बई (मुंबई) और फिर द्वारिका के द्वारिकाधीश मंदिर गईं। वहां जाकर माँ ने सहसा भावावस्था में भगवान द्वारिकाधीश के विग्रह को लोटे के जल से स्नान कराया और अपने साड़ी के आंचल से भगवान को ठीक उसी प्रकार सस्नेह पोछा जैसे कि आम भारतीय माताएं अपने नन्हें पुत्र को स्नान के बाद करती हैं। यह मातृलीला इतनी सहसा और स्वत: स्फूर्त ढंग से हुई कि इसे देखने का बहुत कम लोगों को सौभाग्य मिल सका।

माँ वर्ष 1952 में पुन: दक्षिण भारत गई एवं तीन माह की व्यापक यात्रा की। उनके साथ अति सम्मानित संत हरिबाबा, अवधूतजी, गुरुप्रिया दीदी, स्वामी परमानन्दजी एवं अन्य लोग भी थे। श्री माँ और उनके दल ने पुरी से अपना भ्रमण प्रारंभ किया था। माँ की दक्षिण भारत यात्रा के दौरान रमण महर्षि की अनन्य सेविका पारसी महिला तलेयर खां ने ठहरने आदि की अत्यंत सुंदर व्यवस्था की थी। माँ के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा भक्ति रही। अहमदाबाद निवासी माँ के एक अनन्य भक्त श्री के सी मुनशाह ने भी इस भ्रमण की व्यवस्था में यथेष्ट सहायता की थी और माँ के उपयोग के लिए विशेषतौर पर अपनी काइसर मोटरकार उपलब्ध करवाई थी।

दक्षिण भारत में माँ सभी प्रमुख तीर्थ स्थलों और बड़े मंदिरों में गईं। इनमें वाल्टेयर, गुंटूर, मद्रास, कांचीपुरम, पक्षीतीर्थ, महाबलिपुरम, अरुणाचल (तिरूवन्नामलाई), श्रीरंगम, अमरावती, तंजौर, कुंभकोणम, मदुरै, त्रिशूर, कन्याकुमारी, त्रिवेन्द्रम, कालाडी, मैसूर आदि शामिल हैं। तिरूवन्नामलाई के महर्षि रमण आश्रम पहुंचने पर माँ का बहुत सम्मान किया गया। प्रत्येक स्थान पर माँ के दर्शन की प्रतीक्षा कर रहे लोगों की भीड़ मिलती थी। मदुरै

मदिर में लगभग दस हजार लोगों की अनुशासित भीड़ श्री माँ की प्रतीक्षा कर रही थे। माँ का प्रभावशाली किन्तु विनम्र व्यक्तित्व देखकर वे उनके समक्ष ऐसे दंडवत हो जाते मानों माँ स्वयं साक्षात मीनाक्षी देवी हों। भाषा में अंतर होने के कारण उनके बीच परस्पर कोई संवाद नहीं होता था। सब लोग शांत होकर माँ के दिव्य व्यक्तित्व को निहारते हुए मग्न हो जाते थे।

अधिकतर मंदिरों में माँ का स्वागत शाही अतिथि की तरह होता था और उनके सम्मान में वाद्य यंत्र तक बजाए जाते थे। माँ की अगवानी के लिए सड़क के दोनों तरफ सजे-धजे हाथियों की कतार खड़ी की जाती थी। कई बड़े मंदिरों के प्रवेश स्थल पर मंदिर के हाथी से माँ के गले में हार डलवाकर उनका स्वागत किया गया और मंदिर की तरफ से उन्हें परम्परा के अनुसार चांदी का कलश भेंट किया गया।

पांडिचेरी में माँ की भेंट श्री अरविन्द आश्रम में प्रख्यात फ्रांसीसी मदर से हुई थी। त्रवणकोर, मैसूर, राजकोट एवं भावनगर के तत्कालीन राजवंशों के प्रमुखों ने माँ के उनके राज्यों में प्रवेश करने पर अपने परिजनों के साथ जाकर माँ का शाही तरीके से स्वागत किया। उनका दक्षिण का प्रवास द्वारिका में द्वारिकाधीश मंदिर के दर्शन के बाद संपन्न हुआ। मंदिर के पुजारी ने माँ से प्रार्थना की कि वे मंदिर की प्रतिमा का शीर्ष से पाद तक स्पर्श करें।

माँ जिस समय द्वारिकाधीश मंदिर पहुंचीं, शारदा पीठ के शंकराचार्य मंदिर के प्रवेश स्थल पर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। माँ से भेंट करने के बाद वे सीधे अपने आश्रम चले गए और अपने बिस्तर पर जाकर लेट गए। कुछ समय बाद कोई व्यक्ति उनसे भोजन के लिए पूछने गया तो उसने पाया कि शंकराचार्य का प्राणांत हो गया है। संभवत: उनकी यह इच्छा रही होगी कि शरीर त्यागने से पहले उन्हें माँ का आशीर्वाद मिले। यह समाचार सुनने के बाद माँ स्वयं वहां गईं और उनके सिर को स्पर्श किया। बाद में जब यह पूछा गया कि उन्होंने शव का स्पर्श क्यों किया तो माँ ने बताया कि उस समय भी बाबा का सूक्ष्म शरीर का स्थूल शरीर के साथ संपर्क कायम था।

मैसूर उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री एस आर दासगुप्ता के अनुरोध पर माँ वर्ष 1961 में बेंगलूर गईं। माँ के रहने के लिए ताड़ के पत्तों से निर्मित एक आकर्षक कुटिया बनाई गई थी। एक दिन मैसूर के

मुख्यमंत्री अपनी पत्नी और श्रीमती तलेयर खां के साथ माँ के दर्शन के लिए आए थे। माँ ने उनसे कहा, ''तुमने किसी गाय को अपने बछड़े को चाट चाटकर उसको साफ करते हुए देखा होगा। ठीक इसी प्रकार भगवान अपने बच्चों के सभी गलतियों को क्षमा कर उसे पवित्र कर देते हैं। व्यक्ति को केवल उन्हीं में अपना ध्यान लगाना चाहिए और फल की कामना किए बिना कर्म करना चाहिए।''

श्री माँ जनवरी 1972 में एक बड़े दल के साथ फिर दक्षिण भारत गईं। इस बार उनकी मद्रास (चेन्नै) यात्रा में कर्नाटक संगीत की प्रसिद्ध गायिका एवं देश के सर्वोच्च नागरिक सम्मान भारत रत्न से सम्मानित श्रीमती सुब्बुलक्ष्मी की अतिथि थीं। श्रीमती सुब्बुलक्ष्मी, तमिलनाडु के राज्यपाल तथा श्रीमती तलेयर खां एवं अन्य लोग रेलवे स्टेशन पर माँ की अगवानी के लिए आए थे। सुब्बुलक्ष्मी के आवास 'कल्कि गार्डन्स' के परिसर में विशेष तौर पर बनाई गई नई कुटिया में माँ रुकीं। उनके दर्शन के लिए कई गणमान्य लोग एवं हजारों नागरिक वहां आए। वहां एक दिन प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में श्रीमती सुब्बुलक्ष्मी, उनके पति श्रीसदाशिवम एवं उनकी बेटी ने श्री माँ की विशेष पूजा की थी। पूजा के अन्त में एक बड़ी थाली में वे सोने की मोहर भर कर ले आयी एवं परिवार के तीनों जनों ने अपने हाथों से अंजलि भर भरकर समस्त मोहरें श्री माँ को समर्पित कर दीं। पूजा के समय माँ की गोद एक तौलिया से ढंकी हुई थी। सोने की समस्त मोहरें उसी पर बिखरे हुई थी। माँ ने बहुत युक्ति के साथ मोहरों सहित तौलिया को उठाया एवं उन्हें सुब्बुलक्ष्मीजी को ही वापस सौंपते हुए कहा, ''ये शरीर छोटी बच्ची है, इसका सामान पिता-माता के पास ही रहता है।''

कुछ दिन वहां प्रवास करने के बाद माँ त्रिवेन्द्रम गईं जहां वह त्रावणकोर के महाराज की अतिथि थीं। उन्होंने पद्मनाभं मंदिर के विख्यात 'लक्षदीप उत्सव' में भाग लिया जहां भगवान विष्णु की विशाल शेषशायी प्रतिमा है। इस अवसर पर मंदिर के भीतर एवं बाहर हजारों तेल के दिये जलाएं जाते हैं और इनकी रोशनी से मंदिर जगमगाने लगता है। इस अवसर पर भी वहां कई गणमान्य लोग एवं हजारों सामान्य व्यक्ति माँ के पास आए। माँ कालाडी भी गईं जो आदि शंकराचार्य का जन्मस्थल है।

माँ वर्ष 1979 में सिकंदराबाद गईं जहां आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री

डॉ. एम चेन्ना रेड्डी ने उनकी अगवानी की। रेड्डीजी उन्हें अपने फार्महाउस पर उनके उपयोग के लिए बनाई गई विशेष कुटिया में ले गए। कुछ दिन के प्रवास के बाद माँ बेंगलूर गईं जहां कर्नाटक के राज्यपाल श्री गोविन्द नारायण, (सेवानिवृत्त आईसीएस) ने रेलवे स्टेशन पर उनका भव्य स्वागत किया। माँ को त्रवणकोर राजघराने के फार्महाउस ले जाया गया जहां उनके एवं उनके साथ गए लोगों के ठहरने के अलग विशेष प्रबंध किए गए थे।

उस वर्ष माँ का जन्मोत्सव बेंगलूर में बहुत उत्साह एवं उल्लास के साथ त्रावणकोर के महाराजा मार्तन्ड वर्मा और कर्नाटक के राज्यपाल गोविन्द नारायणजी के नेतृत्व में मनाया गया। गोन्दल राजमहल के परिसर में एक विशाल पंडाल बनाया गया था जिसमें आराम से हजारों श्रद्धालु बैठ सकते थे। समारोह का उद्‌घाटन द्वारिका के शंकराचार्य ने किया। दक्षिण की विख्यात आध्यात्मिक विभूतियों, गणमान्य अतिथियो और हजारों श्रद्धालुओं ने इस समारोह में भाग लिया। समारोह में यह पंडाल लोगों से खचाखच भरा हुआ था। समारोह के अंत में नाम यज्ञ का आयोजन किया गया। यह कीर्तन संध्याकाल से शुरू हुआ जो अगली संध्या तक चलता रहा। इस अवसर पर श्रद्धालुओं को माँ के विशिष्ट दिव्य भाव का दर्शन करने का अवसर मिला।

इसके बाद तमिलनाडु के राज्यपाल श्री पी डी पटवारी ने माँ को मद्रास (चेन्नै) आने का निमंत्रण दिया। वे माँ को लिवाने के लिए स्वयं रेलवे स्टेशन पर आए और उन्हें राजभवन ले गए जहां के परिसर में उन्हें विशेष सम्मान के साथ ठहराया गया। माँ के दर्शन के लिए बड़ी संख्या में श्रद्धालु और गणमान्य लोग वहां आए।

माँ अंतिम बार जनवरी 1981 में तब दक्षिण भारत गईं जब आन्ध्र प्रदेश के मुख्यमन्त्री डॉ. चेन्ना रेड्डी ने उन्हें सिकंदराबाद आमंत्रित किया। वहां भी हजारों लोग माँ के दर्शन के लिए उमड़ पड़े। माँ करीब छह बार दक्षिण भारत गईं किन्तु देश के इस हिस्से में माँ का कोई भी आश्रम नहीं बन पाया।

माँ जगन्नाथ पुरी में

जगन्नाथ पुरी भारत के चार प्रमुख धामों में एक है जहां भगवान जगन्नाथ का अति प्राचीन भव्य मंदिर है। माँ की वहां की यात्रा के पीछे

भी एक छोटी-सी कथा है। एक सच्चे सन्त बाबा श्याम सुंदर दासजी महाराज बहुत बीमार थे और पूरी तरह से अपने कक्ष तक ही सिमट गए थे। वे प्राय: रो-रोकर माँ के दर्शनों की प्रार्थना करते रहते थे। एक श्रद्धालु ने उनसे दिल छोटा नहीं करने को कहा। उन्हें सांत्वना देते हुए उस व्यक्ति ने कहा कि यह भी हो सकता है कि एक दिन माँ उन्हें दर्शन देने के लिए स्वयं उनके कमरे में आए, और ऐसा ही हुआ। श्री माँ जगन्नाथ पुरी की अचानक यात्रा की और वह स्वयं श्याम सुंदर दास जी के कमरे में आयीं। माँ अपने निस्सहाय भक्तों की आन्तरिक पुकार को सदैव सुनती हैं जिसका यह भी एक उदाहरण है।

सन् 1939 में जगन्नाथ पुरी के समुद्र तट पर स्वर्गद्वार में श्री माँ का एक छोटा आश्रम बनाया गया। समय-समय पर माँ वहां जाने पर इस आश्रम में रुकती थीं। माँ कई बार रथयात्रा उत्सव के अवसरों पर वहां रुकी थीं। वार्षिक रथयात्रा में सुंदर ढंग से सजाये गये लकड़ी के तीन विशाल रथों में भगवान जगन्नाथ, बलभद्र एवं सुभद्रा देवी की प्रतिमाओं को ले जाया जाता है। रथयात्रा जगन्नाथ मंदिर से प्रारंभ होकर गुंडीचा मंदिर तक जाती है जिसे 'मासीबाड़ी' भी कहते हैं। हजारों तीर्थयात्री एवं श्रद्धालु बड़ी-बड़ी रस्सियों के साथ इन रथों को इस विश्वास के साथ खींचते हैं कि उन्हें पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति मिल जाएगी।

सन् 1973 के आसपास माँ महाराष्ट्र के पुणे आश्रम में रुकी हुई थीं। वहां के श्रद्धालुओं ने पुरी की रथयात्रा के दिन माँ से अनुरोध कर उन्हें एक कार में बैठाया तथा आश्रम के कृष्ण मंदिर के आसपास इसे लंबी रस्सियों के माध्यम से खींचा। कार से बाहर निकलते हुए माँ ने इंगित किया कि कार को खींचने में जिन लोगों ने भी भागीदारी की है, उन्होंने रथयात्रा के दिन जगन्नाथ पुरी के रथ खींचने के समान कार्य किया है।

इस प्रकार के कुछ और ऐसी घटनाएं हुई जिससे माँ और भगवान जगन्नाथ के एक ही होने का खुलासा होता है। माँ का एक भक्त जब पुरी में जगन्नाथ मंदिर गई तो वह विग्रह के स्थान पर माँ को देखकर आश्चर्य में पड़ गईं। आरंभ में तो वे इस पर विश्वास ही नहीं कर पाई। उन्होंने जब आंखें मलकर पुन: देखा तो उन्हें वही दृश्य देखने को मिला। उनके आसपास के लोग भी माँ को उस तरह से देखकर आश्चर्य में पड़ गए।

कुछ समय बाद माँ के स्थान पर भगवान जगन्नाथ का विग्रह फिर से दिखाई देने लगा।

रथयात्रा उत्सव के दौरान पुरी में प्रवास के समय माँ की वयोवृद्ध माताजी दीदीमाँ ने माँ से दुखी भाव में कहा था कि भगवान जगन्नाथ को स्पर्श करने की उनकी इच्छा अपूर्ण रह गयी। माँ ने उन्हें अपना शरीर दिखाते हुए कहा, ''इस शरीर को स्पर्श करो और ऐसा करने से जगन्नाथ को स्पर्श करना हो जाएगा।''

वर्ष 1979 के दक्षिण भारत के दौरे के बाद माँ उड़ीसा राज्य के राज्यपाल श्री बी डी शर्मा के हार्दिक अनुरोध के बाद भुवनेश्वर पहुंची। माँ की ट्रेन जब देर रात विलम्ब से पहुंची तो रेलवे स्टेशन पर उनकी अगवानी के लिए स्वयं राज्यपाल और लोगों की बड़ी संख्या में भीड़ उपस्थित थी। माँ को बहुत सम्मान के साथ राजभवन परिसर में रुकवाया गया। वहां कुछ दिनों रहने के बाद माँ पुरी आ गईं और उन्होंने करीब एक माह पुरी आश्रम में बिताया। भगवान जगन्नाथ की प्रसिद्ध रथयात्रा में माँ उपस्थित रहीं। पुरी में यह उनकी अंतिम प्रवास था।

वर्तमान में पुरी के महाराजा वहां माँ के आश्रम के अध्यक्ष हैं। आश्रम परिसर में भक्तों के ठहरने के लिए मार्च 2016 तक एक सुन्दर तिमंजिला गेस्ट-हाउस का निर्माण किया गया है।

अध्याय-चतुर्थ

श्री श्री माँ का उत्तराखंड में आगमन

(देहरादून एवं उत्तरकाशी में आश्रमों का निर्माण)

सन् 1932 में रमणा आश्रम में आयोजित श्री माँ के जन्मोत्सव के बाद अचानक बाबा भोलानाथ और ज्योतिष बाबू (भाईजी) के साथ माँ किसी अज्ञात स्थल के लिए निकल पड़ीं। गोरखपुर एवं लखनऊ होते हुए माँ देहरादून पहुंचीं जो हिमालय के निचले हिस्से में बसा हुआ है।

आठ जून 1932 को माँ देहरादून शहर के समीप रायपुर के एक शिव मंदिर में पहुंचीं। यह मंदिर बहुत प्राचीन था और एक छोटी-सी पहाड़ी पर बना हुआ था। यह 'कौमदेश्वर महादेव मंदिर' के नाम से जाता जाता था। माँ कुछ समय के लिए वहां उपलब्ध दो कमरों वाली धर्मशाला में ठहरीं। इसी समय से ज्योतिष बाबू को 'भाईजी' के नाम से पुकारा जाने लगा। उसी समय माँ को यह ख्याल आया कि अब से वे किसी गृहस्थ के घर में प्रवेश नहीं करेंगी। वे किसी धर्मशाला, मंदिर, गौशाला या अनप्रयुक्त मकान में ही ठहरती थीं।

उन्होंने अपना परिधान भी स्वयं चुना था। वह महीन बार्डर वाली सफेद धोती पहनती थीं तथा स्वयं को ढंकने के लिए एक सफेद चादर या शाल ओढ़ लेती थीं। उन्होंने घूंघट करना त्याग दिया था। वह अपने बालों को जूड़ा बनाकर सिर के ऊपर बांधती थीं या खुले ही रखती थीं जो उनके कंधे के नीचे झूलते रहते थे। अपने भक्तों के अनुरोध पर उन्होंने चप्पल आदि पहनना स्वीकार कर लिया था ताकि पहाड़ी रास्तों पर चलने में आसानी हो।

रायपुर आश्रम माँ के शुरुआती आश्रमों में से एक है। इस आश्रम का निर्माण वर्ष 1940 में तब हुआ जब रायपुर के श्री कश्मीरी लाल ने मंदिर सहित परिसर की भूमि माँ को दान कर दिया। वर्ष 1941 में भवनों की मरम्मत की गयी और माँ की गरिमामयी उपस्थिति में जन्मोत्सव भी उस वर्ष वहीं मनाया गया। माँ के परम भक्त श्री परशुराम ने रायपुर आश्रम के बगल की भूमि जो दिवंगत जमुनालाल बजाज के परिवार द्वारा माँ को दान में दी गई थी, उस पर माँ के लिए एक छोटा-सा मकान निर्मित करवाया

और इस भवन का नाम 'तपालय' रखा गया। इसका उद्घाटन सन् 1949 में माँ की उपस्थिति में हुआ।

देहरादून से माँ ने उत्तर भारत में कई स्थानों पर भ्रमण किया और बड़ी संख्या मे लोग उनके भक्त बन गए। वे निरंतर भ्रमण करती रहीं और किसी एक स्थान पर कुछ दिनों से अधिक नहीं रुकती थीं। वे किसी मंदिर या धर्मशाला में रुकती थीं और वहां उनके दर्शनों के लिए लोगों की भीड़ उमड़ने लगती थी। वे अचानक ही स्थान त्यागकर अज्ञात स्थल की ओर चल देती थीं। कई बार उन्होंने ऐसा यात्रा मध्य रात्रि में भी किया। भाईजी स्वयं उनके लिए कुछ रोटी और सब्जी बना देते थे। माँ एवं भोलानाथ जी को भोजन कराने के बाद वे शेष सामग्री को प्रसाद मानकर ग्रहण करते थे।

माँ रायपुर में जनवरी 1933 से करीब तीन माह तक भोलानाथ एवं कमलाकान्त के साथ रुकी रही तथा भाईजी भी इस बीच उनके पास आ गए। मई 1933 में माँ, भोलानाथ और भाईजी लगभग 150 किलोमीटर पैदल चलकर उत्तरकाशी पहुंची। यह हिमालय के भीतर स्थित एक पवित्र स्थल है जो प्राचीन काल से ही साधु-महात्माओं की तपस्थली रहा। वे गंगा नदी के तट पर एक सुंदर स्थल पर रुके। यह स्थान घने जंगलों से घिरा हुआ था। बाद में श्री माँ का उत्तरकाशी आश्रम एवं काली मंदिर उसी स्थल पर बना।

माँ के निर्देश पर भोलानाथजी बदरीनाथ, केदारनाथ एवं यमुनोत्री की तीर्थयात्रा पर निकल गए। उत्तरकाशी वापस आने के बाद वे लगभग तीन वर्ष तक गहन साधना एवं तपस्या में तल्लीन हो गए। उनके प्रयासों से टिहरी महाराजा नरेन्द्र शाह ने इस स्थान पर उन्हें दो बीघा जमीन दान कर दी। इसी भूमि पर श्री माँ के आश्रम एवं काली मंदिर का निर्माण हुआ। बाबा भोलानाथ देहरादून से पैदल चलकर काली विग्रह को स्वयं उठाकर ले आये थे। रास्ते में उन्हें जब भी विश्राम करना होता था तो वे विग्रह को भूमि पर न रखकर अपनी गोद में रखते थे। काली प्रतिमा की स्थापना सन् 1935 में माँ की उपस्थिति में की गई। साथ में शिवलिंग, लक्ष्मी-नारायण तथा गणेश प्रतिमाएं भी स्थापित की गई। बाबा भोलनाथ स्वयं मंदिर के प्रथम पुजारी बने। वे जब कठिन साधना करने के लिए गंगोत्री चले गए तो माँकाली मंदिर की पूजा-अर्चना एवं सेवा का दायित्व संभालने के लिए



माँ गुरुप्रिया दीदीके साथ



माँ भोलानाथ जी एवं भाई जी के साथ

ढाका से माँ के एक करीबी भक्त योगेश ब्रह्मचारी आये। सोलन के महाराजा दुर्गा सिंह जी ने मंदिर का व्यय वहन करने का प्रस्ताव अपनी ओर से रखा।

बाद में माँ कई बार उत्तरकाशी गईं। वे सन् 1939 में तीसरी बार पैदल चलकर वहां गई थीं जब उन्हें गंगोत्री जाना था। गंगोत्री चौदह हजार फुट ऊंचाई पर स्थित है। हिमालय में पवित्र गंगा नदी जिस स्थल से निकलती है वह 'गोमुख' कहलाता है जो बर्फ वाले पहाड़ों से घिरा हुआ क्षेत्र है। गंगोत्री के विख्यात वयोवृद्ध संत कृष्णाश्रम महाराज से माँ की भेंट हुई। वे वहां जाड़ों के मौसम में भी बिना वस्त्रों के रहते थे जबकि उस समय आसपास पूरे क्षेत्र में निरंतर हिमपात होता रहता था।

लम्बे अंतराल के बाद वर्ष 1973 में माँ फिर उत्तरकाशी पहुंची। इस बार कैलाश आश्रम में माँ का जन्मोत्सव मनाने के लिए महामण्डलेश्वर स्वामी विद्यानन्दजी के आमंत्रण पर वे वहां पहुंची थीं। इस भव्य समारोह को अत्यन्त उत्साह के साथ मनाया गया। तिथि पूजा के दिन माँ प्रायः हर बार की तरह गहरी समाधि में चली गईं और अगले दिन दोपहर बाद ही वह सामान्य स्थिति में लौटीं। इस समारोह में दक्षिण भारत के महान गायिका श्रीमती एम एस सुब्बुलक्ष्मी एवं कई अन्य गणमान्य लोगों ने भाग लिया। इसके पश्चात् अक्टूबर 1975 में एक सप्ताह के लिए माँ उत्तरकाशी गई थीं। तदोपरान्त सन् 1976 में कैलाश आश्रम के महामण्डलेश्वर स्वामी विद्यानन्दजी के आमन्त्रण पर वे 2 से 8 जून तक यहां रहीं एवं यह उनका उत्तरकाशी में अन्तिम प्रवास था।

देहरादून के रायपुर में माँ की भेंट एक सज्जन व्यक्ति हरिराम जोशी से हुई थी जो अल्मोड़ा के निवासी थे और उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन देहरदून में पदस्थ अधिकारी थे। माँ के भक्तों की संख्या लगातार बढ़ते देख कर भाईजी ने हरिराम जोशी से वहां माँ के रहने के लिए एक आश्रम की व्यवस्था पर बल दिया। उन्होंने जब माँ से इस बारे में बात की तो माँ ने कहा, "किसी आश्रम या मंदिर को बनवाने की क्या आवश्यकता है? प्रत्येक के हृदय में मंदिर होना चाहिए।" बहरहाल, हरिराम जी ने भूमि के लिए अथक प्रयास किया तथा वे राजपुर रोड पर आधा एकड़ जमीन प्राप्त करने में सफल हो गए। वर्ष 1935 में माँ का जन्मोत्सव इसी भूखंड

पर मनाया गया। सन् 1936 में हरिराम जी एवं माँ के एक सच्चे भक्त हंसाभाई के अथक प्रयासों से श्री माँ के किशनपुर आश्रम का निर्माण पूर्ण हुआ। इसके बाद उस वर्ष वहां 4 से 12 मई तक एक यज्ञ का आयोजन किया गया। माँ के इस आश्रम में पहली बार प्रवेश के अवसर पर 10 मई 1936 को उनका जन्मोत्सव बहुत उत्साह एवं हर्षोल्लास के साथ मनाया गया।

किशनपुर का आश्रम भवन भाईजी की निगरानी एवं दिशानिर्देश पर निर्मित किया गया था क्योंकि उनका यह हार्दिक आकांक्षा था कि आश्रम भवन ऐसा बने जिससे वहां माँ और बाबा भोलानाथ सुविधापूर्वक रह सकें। भाईजी इस बात को समझ गए थे कि दुनिया के विभिन्न प्रान्त से श्रद्धालु माँ के दर्शनों के लिए भविष्य में यहां आएंगे क्योंकि माँ विश्वजननी हैं। उनकी प्रेरणा से ही किशनपुर आश्रम के मुख्य द्वार की मेहराब (आर्च) पर 'माँ आनन्दमयी विश्व मन्दिर' उकेरा गया था। इस मेहराब पर उकेरा गया यह वाक्य अभी तक देखा जा सकता है। उस समय यह कौन कल्पना कर सकता था कि असंख्य महात्मा, विद्वान, दुनिया भर के अनेक विशिष्ट नेता और श्रद्धालु जन वहां माँ के निकट एकत्र होंगे तथा शांति एवं बन्धुत्व की भावनाओं को अनुभव करेंगे। माँ की हृदयस्पर्शी सरल वाणी पूरी मानवता की प्रति प्रेम एवं आध्यात्मिक प्रगति के लिए संदेश व्यक्त करेगी।

बाद में सन् 1949 एवं 1953 में किशनपुर में दुर्गा पूजा उत्सव में माँ उपस्थित थीं। वर्ष 1959 और 1962 में माँ का जन्मोत्सव यहीं आयोजित किया गया। दिवंगत भाईजी की इच्छा के अनुपालन में वर्ष 1958 में यहां श्री माँ एवं बाबा भोलानाथजी को समर्पित एक जैसे दो मंदिरों का निर्माण किया गया। भोलनाथ के मंदिर में माँ की उपस्थिति में सात शिवलिंग स्थापित किए गए थे। श्री माँ के महाप्रयाण के पश्चात् सन् 1984 में माँ के मन्दिर में उनकी एक संगमरमर की प्रतिमा स्थापित की गई। काफी समय बाद सन् 2006 में 'अक्षय तृतीया' के पावन दिन को शिव मन्दिर में बाबा भोलानाथ की संगमरमर की प्रतिमा भी स्थापित की गई। मामाजी (माँ का छोटा भाई) के ज्येष्ठ पुत्र बच्चूदा ने इस मूर्ति की प्रतिष्ठा पूजा संपन्न की थी। इसके अतिरिक्त आश्रम परिसर में एक तीन मंजिला

भवन का निर्माण किया गया जिसकी दूसरी मंजिल पर कुमारी ब्रह्मचारिणियों का निवास स्थल बनाया गया। इस भवन का माँ ने नाम दिया 'कुमारी पीठ।' कुमारी ब्रह्मचारिणियों के अतिरिक्त यहां किसी को ठहरने की अनुमति नहीं है।

किशनपुर आश्रम से करीब एक फर्लांग दूर एक अन्य आश्रम है 'कल्याणवन।' ढाका के अतिरिक्त आयकर आयुक्त श्री शचिकांत घोष ने देहरादून के राजपुर रोड पर सात बीघा जमीन खरीदी थी और इस भूमि को उन्होंने श्री श्री माँ को दान कर दिया। कल्याणवन आश्रम का निर्माण उसी भूमि पर वर्ष 1944 में हुआ।

हरिद्वार में रहने के दौरान माँ का दिव्य दृष्टि में कल्याणवन आश्रम का प्रकाश हुआ था। माँ ने देखा था कि वहां असंख्य देवतागण विराट समुद्र की भांति अपने अपने वाहनों के साथ तथा उच्चावस्था के साधक, ऋषि-मुनि, अवतार सब श्री श्री माँ के दर्शन के लिए आये। माँ का शरीर शुभ्र ज्योति-स्वरूप 'अखण्डभावघन' मूर्ति में वहां विराजमान था। माँ को कुछ ऐसा ही दिव्य दृश्य वर्ष 1928 में भी दिखाई दिया था जब वह असम के प्रसिद्ध तीर्थ स्थान 'कामाख्या' गई थीं। बाद में जुलाई 1947 में कल्याणवन में माँ द्वारा इंगित उसी स्थल पर पंचवटी वृक्ष रोपे गए ताकि उस स्थल की पवित्रता अक्षुण्ण रखी जा सके। माँ की अनन्य भक्त श्रीमती राजाबेन खेतान के द्वारा माँ से यह स्थल मांग लेने पर वर्तमान में आश्रम के बगल के भूमि में जहां खेतान परिवार का निवास स्थल है, वहां के परिसर में यह पंचवटी स्थित है। खेतान परिवार ने इस पंचवटी के निकट माँ के लिए संगमरमर की एक सुंदर कुटी बनवाई जहां माँ ने कई बार निवास किया था।

कल्याणवन आश्रम में एक राममन्दिर उस स्थान पर निर्मित किया गया जहां माँ ने श्रीराम का दिव्य दर्शन किया था। माँ ने वहां देखा था कि किशोर अवस्था में श्रीराम राजघराने के वस्त्र धारण किए हुए श्वेत अश्व की पीठ पर सवार थे। माँ ने अपने पुराने भक्त रमाजी व कमलाजी को इस मन्दिर में स्थापित करने के लिए श्रीराम, सीता व लक्ष्मण के सुन्दर विग्रह जयपुर से लाने को कहा। समस्त दुकानें देखने के बाद भी पसन्द की मूर्ति उन्हें नहीं मिल पाई। निराश होकर लौटते समय एक छोटा सा सुन्दर बालक

ने आकर कहा कि वे उसके साथ आ जावें, वह उन्हें रामजी की एक सुन्दर मूर्ति के पास ले जायेगा। गलियों में चलकर एक छोटी सी दुकान में रखे हुए श्रीराम सीता व लक्ष्मण के अपूर्व सुन्दर विग्रह देखते ही उन्हें पसन्द आ गये। परन्तु, जो बच्चा उन्हें वहां तक पहुंचा गया था उसका कोई अता-पता नहीं मिल पाया। श्री माँ की ही विशेष कृपा मानकर वे विग्रहों को ले आये। आठ जुलाई 1966 को माँ ने कल्याणवन में एक वृक्ष के समीप खड़े होकर "श्रीराम, जयराम, जय जय राम" कीर्तन किया था। भक्तों ने माँ की इस मधुर कीर्तन से प्रेरणा लेते हुए अगले 24 घंटे तक वहां अखण्ड कीर्तन जारी रखा था।

कल्याणवन आश्रम के बगल में वर्ष 1971 में खेतान परिवार के निवास स्थल परिसर पर माँ की उपस्थिति में नवरात्रि में दुर्गा पूजा हुई। इस अवसर पर त्रिवेंद्रम के महाराजा श्री मार्तण्ड वर्मा आये थे। उन्होंने पद्मनाभं मंदिर के शेषशायी विष्णु प्रतिमा की चांदी की बनी छोटी प्रतिमूर्ति माँ को भेंट की थी जिसे महाष्टमी के दिन कल्याणवन आश्रम में स्थापित किया गया। यह प्रतिमा अब नित्य पूजा-अर्चना के लिए कनखल आश्रम में माँ के शयन कक्ष में रखी हुई है।

कल्याण वन आश्रम में दो छोटी कुटिया विदेशी भक्तों के लिए बनाया गयी थी। श्रद्धालु आत्मानन्द (मिस ब्लांका) और डच महिला जी. एम्मेरल के लिए ये दो भवन बनवाए गए था ताकि वे वहां अपनी साधना कर सकें। उनके निधन के बाद इन भवनों का उपयोग अब अतिथियों को ठहराने के लिए किया जाता है। विदेशी भक्तों को इस आश्रम में ठहरने की अनुमति है।

देहरादून में ही राजपुर रोड पर किशनपुर आश्रम से करीब एक किलोमीटर दूर जाखन में एक और आश्रम है जिसे 'साधनालय' कहा जाता है। माँ के भक्त श्री आर. के. सूद ने 1.67 एकड़ बड़े आहते के साथ अपना मकान श्री माँ के उपयोग के लिए दान किया था जिसे आश्रम के रूप में विकसित किया गया। उनकी कोई संतान नहीं थी। सन् 1964 में श्री सूद के दिवंगत पत्नी के आत्मोन्नति के लिए माँ की उपस्थिति में वहां भागवत सप्ताह का आयोजन किया गया था एवं वहां एक शिवलिंग भी स्थापित किया गया। यहां भागवत सप्ताह के दौरान एक अनहोनी घटना घटी। माँ के

बिस्तर पर एक छोटा सफेद रंग का सांप दिखाई दिया। माँ के ख्याल में वह सांप सारी रात माँ के पैर के पास पड़ा रहा। सुबह जब माँ की सेविका उदासजी को दिखाई दिया तो माँ ने इसे हटाने नहीं दिया। माँ की उपस्थिति में माँ के बिस्तर पर ही इसकी मृत्यु हो गई। माँ ने एक खाली बोतल में मरे हुए सांप के शरीर को रखवाया और उसे हरिद्वार भेजकर गंगा में जल समाधि दिलवायी। माँ ने संकेत किया था कि भागवत सप्ताह जिनके लिए कराया गया था वे ही इस रूप में माँ के पास मोक्षलाभ के लिए आयी थीं।

बाद में श्री आर. के. सूद के निधन के बाद इस आश्रम को लेकर वर्षो तक मुकदमा चला क्योंकि कुछ लोगों ने अपने को दिवंगत सूदजी का संबंधी बताते हुए इस पर झूठा दावा किया था। अक्तूबर 2014 में अदालत द्वारा श्री श्री आनन्दमयी संघ के पक्ष में अन्तिम निर्णय देने के पश्चात यह आाश्रम सरकारी कब्जे से छूटकर पुनः श्री श्री आनन्दमयी संघ के संरक्षण में आ गया है। सम्प्रति इसका मरम्मत कार्य संघ द्वारा किया गया एवं मार्च 2016 में वहां भागवत सप्ताह का श्रद्धापूर्वक आयोजन किया गया।

कैलाश तीर्थयात्रा

हिमालय में स्थित कैलाश पर्वत एक पवित्र स्थल है जिसे भगवान शिव का निवास माना जाता है। यह तिब्बत (चीन) में स्थित है एवं इसकी ऊंचाई समुद्र तल से करीब 22200 फुट (6770 मीटर) है।

सन् 1937 में माँ नैनीताल एवं रानीखेत होते हुए अल्मोड़ा पहुंची। नन्दा देवी मंदिर में माँ रुकी थीं तथा पवित्र कैलाश पर्वत जाने की योजना को अंतिम रूप वहीं दिया गया। उन्होंने संभवतः 13 जून 1937 को अपनी यात्रा प्रारंभ की। बाबा भोलानाथजी, भाईजी, गुरुप्रिया दीदी, स्वामी अखण्डानन्द एवं कुछ अन्य भक्त उस यात्रा में माँ के साथ थे।

पहाड़ की दुर्गम यात्रा में उनकी अन्य तीर्थयात्रियों एवं भोले-भाले स्थानीय पर्वतीय लोगों से भेंट होती रही। क्षणिक समय में ही उनका माँ के प्रति विशेष आकर्षण दिखाई देता था और विदा होते समय उनकी आंखों में आंसू भर जाते थे। माँ जब 'अस्कोट' नामक स्थल पर पहुंची तो वहां के राज परिवार द्वारा माँ का शाही स्वागत हुआ। राजघराने की महारानी ने माँ को उनकी आगे की यात्रा के सुविधा के लिए अपनी व्यक्तिगत 'दांडी' (डोली) भेंट की।

'धारचूला' में एक विचित्र घटना घटी। यह स्थान कैलाश जाने के मार्ग में दूरदराज का एक भीतरी स्थल है। इसी जगह से नये कुलियों की सेवा ली जाती है जो खतरनाक संकरे पहाड़ी रास्तों पर सामान लेकर चलने के अभ्यस्त होते हैं। उस समय के मानकों के अनुसार प्रत्येक कुली द्वारा उठाया जाने वाला वजन 35 सेर (लगभग 32 किग्रा)तक ही होता था। सभी सामान की जांच करने पर पाया गया जिस बक्से में सभी आवश्यक सामान था, उसका वजन 40 सेर था, जो अनुमति योग्य सीमा से पांच सेर अधिक था। गुरुप्रिया दीदी इस बात को लेकर खिन्न थीं कि इस बक्से में ऐसा कोई सामान नहीं था जिसे निकाल दिया जा सके। कोई अन्य विकल्प न देखते हुए उन्होंने माँ से अनुरोध किया कि वह इस बक्से को स्पर्श कर दें ताकि उसका वजन चमत्कारी ढंग से कम हो जाए। किन्तु माँ ने ऐसा करने से मना कर दिया और कहा कि प्रतीक्षा करो और देखो कि क्या होता है? बहरहाल, जब नये कुली आए तो प्रत्येक ने अपने सामान का वजन तौला तो उस वाले बक्से का वजन 34.5 सेर ही निकला जबकि उसमें से कोई सामान नहीं निकाला गया था। कुली उस सामान को लेकर आराम से ऊपर चल दिया।

माँ का दल जब 'तकलाकोट' स्थान से आगे बढ़ रहा था तो एक झबरीला काला कुत्ता अपने आप माँ के साथ चलने लगा और पूरी यात्रा के दौरान वह माँ की दांडी के आगे पीछे चलता रहा। माँ जब भी किसी चट्टान पर बैठकर विश्राम करती थीं तो वह कुत्ता माँ से सटकर उनके बेहद करीब बैठ जाता था। माँ ने यह इंगित नहीं किया कि वह कौन था?

काफी ऊंचाई पर पहुंचने पर दुर्गम रास्ते के साथ-साथ कड़ाके की ठंड और वर्षा के कारण दल के सभी सदस्य परेशान थे किन्तु माँ शांत और मौन रहती थीं। यद्यपि पूरी यात्रा के दौरान बाबा भोलानाथ काफी प्रफुल्लित और उत्साहित बने रहे। माँ का दल छह जुलाई 1937 में 'मानस सरोवर' पहुंचा। यह एक विशाल झील है तथा इसके आसपास प्रकृति का मनोरम दृश्य बहुत आकर्षक है। इस झील के पानी को अति पवित्र माना जाता है। इस झील में स्नान करने के बाद बाबा भोलानाथ और भाईजी को संन्यास मंत्र प्राप्त हुआ जो माँ के श्रीमुख से स्वतः उच्चारित हुआ था। माँ ने उनका संन्यास नामकरण भी किया। बाबा भोलानाथजी 'स्वामी तिब्बतानन्द तीर्थ' तथा भाईजी 'स्वामी मौनानन्द पर्वत' हुए।

मानस सरोवर से वे पवित्र कैलाश के लिए आगे बढ़े तथा 'बुंद' नामक स्थल पर पहुंचे जो कैलाश के निचले हिस्से में स्थित है। बर्फ की चादर ओढ़े हुए मन्दिरनुमा कैलाश पर्वत और आसपास के स्थल को देखकर सभी अत्यन्त प्रफुल्लित हुए। माँ भी इसे देखकर प्रसन्न थीं और उन्होंने अन्य लोगों का ध्यान कैलाश पर्वत के चारों ओर से घिरी पहाड़ियों की ओर दिलाया जो प्राकृतिक ढंग से बने 'गौरीपीठ' जैसा दिखाई दे रहा था। शिवलिंग जिस आधार पर स्थापित होता है और उस पर चढ़ाया जाने वाला जल जिस स्थल के माध्यम से बह जाता है, उसे गौरीपीठ कहते हैं। गौरीपीठ को शिव की पत्नी देवी गौरी का धाम माना जाता है। माँ ने यह भी कहा कि यहां आकर व्यक्ति यह अनुभव करने लगता है कि वह सब चीजों से हटकर किसी अन्य जगत में आ गया है।

'बुंद' से उन्होंने कैलाश पर्वत की परिक्रमा आरंभ की जो तीन दिन में पूरी हुई और वे 11 जुलाई 1937 को कैलाश पर्वत के ऊपर स्थित गौरीकुण्ड पहुंचे। उस स्थल तक पहुंचने का मार्ग बहुत संकरा और सीधी चढ़ाई वाला था। इतनी ऊंचाई पर व्यक्ति को सांस लेने में कठिनाई होती है। माँ के दल के समक्ष भी यह कठिनाई आई किन्तु माँ की कृपा से सब कुछ ठीक रहा। माँ के परामर्श पर सभी लोगों को सूंघने के लिए कपूर और खाने के लिए अचार दिया गया ताकि सांस लेने में कठिनाई को कम किया जा सके।

गौरीकुण्ड में बर्फ से ढंकी एक छोटी-सी झील है जो करीब 22000 फुट की ऊंचाई पर स्थित है। कैलाश पर्वत की सभी पूजा-अर्चना तथा अन्य कर्मकाण्ड यहीं सम्पन्न किए जाते हैं। बाबा भोलानाथ एवं कुछ अन्य लोगों ने इस झील की सतह पर जमी कुछ बर्फ को हटाकर स्नान किया। भोलानाथजी के सिर से कुछ बाल काटकर गौरीकुण्ड में अर्पित किए गए। माँ ने भी इस सरोवर के जल से अपने बाल धोए। बाद में माँ ने गुरुप्रिया दीदी को बताया कि भगवा वस्त्र धारण किए पांच महात्मा (सूक्ष्म शरीर में) उनके समक्ष प्रकट हुए थे और उन्हें बताया कि वे कैलाश पर्वत की यात्रा के दौरान माँ के साथ थे।

गौरीकुण्ड से माँ और उनका दल उसी दिन कैलाश पर्वत के निचले हिस्से में लौट आया। उनकी वापसी की यात्रा अगले दिन प्रारंभ हुई। मानसरोवर लौटने के बजाय माँ का दल राक्षस तालाब मार्ग से वापस लौटा। करीब एक माह तक यात्रा करने के बाद वे 10 अगस्त 1937 को अल्मोड़ा वापस पहुंचे।

भाईजी का निधन एवं अल्मोड़ा में आश्रम का निर्माण

कैलाश से अल्मोड़ा लौटते समय भाईजी की तबीयत काफी बिगड़ गई। अल्मोड़ा में तेज बुखार के साथ उनकी स्थिति बहुत खराब हो गई। पूरी चिकित्सा देखभाल के बावजूद भाईजी को बचाया नहीं जा सका। उन्होंने 17 अगस्त 1937 को श्री माँ एवं बाबा भोलानाथ की उपस्थिति में अपने प्राण त्याग दिये। उस समय वे केवल 58 वर्ष के थे।

ढाका में रहते समय ही बाबा भोलानाथ ने भाईजी को अपना धर्मपुत्र मान लिया था। माँ ने कुछ बार भाईजी का परिचय इसी रूप में करवाया था। वे भी उनके पुत्र की तरह ही बर्ताव करते थे और सदैव अपना समय उनकी सेवा में ही लगाते थे। इस तरह वे बाबा भोलानाथ एवं माँ के बहुत करीब थे। माँ को यह ख्याल आया था कि भाईजी ब्राह्मण हैं और इसीलिए उन्होंने रमणा आश्रम में उन्हें यज्ञोपवीत धारण करने के लिए दिया था।

अपने शारीर त्याग के अन्तिम क्षण में भाईजी ने बहुत स्पष्ट वाणी और प्रसन्नता के साथ कहा था, "माँ और मैं एक हूं। पिताजी (बाबा भोलानाथ) और मैं एक हूं। हम सभी एक हैं।" भाईजी ने संन्यास मंत्र का उच्चारण करते हुए अपने प्राण त्याग दिये। उस समय गुरुप्रिया दीदी, स्वामी अखण्डानन्दजी, हरिराम जोशी तथा कुछ अन्य लोग भी वहां उपस्थित थे। उस समय माँ ने उन सभी की उपस्थिति में भाईजी एवं बाबा भोलानाथ के मानसरोवर में संन्यास ग्रहण के विवरण का खुलासा किया। उनमें त्याग की प्रबल भावना प्रकट होने पर माँ के मुख से उनके लिए संन्यास मंत्र स्वतः उच्चारित हो गया था। आत्मानुभुति सम्पन्न संन्यासी होने के कारण भाईजी के पार्थिव शरीर को अल्मोड़ा के 'पाताल देवी' स्थान पर समाधि दी गई। माँ को यह दर्शन हुआ था कि उस स्थल से पवित्र आत्माएं सूक्ष्म शरीर में बाहर आ रही हैं। उन्हें बाद में बताया गया कि पूर्व काल में यह साधुओं का समाधि स्थल रह चुका है। वर्ष 1943 में वहां अल्मोड़ा आश्रम का निर्माण किया गया। माँ का जन्मोत्सव भी नए आश्रम में मनाया गया। इस अवसर पर हरिबाबा एवं प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी सहित कई संत-महात्मा उपस्थित थे।

दिवंगत भाईजी की चर्चा करते हुए बाद में माँ ने एक दिन कहा कि उन्होंने भाईजी को धुएं के आकार में देखा जो बहुत प्रकाशवान प्रतीत

हो रहे थे और वह स्वरूप माँ में विलीन हो गया। यह महान साधक आध्यात्मिकता के इतने उच्च स्तर पर पहुंच चुके थे कि उन्होंने एक बार माँ को कहा था कि उन्हें समाधि की विभिन्न अवस्थाएं पार नहीं करनी पड़ती और वे सीधे 'निर्विकल्प समाधि' हासिल करने में समर्थ हैं। जब माँ ने ऐसा करने को कहा, उन्होंने इसे करके भी दिखाया। माँ ने शीघ्र उनके सिर को स्पर्श कर उन्हें सामान्य स्थिति में लौटा ले आईं।

भाईजी में अलौकिक शक्तियों का भी विकास हो गया था। परंतु उनके प्रदर्शन में उन्हें कोई रुचि नहीं थी। एक बार एक छात्र माँ से मिलने को व्याकुल हो गया। पूछने पर उसने भाईजी को कहा कि हाईस्कूल का रिजल्ट निकलने वाला है अतः वह माँ से पूछना चाहता है कि वह पास होगा कि नहीं। भाईजी ने एक छोटे कागज में कुछ लिख दिया और मोड़कर उसे देते हुए कहा कि जिस दिन रिजल्ट निकलेगा उसके पहले इसे खोलकर देख लेना। दो दिन बाद वह लड़का फिर से आया परंतु इस बार उसे माँ के स्थान भाईजी से ही मिलना था क्योंकि भाईजी ने उस छोटे कागज में लिख दिया था 'सेकेंड डिवीजन', जो बिल्कुल सच निकला। भाईजी के द्वारा लिखी गई पुस्तक 'मातृदर्शन' माँ के विषय में लिखी गई सबसे पहली पुस्तक है जिसकी सर्वाधिक मांग है। इस पुस्तक में लिखी गई भाईजी की 'द्वादश वाणी' किसी भी साधक के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

अल्मोड़ा में भाईजी के देहान्त के समय उनकी पत्नी मणिकुन्तला देवी एवं पुत्र रामानन्द ढाका में थे। बाबा भोलानाथ ने एक अत्यन्त हृदयस्पर्शी पत्र लिखकर उन्हें समस्त परिस्थिति से अवगत कराते हुए सांत्वना वाक्य भेज दिया। माँ ने भाईजी की पत्नी व पुत्र को सदा के लिए आश्रम आ जाने को कहा था, परन्तु भाईजी की गृहस्थ जीवन परित्याग से वे इतना खिन्न थे कि वे माँ के विरुद्ध हो गये थे एवं उन्होंने अन्य गुरु का आश्रय ले लिया था। बाद में वे अपनी गलत धारणाएं अनुभव होने पर अनुतप्त हुए। उनके पुत्र रामानन्द ने विवाह नहीं किया था तथा अपनी माता के निधन के बाद वे कभी-कभी माँ का सान्निध्य पाने के लिए आश्रम आ जाते थे।

अल्मोड़ा आश्रम में भाईजी की समाधि पर एक मंदिर बनाया गया। वहां 16 अप्रैल 1954 को माँ की उपस्थिति में नर्मदेश्वर शिवलिंग की

स्थापना की गई। इस शिवलिंग को अल्मोड़ा लाते समय माँ के आश्रम के ब्रह्मचारी पानुदा एक भीषण बस दुर्घटना में सकुशल बच गए। हादसे में उनकी बस लुढ़कते हुए एक गहरे पहाड़ी ढलान में गिरने लगी तभी अचानक हुए चमत्कार में यह एक पेड़ से उलझ गयी तथा सभी यात्री एवं शिवलिंग सुरक्षित बच गये।

विश्व प्रसिद्ध नर्तक श्री उदयशंकर के नृत्य केन्द्र की अल्मोड़ा शाखा माँ के आश्रम के समीप ही स्थित थी। उदयशंकर एवं उनके छोटे भाई विख्यात सितार वादक पण्डित रविशंकर तथा उनके परिजन एवं शिष्य माँ के विशेष अनुगत हो गये एवं उन्हें माँ का आशीर्वाद मिला। उनके नृत्य केन्द्र में प्रति वर्ष दुर्गा पूजा का आयोजन किया जाता था। बहरहाल, सन् 1943 में यह उत्सव उनके गुरु के निधन के कारण टाल दिया गया। परिणामस्वरूप उस वर्ष वह दुर्गा पूजा माँ के आश्रम में आयोजित की गई। आम दिनों की तरह माँ श्रद्धालुओं से घिरी हुई थीं। माँ ने उनसे एक दिन कहा, "एक जीवन से कई जीवन स्फुरित होते हैं। यही जीवन का क्रम है। एक भगवान ही सभी में विभाजित हुए हैं। इसी लिए कहा गया है-यत्र जीव, तत्र शिव।"

बाद में चलकर भाईजी की परिकल्पना के अनुसार एक आवासीय शिक्षण संस्थान 'श्री श्री आनन्दमयी विद्यापीठ' वहीं स्थापित हुआ। इस संस्थान में बच्चों को उनकी बाल्यावस्था से ही वैदिक ऋषिकुल परम्परा के अनुसार प्राचीन एवं नवीन शिक्षा प्रदान की जाती थी। वर्तमान में यह संस्थान माँ के कनखल आश्रम में स्थापित है।

अल्मोड़ा जिले के धवलछीना में सन् 1957 में एक और आश्रम स्थापित किया गया। कैलाश जाते समय माँ 'धवलछीना' में एक दिन ठहरी थीं। उस समय भाईजी के साथ माँ निकट के पर्वत शिखर पर एक एकांत मनोरम स्थल पर गई थी। चारों तरफ बर्फ से ढकी हिमालय की पहाड़ियों और 25600 फुट (7817 मीटर) ऊंची नन्दादेवी चोटी को अपने सामने देखकर वे मंत्रमुग्ध हो गए थे। भाईजी ने वहां एक आश्रम स्थापित करने की इच्छा से माँ को अवगत कराया था ताकि कोई भी व्यक्ति शांति एवं निर्जनता में साधना कर सके तथा बर्फ से ढंकी पहाड़ियों का मनोरम दृश्य उसका मन मोहता रहें। माँ ने भाईजी की इस इच्छा से हरिराम जोशी को

अवगत कराया जो अल्मोड़ा के रहने वाले थे। जोशीजी के काफी प्रयासों के बाद वनभूमि का एक बड़ा क्षेत्र पट्टे पर लिया गया जो लगभग 8000 फुट ऊंचाई पर स्थित है और उस पर एक छोटे आश्रम का निर्माण हुआ। बहरहाल, वहां पानी का स्रोत मात्र वर्षा जल हुआ करता था। माँ बाद में इस आश्रम में गईं और कुछ बार वहां ठहरीं। वर्तमान में इस आश्रम में जलापूर्ति व्यवस्था हो गयी है तथा राज्य सरकार ने बिजली भी मुहैया करा दी है।

माँ के पिता और बाबा भोलानाथजी का देहान्त

माँ के पिता का देहान्त : श्री माँ के पिता श्री बिपिन बिहारी भट्टाचार्य का दिसंबर 1937 में कोलकाता में देहान्त हुआ था। उस समय उनकी आयु इकहत्तर वर्ष थी। माँ उस समय भोलानाथजी के साथ वाराणसी मार्ग पर ट्रेन से यात्रा कर रही थीं। कुछ ही दिनों पहले माँ अपने बीमार पिता को देखने के लिए कोलकाता गईं थीं। बाद में, माँ ने खुलासा किया कि अपने पिता के देहान्त के समय में वे उनके पास सूक्ष्म रूप में उपस्थित हुईं और उन्हें संन्यास मंत्र प्रदान किया था। करीब छह माह बाद उनकी ज्योति स्वरूप आत्मा श्री माँ में विलीन हो गई।

बिपिन बिहारीजी की शिवलिंग स्थापना की इच्छा थी जो वे अपने जीवनकाल में नहीं कर पाए थे। यद्यपि वर्षो बाद उनके पुत्र माखन (आश्रम में मामाजी के नाम से परिचित) ने माँ के वाराणसी आश्रम के समीप अपने मकान के आंगन में एक छोटे-से मंदिर निर्माण कर उसमें शिवलिंग स्थापित किया। इस प्रकार उन्होंने अपने पिता की इच्छा को पूर्ण किया। शिवलिंग स्थापना की प्रक्रिया 16 जनवरी 1957 को माँ एवं उनकी माता दीदीमा की उपस्थिति में सम्पन्न हुई। माँ ने इस शिवलिंग का नाम अपने पिता पर रखते हुए इसे 'बिपिनेश्वर' बताया। उनकी नित्य पूजा की व्यवस्था वाराणसी आश्रम एवं मामाजी के परिवार द्वारा की जाती है। माँ ने वहां प्रत्येक अष्टमी, प्रत्येक चतुर्दशी एवं अमावस्या तथा पूर्णिमा तिथियों में आश्रम से अन्नभोग देने की व्यवस्था करवा दी।

बाबा भोलानाथ का देहान्तः अप्रैल 1938 में माँ महा कुम्भ में भाग लेने के लिए हरिद्वार आईं। मेला पूर्ण होने के बाद माँ भोलानाथजी के साथ

देहरादून में किशनपुर आश्रम लौट गईं। गुरुप्रिया दीदी के चाचा श्री कुंजमोहन मुखोपाध्याय के संन्यास ग्रहण में भाग लेने के लिए भोलानाथजी हरिद्वार लौट कर आए। वे जब देहरादून वापस लौटे तो उन्हें तीव्र ज्वर था। माँ उन्हें देखते ही समझ गईं कि यह कोई सामान्य ज्वर नहीं है। उनके आने से कुछ दिन पहले ही माँ ने गुरुप्रिया दीदी को बता दिया था कि भोलानाथ किसी गंभीर बीमारी के साथ लौट कर आएंगे। वे चेचक से ग्रसित थे। उनकी स्थिति काफी गंभीर थी और उनके बचने के आसार क्षीण होते गए।

उन्होंने 6 मई 1938 को किशनपुर आश्रम में अपने प्राण त्यागे। अन्तिम दिन को माँ ने उन्हें स्वयं अपने हाथों से गैरिक वस्त्र प्रदान किए जिसे उन्होंने कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया। किसी शिशु की तरह वे भी माँ को 'माँ' पुकारने लगे थे। उन्होंने जब प्राण त्यागे, उस समय उनके मस्तक पर श्री माँ का हाथ स्पर्श कर रहा था। उस समय उनकी आयु 57 वर्ष थी। उन्होंने पूर्व में यह इच्छा व्यक्त की थी कि उनके देह त्यागने के समय माँ उनके समीप हों और वास्तव में ऐसा ही हुआ। उनका महान एवं निःस्वार्थ जीवन अन्य लोगों के लिए प्रेरणा दायक है।

आत्म साक्षात्कार सम्पन्न संन्यासी होने के कारण यह प्रस्ताव था कि उनकी पार्थिव देह को किशनपुर आश्रम परिसर में ही स्थल समाधि दी जाये। परन्तु उनका निधन चूंकि एक संक्रामक रोग के कारण हुआ था, इसलिए इस प्रस्ताव पर कुछ लोगों को आपत्ति थी। अतः उनकी पार्थिव देह को हरिद्वार लाकर नीलधारा में गंगा के पवित्र जल में जलसमाधि दी गई।

भारतवर्ष में पत्नी अपने पति के देहांत के बाद अपने समुदाय के रीति रिवाजों के अनुरूप अपने परिधान, खानपान के तरीके आदि परिवर्तित कर लेती है। परन्तु माँ के साथ इन नियमों के पालन की आवश्यकता ही नहीं थी। यद्यपि माँ का औपचारिक विवाह हुआ था किन्तु वे आजीवन सदैव कुमारी ही रहीं। एक बार उन्होंने हंसते हुए कहा था– "कब मैं विवाहित थी और कब विधवा बन गई?"

बाबा भोलानाथ के निधन से भक्तजनों को उनकी कमी बहुत खलने लगी। वे बहुत दुखी थे। उदार स्वभाव होने के कारण भोलानाथजी उनके लिए पिता स्वरूप थे और वे श्री माँ एवं भक्तजनों को जोड़ने वाली कड़ी के समान थे। बाबा भोलानाथ ने माँ की उपस्थिति में बड़ी संख्या में

भक्तजनों को दीक्षा दी थी। उन सभी का गुरु अब चला गया। एक बार एक महिला भक्त ने आंखों में आंसू भरते हुए माँ को बताया कि बाबा भेलानाथ उन्हे दीक्षा देने का वचन दिया था जो उनके जीवित अवस्था में सम्भव नहीं हो सका। परन्तु निधन के पश्चात वे सूक्ष्म शरीर में उसके पास आये तथा समस्त अनुष्ठान के सम्पादन के पश्चात् गुरुमंत्र प्रदान कर उसकी सच्ची इच्छा पूर्ण की थी। उनकी इस अहेतुक अलौकिक कृपा के कारण वह बहुत ही कृतज्ञ थी।

इस प्रकार मात्र दस माह के भीतर माँ के अत्यन्त करीबी एवं आत्मानुभूति संपन्न तीन महापुरुष एक-एक करके दिवंगत हो गए। माँ ने आश्रम ब्रह्मचारियों को कहा था कि संन्यास ग्रहण करने के बाद भाईजी एवं बाबा भोलानाथ, दोनों ही अपने शरीरों में अधिक समय नहीं रहे। यदि वे जीवित रहते तो उन्हे यह देखने का सौभाग्य मिलता कि वे उनको किस प्रकार उपयुक्त तरीके से ढालते और आध्यात्मिक यात्रा के लिए सुयोग्य बना देते।

माँ का हरिद्वार पहुंचना और दीदीमा का संन्यास ग्रहण

श्री माँ की पहली हरिद्वार यात्रा वर्ष 1926-27 में आयोजित महाकुम्भ में भाग लेने के लिए की गई थी। माँ ने कुम्भ मेला के प्रथम दिन शाही स्नान के अवसर पर ब्रह्मकुण्ड में स्नान किया। शाही स्नानों के दिन नागा साधुओं के साथ प्रमुख साधु-संतों की विशाल शोभायात्रा निकलती है। माँ ने गंगा नदी में स्थित प्राचीन पवित्र कुण्ड 'ब्रह्मकुण्ड' में स्नान किया तथा इस अवसर पर आए बड़े-बड़े साधु-संतों से भेंट की।

माँ की दूसरी हरिद्वार यात्रा सन् 1929 में उनके पिता के साथ हुई। तीसरी यात्रा सन् 1934 में हुई थी। यह यात्रा गुरुप्रिया दीदी के पिता के संन्यास ग्रहण करवाने के संबंध में हुई थी जो उस समय लगभग 70 वर्ष की आयु के थे। श्री माँ उस यात्रा में कुछ समय के लिए कनखल रुकी थीं। प्रारम्भ में गुरुप्रिया दीदी के पिता माँ के अतिरिक्त किसी अन्य को गुरु मानने के लिए तैयार नहीं थे। माँ ने उन्हें यह कहते हुए शांत किया-- जहां तक संन्यास की बात है उसमें गुरु एवं शिष्य का सम्बन्ध नहीं होता। इसलिए उन्हें यह नहीं सोचना चाहिए कि उन्होंने एक भिन्न गुरु को

स्वीकार कर लिया है। इसके उपरांत उन्होंने निर्वाणी अखाड़े के विख्यात महंत स्वामी मंगलानन्द गिरिजी से संन्यास ग्रहण किया और उन्हें संन्यास नाम प्राप्त हुआ – 'स्वामी अखण्डानन्द'। इसके बाद माँ ऋषिकेश में करीब ढाई माह तक गंगा तट के समीप एक कुटिया में रहीं।

सन् 1938 में भी श्री माँ कुम्भ के दौरान कुछ महीनों के लिए हरिद्वार में ठहरीं। वे डॉ. पंत द्वारा निर्मित करवाई गई एक कुटिया मे गंगा तट के समीप रुकीं। डॉ. पंत माँ के भक्त और वहां के सिविल सर्जन थे। मुख्य स्नानों के बाद माँ देहरादून लौट गईं जहां मई 1938 में भोलानाथ जी ने प्राण त्यागे थे।

बाद में दीदीमा (माँ की माताजी) अपने एकमात्र पुत्र माखन के विवाह के उपरात माँ के साथ अप्रैल 1939 में हरिद्वार आईं थीं। वे अब सभी पारिवारिक उत्तरदायित्वों से मुक्त हो चुकी थीं। उनकी इच्छा थी कि वे अपना शेष जीवन माँ के पास रहकर बितायें। माँ ने उनसे कहा कि यदि वे संन्यास ग्रहण कर लें तो वे उनके साथ रह सकती हैं। दीदीमा इसके लिए तुरंत सहमत हो गईं। यह तय किया गया कि निर्वाणी अखाड़े के वयोवृद्ध एवं सम्मानित महंत महामण्डलेश्वर स्वामी मंगलानन्द गिरिजी से सम्पर्क किया जाए जो हरिद्वार के कनखल में रहते थे। प्रारम्भ में तो उन्होंने एक महिला होने के नाते दीदीमा को संन्यास देने से मना कर दिया पर जब उन्हें पता चला कि यह श्री आनन्दमयी माँ की माताजी हैं तो वे इसके लिए तुरंत तैयार हो गए। चैत्र संक्रान्ति के पवित्र अवसर पर 14 अप्रैल 1939 को ब्राह्म मुहूर्त में विरजा होम (संन्यास के अवसर पर किया जाने वाला विशिष्ट यज्ञ) संपन्न करने के पश्चात् दीदीमा को संन्यास दीक्षा मंत्र प्राप्त हुआ। उन्हें संन्यास नाम दिया गया 'स्वामी मुक्तानन्द गिरि'। वे निष्काम व्यक्तित्व वाली थीं और हृदय से सच्ची संन्यासी थीं।

संन्यास दीक्षा के बाद स्वामी मंगलानन्दजी ने कहा, "बेटी, आज तक मैंने यह मंत्र किसी महिला को नहीं दिया है। किन्तु मैंने तुम्हें यह इसलिए प्रदान किया क्योंकि तुम आनन्दमयी माताजी की माँ हो। इतना ही नहीं संन्यास में प्रदेय सब कुछ तुम्हें ही दे दिया।" उपयुक्त शिष्य पाने पर गुरु अपना यथासर्वस्व उन्हें देकर प्रसन्न होते हैं। उन्होंने गिरिजी (दीदीमा) से अग्नि को स्पर्श नहीं करने को कहा। इसका अर्थ है कि वे स्वयं अपने

लिए भी भोजन नहीं पका सकती थी। अत: उन्हें जो भी भोजन उपलब्ध कराया जाए, उन्हें उसी पर निर्भर रहना पड़ेगा। यद्यपि यह छूट दी गई कि माँ के ख्याल होने पर वे केवल माँ के लिए भोजन बना सकती थीं।

गिरिजी में तनिक भी अहंकार बोध नहीं था। ढाका में एक भक्त यह देखकर बहुत आश्चर्य में पड़ गया कि एक ब्रह्मचारी ने गिरिजी के प्रति बड़ी लापरवाही की परन्तु इसके लिए गिरिजी को तनिक भी क्षोभ नही था। इस ब्रह्मचारी ने आश्रम में आए अच्छे-अच्छे सभी आमों को लोगों में बांटकर एक सड़ा सा आम गिरिजी को पकड़ा दिया। गिरिजी ने उसे थोड़ा चखा और उसे पशुओं की नाद में रख दिया। जब गिरिजी से पूछा गया कि उन्होंने सड़ा आम लेने से मना क्यों नहीं किया तो उन्होंने कहा, वह ब्रह्मचारी को पीड़ा नहीं देना चाहती थीं। इस प्रकार की कई घटनाएं हैं जिनसे उनके अत्यंत धैर्यवान और अहंकार से पूरी तरह मुक्त होने का पता चलता है।

भोलानाथजी के देहान्त के एक-दो वर्ष बाद तक आश्रम में कोई दीक्षा नहीं दी गई। बाद में श्री माँ ने सच्चे जिज्ञासुओं को दीक्षा देने के लिए गिरिजी को अधिकृत किया। श्री माँ ने कहा था कि गिरिजी में धर्म के वे दसों लक्षण जन्म से मौजूद थे जो एक सद्‌गुरु में होने चाहिए। धर्म के दस लक्षण हैं - धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, धी, विद्या, सत्य एवं अक्रोध। इतने सारे लक्षण किसी एक व्यक्ति में मिलना दुर्लभ होता है। उन दिनों माँ के अधिकतर भक्तों को गिरिजी से दीक्षा मिली थी। उनके पहले शिष्य ब्रह्मचारी हीरुदा थे।

गिरिजी लगभग पूरी रात्रि जागकर अपने उन शिष्यों की ओर से जप करती थीं जो अपनी नियमित आध्यात्मिक साधना करने में असमर्थ थे। उनके प्रति गिरिजी का यह उत्तरदायित्व एवं करुणा का भाव था। उन्होंने एक बार कहा था, "जब तक सभी की मुक्ति नहीं हो जाती, मेरे लिए मुक्ति कहां?" दूसरों के कल्याण के प्रति उनकी महान भावना थी।

आश्रम के कुछ ब्रह्मचारियों को गिरिजी से संन्यास मंत्र प्राप्त करने का सौभाग्य मिला था। उनमें स्वामी चिन्मयानन्द, स्वामी प्रकाशानन्द, स्वामी चैतन्यानन्द, स्वामी स्वरूपानन्द, स्वामी केशवानन्द तथा कुछ अन्य शामिल हैं। इनमें से सभी ने आध्यात्मिक उच्चता उपलब्ध की थी। स्वामी

प्रकाशानन्द के बारे में माँ ने एक बार कहा था कि वे अपने आध्यात्मिक गंतव्य से बस थोड़ा ही दूर रह गए हैं। स्वामी चिन्मयानन्द एवं स्वामी स्वरूपानन्द बाद में श्री श्री आनन्दमयी संघ के जनरल सेक्रेटरी बने थे। संन्यास से पहले स्वामी केशवानन्द का सम्बंध पारसी समुदाय से था। उन्होंने पैदल पवित्र गंगा नदी की परिक्रमा की थी। स्वामी चैतन्यानन्द ने लम्बे समय तक दिल्ली आश्रम में सामान्य आध्यात्मिक जीवन व्यतीत किया।

सांसारिक दृष्टि से उनकी बहुत कम शिक्षा हुई थी किन्तु उनके द्वारा रचित बांग्ला गीत प्राणस्पर्शी थे। वे बहुत कम बोलती थीं परन्तु छोटी-छोटी बातों से सुन्दर सुझाव देती थीं। आश्रम में उन्होंने किसी नवागत भक्त को पूर्वी बंगाल की ग्रामीण भाषा में कविता के छन्द में सुझाव देते हुए सुना गया जिसका हिन्दी अनुवाद निम्नानुसार किया जा सकता है -

आओगे जाओगे (पर) रहना नहीं।
खाओगे लेओगे (पर) मांगना नहीं।
देखोगे सुनोगे (पर) बोलना नहीं।
(फिर) आफत तुम्हें मिलेगी नहीं।।

माँ ने गिरिजी के बारे में कहा था कि आध्यात्मिक साम्राज्य में उपलब्ध 'जगतगुरु' के एकमात्र सिंहासन पर गिरिजी आसीन थीं जिसके लिए वह पूरी तरह से योग्य थीं। वे उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूतियों सम्पन्न थीं। उनमें बहुत व्यापक आध्यात्मिक शक्तियां थीं किन्तु उनका उपयोग या प्रदर्शन करने में उनकी कोई रुचि नहीं रही। उनके अति साधारण स्वभाव के कारण लोगों को पता ही नहीं लग पाता था कि वे इतनी ऊंचे दर्जे की आध्यात्मिक विभूति हैं। किन्तु अनुभूति सम्पन्न संतों को इसका पता लग जाता था। उनकी जीवन में ऐसी कई घटनाओं में से कुछ घटनाएं निम्नानुसार है-

गिरिजी जब अपने शिष्य स्वामी चिन्मयानन्दजी के साथ दक्षिण भारत के दौरे पर गई थीं तो वे पाण्डिचेरी भी गईं। उस समय प्रख्यात आध्यात्मिक विभूति श्री अरविन्द भी वहां थे। गिरिजी उनके दर्शन के लिए उनके आश्रम में गईं तथा दर्शनार्थियों की लम्बी पंक्ति में खड़ी हो गईं। दूर से उन्हें देखकर श्री अरविन्द ने पूछा- "वे कौन हैं?" एक सही जौहरी ही असली रत्न की पहचान कर सकता है। जब बारी आने पर गिरिजी श्री

अरविन्द के समक्ष पहुंची तो उन्होंने अति प्रसन्नता के साथ कहा- "वाह! कितना अपूर्व पुष्प हैं यह?"

वाराणसी आश्रम में रहने के दौरान माँ एक बार बहुत बीमार पड़ गईं और उन्हें अपने स्वस्थ होने का कोई ख्याल नहीं आ रहा था। माँ की चिंताजनक स्थिति को देखते हुए उस समय वाराणसी के प्रख्यात महात्मा शंकर भारतीजी से आश्रम आने के लिए अनुरोध किया गया। वे जब माँ को देखने आए तो उस समय और दिनों की तरह गिरिजी मां के पलंग के समीप बैठी हुई थीं। माँ के कक्ष से निकलने के बाद भारतीजी ने गिरिजी की ओर इंगित किया और कहा कि जब तक माता गिरिजी जीवित हैं किसी को चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

गिरिजी के संन्यास गुरु महामण्डलेश्वर स्वामी मंगलानन्द गिरिजी के शिष्य महामण्डलेश्वर गिरधर नारायण पुरीजी जो निर्वाणी अखाड़ा के महन्त थे, उन्होंने गिरिजी के एक शिष्य को कहा था कि गिरिजी को अनेक यौगिक क्रियाओं की जानकारी थी। वे आकाश भ्रमण बहुत करती थीं।

अध्याय-पंचम्

विद्वान एवं ज्ञानी गोपीनाथ कविराजजी की श्री माँ से भेंट

श्री माँ पहली बार वर्ष 1927 में काशी आई थीं। उस समय बाबा भोलानाथ तथा गुरुप्रिया दीदी एवं उनके पिता माँ के साथ थे। वे गुरुप्रिया दीदी के चाचा कुंजमोहन मुखोपाध्याय के रमापुरा मुहल्ला में स्थित मकान में रुके थे। श्री माँ की उपस्थिति में वहां निरंतर उत्सव का माहौल था। माँ प्रायः गहरी समाधि में चली जाती थीं। इसी समय महान साधक एवं भारत के महान विद्वानों में शामिल महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज जी सितंबर 1928 में माँ से मिलने आए। उस समय वे 'गवर्नमेंट कालेज ऑफ संस्कृत' के प्रिंसीपल थे जिसे अब सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के नाम से जाना जाता है। कविराजजी को तंत्र शास्त्र में भारत का उच्चतम आधिकारिक विद्वान माना जाता था।

उन्होंने पाया कि माँ शास्त्रों के सारे ज्ञान का मूर्त स्वरूप हैं। माँ जब तक काशी में रहती वे प्रायः माँ के निकट बैठ माँ की अमृतवाणी सुनते थे। वे इस बात से मोहित थे कि माँ अति कठिन दार्शनिक विषयों को कितने सरल शब्दों में समझा देती थीं। उन्होंने इस बात को अनुभव किया कि भले ही माँ की औपचारिक शिक्षा नहीं के बराबर थी फिर भी उनके सभी आध्यात्मिक प्रश्नों का वे पूर्ण उत्तर देती थीं। उनके उत्तरों की सबसे बड़ी विशेषता यह होती थी कि वे प्रश्न पूछने के पीछे की सोच भी पढ़ लेती थीं तथा उनसे मदद मांगने आए व्यक्ति की मूल आवश्यकता को भी समझ जाती थीं। माँ का स्वतःस्फूर्त उत्तर सम्बन्धित व्यक्ति की समझने की क्षमता तथा उपस्थित परिस्थिति के अनुरूप ही होते थे।

कविराजजी के अनुसार माँ की पहचान सामान्य मानवीय समझ से परे थी। माँ यद्यपि स्वयं सभी भावों से परे थीं तथापि उनमें सर्वोच्च अंदरूनी भाव उपस्थित था। महाभावरूपिणी माँ अनन्त प्रकार से अखण्ड भावों की स्रोत होते हुए भी समस्त भावों के अतीत थीं। इस प्रकार की 'तुरियातीत' स्थिति को कौन समझ सकता है? जो उन्हें जैसा देखता है या समझता है, उसके निकट उसी भाव में प्रकट होती हैं। माँ को समझने के लिए माँ मैं आत्मसमर्पण कर उनमे एकाग्रता लाभ करना आवश्यक है। माँ

से भिन्न रहकर उन्हें समझ पाना असंभव है। कविराजजी अपने पूरे जीवनकाल में माँ के निष्ठापूर्ण भक्त बनकर रहे।

गुरुप्रिया दीदी को लिखे एक पत्र में कविराजजी ने गुणातीत का सतसंग लाभ उठाना एवं सत्वगुण सम्पन्न संत के संग करने में क्या पृथकता है, इस विषय में प्रकाश करते हुए लिखा था कि जिनमे सात्विक गुण मौजूद हैं उनके समीप रहने से उनके सत्वगुणों के प्रभाव से लोगों के कुसंस्कार सामयिक रूप से दब जाते हैं एवं ऐसा लगता है कि अपने आध्यात्मिक पथ पर प्रगति हो रही है। जब कि, ऐसी स्थिति में मनुष्य की विपरीत प्रवृत्तियां दब जाती हैं किन्तु स्थायी तौर पर समाप्त नहीं होती। बाद में किसी भी समय अनुकूल परिस्थितियां मिलने पर वे फिर से प्रकट हो जाती हैं। परन्तु आनन्दमयी माँ जैसे गुणातीत के सम्पर्क में आने पर ऐसी विपरीत प्रवृत्तियां स्थायी रूप से मिट जाती हैं। हालांकि ऐसे मामलों में कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि आध्यात्मिक उन्नति होने के बजाय कुछ समय के लिए दुर्गुण उग्र होने के कारण अवनति ही दिखाई देती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि माँ जैसे गुणातीत के साथ जुड़ने से दबी हुई कुप्रवृत्तियां उग्र होकर उभरकर सामने आने लगती है। वे स्थायी रूप से विनाश होने के लिए ही ऐसा उग्ररूप में प्रकट होती हैं और इनके विनाश के साथ ही सद्‌गुणों के आविर्भाव एवं उनमे स्थायित्व आ जाता है।

कविराजजी के पत्र के समर्थन में माँ ने कहा था कि जब वे बच्ची थीं तो बारिश के बाद अपने घर के आंगन में खेलने आ जाती थीं। वे अपने छोटे-छोटे पांवों से आनन्द के साथ आंगन में जमा हुए वर्षा के जल से छप-छप खेलती थीं। वर्षा के मौसम में प्रायः देखने को मिलता है कि गीली जमीन होने के कारण कीट-केंचुआ आदि निकलकर इधर-उधर फिरने लगते हैं। इस प्रकार का कोई कीट-केंचुआ माँ के पांवों के नीचे आकर दब न जाए, इस संभावना को टालने के लिए दीदीमा पहले ही पूरे आंगन में चूने के पानी का छिड़काव कर देती थीं जिस कारण सारे कीट-केंचुए भूमि से बाहर निकल आते थे। इसके बाद वे पूरे आंगन को अच्छी तरह बुहार देती थीं ताकि कीट-केंचुओं के निकलने की संभावना पूरी तरह से समाप्त हो जाए। इस घटना का उदाहरण देते हुए माँ ने कहा था कि उनके पास जो भी आता है, उन्हे भी चूने के पानी से छिड़काव जैसी हालत प्रतीत होने

लगती है। अपेक्षाकृत कम क्षमताओं वाले महात्माओं के पास जाने से विपरीत प्रवृत्तियां कुछ समय के लिए दब सकती हैं किन्तु माँ के समीप आने से वे पूरी तरह बाहर आ जाती हैं। माँ का कहना था, "यह तो अच्छी बात है। सांपों को क्या बिल में पालकर रखना ठीक है? कब वे फन उठा लेंगे कौन जाने? सांपों को निकालकर सब सफाई कर लेने से ही तो भला होगा।"

कविराजजी ने अपनी पुस्तक 'साधु दर्शन एवं सत्संग' में माँ की समाधि अवस्था के बारे में लिखा है। उन्होंने प्रख्यात संत एवं वक्ता स्वामी दयानन्दजी द्वारा इस बारे में माँ से पूछे गये प्रश्नों का उत्तर विस्तार से दिया है। स्वामीजी 'भारत धर्म' के महामण्डलेश्वर थे और उनकी यह दृढ़ भावना थी कि भगवती स्वयं माँ आनन्दमयी के रूप में विश्व में अवतरित हुई हैं। स्वामी दयानन्दजी माँ से मिलने आए थे और उन्होंने कविराजजी की उपस्थिति में व्यक्तिगत बातचीत में माँ से कई प्रश्न पूछे थे।

स्वामी दयानन्दजी ने माँ से पूछा कि वास्तव में वे कौन हैं? माँ का उत्तर था-"तुम मुझे जो समझते हो, मैं बस वहीं हूं। न थोड़ा भी कम, न ज्यादा।" स्वामीजी ने उनसे पुनः पूछा कि माँ जब समाधि की अवस्था में रहती हैं तो वह 'सविकल्प समाधि' होती है या 'निर्विकल्प समाधि' तथा उस स्थिति में मन रहता है या नहीं? माँ ने कहा-"बाबा, मैं कैसे बता सकती हूं? समाधि की स्थिति में होना, यह तुमने देखा है तथा यह तुम्हारा ही कथन है। अतः यह तुम्हारे ही विचार का विषय है कि क्या यह समाधि हैं? तथा इसे किस श्रेणी में रखा जा सकता है? मैं तो बस इतना ही बता सकती हूं कि शरीर और मन में दिखाई देने वाले सभी परिवर्तनों के मध्य मैं सदैव एक ही स्थिति में रहती हूं। समाधि में जाना या लौटना - यह तुम्हारा कथन है। इस शरीर के लिए दोनों ही समान है। अब तुम ही बताओ कि इस स्थिति को क्या कहोगे - क्या यह समाधि हैं?"

महात्माओं के अनुसार माँ सदैव "सहज समाधि" की अवस्था में रहती थीं अर्थात वह हर समय स्वाभाविक ढंग से समाधि की अवस्था में रहती थीं। वार्तालाप, चलने या कामकाज करने जैसे सांसारिक क्रियाकलापों में संलग्न रहने के दौरान भी वे उसी एक अवस्था में रहती थीं। इस प्रकार की दुर्लभ आध्यात्मिक स्थिति को समझना हमारी क्षमता से परे है।

समाधि के बारे में माँ ने कहा था, "सभी प्रकार की मनोदशाओं

एवं कर्म के पथ की समाप्ति ही समाधि है।'' आत्मा एवं परमात्मा की अवधारणा के बारे में उनका कहना था, ''देखो, यह एक वृक्ष और उसकी छाया की तरह है। यदि तुम ध्यानपूर्वक वृक्ष की तरफ देखोगे तो छाया नहीं देख पाओगे। यदि तुम्हारा लक्ष्य पूर्ण है तो यह पाओगे कि वहां मात्र एक आत्मा ही है; छाया वृक्ष की है और कुछ भी नहीं।''

कविराजजी ने सन् 1935 में माँ से अपने गुरु परमहंस विशुद्धानन्दजी से मिलने का अनुरोध किया जो उस समय के एक विख्यात योगी थे। वे उन्हें वाराणसी के मलदहिया क्षेत्र में स्थित विशुद्धानन्दजी के आश्रम में ले गए। उस समय उनकी आयु काफी हो चुकी थी और वे 'गंध बाबा' के नाम से विख्यात थे। वे सौर ऊर्जा का उपयोग कर एक वस्तु को दूसरी वस्तु में परिवर्तित करने का रहस्य जानते थे। वे माँ की पवित्र उपस्थिति के कारण बहुत आनन्दित हुए। उन्होंने एकान्त में माँ के साथ आध्यात्मिक विषयों पर लम्बी चर्चा की। श्री माँ के अनुरोध पर उन्होंने एक पुष्प को सूर्य की किरणों से स्फटिक में परिवर्तित कर दिखाया और एक रूमाल से गुलाब की सुंगध पैदा कर दी। जब माँ ने उन्हें यह बताया कि वे यह जानती हैं कि इन सब को कैसे किया जाता है तो उन्होंने माँ की ओर विनम्र भावों से देखा और कहा, ''बेटी, तेरी शक्ति से ही तो यह सब कर लेता हूं।'' माँ ने वहां उपस्थित भक्तों से कहा, ''बाबा ने इन चीजों से तुम्हें भुला रखा है। बाबा से असल वस्तु न लेने का गलती न करना।'' माँ से भेंट होने के कुछ ही दिनों बाद स्वामी विशुद्धानन्दजी का वाराणसी में देहांत हो गया।

प्रख्यात दार्शनिक डाक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन कई बार कविराजजी के निवास पर आकर उनसे मिले। कविराजजी को भारत के राष्ट्रपति से 'पद्म विभूषण' सम्मान मिला था। वे साधना के लिए अपने जीवन के अंतिम एक दशक तक वाराणसी में माँ के आश्रम में रहे थे एवं उन्होंने उच्च आध्यात्मिक स्तर को प्राप्त किया। वर्ष 1977 में वहीं उनका देहान्त हुआ। माँ ने कहा था कि वर्तमान युग में ऐसा विद्वान व्यक्ति देखने को नहीं मिलता।

माँ के सम्पर्क में आए महात्मागण

अनुभूति सम्पन्न शीर्ष महात्मागणों ने माँ की किशोरावस्था से ही उन्हें आध्यात्मिक जगत के शीर्ष स्थान पर आसीन अनुभव किया। भोला

गिरि आश्रम के दिवंगत महामण्डलेश्वर स्वामी देवानन्द सरस्वती जी ने लिखा है कि श्री माँ आध्यात्म जगत की एक विस्मयकर व्यतिक्रम थीं। माँ जन्म से ही पूर्णतया अनुभूति सम्पन्न थीं और इसलिए उनका समस्त जीवन ही विस्मयकर एवं समझ से परे है।

इलाहाबाद में झूसी के प्रख्यात संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी ने पहली बार माँ का परिचय साधु समुदाय से करवाया। प्रारंभ में पुरुष साधु उनसे दूरी बनाये रखते थे क्योंकि वे श्वेत परिधान पहने एक महिला संत को स्वीकार नहीं कर पाते थे। बहरहाल, धीरे-धीरे यह अड़चन भी समाप्त हो गई और वे उनके आध्यात्मिक एवं आनन्दमय व्यक्तित्व से आकर्षित हो गए। शनैः शनैः जब अन्य विख्यात उन्नत महात्मागण उनके सम्पर्क में आए तथा आध्यात्मिक साम्राज्य में उनकी अकल्पनीय उच्च स्थिति को अनुभव किया तो साधु समाज में भी उन्हें विश्व जननी के रूप में मान्यता मिली। उनमें से कई माँ के समक्ष अपनी समस्याएं रखते थे और अपनी साधना के पथ पर आगे बढ़ने के लिए उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करते थे।

जिस किसी ने भी अपने पूर्व या वर्तमान जन्म में थोड़ी-सी तपस्या की हो, माँ ने प्रायः उन पर अपनी कृपा वर्षा की या उन्हें अपने दर्शन दिए। कई बार उन्होंने ऐसे लोगों के पास सूक्ष्म रूप में जाकर दर्शन दिए अथवा वे स्वयं चलकर उनके पास पहुंचे। कई अनुभूति सम्पन्न संतों ने अपने इष्ट या गुरु का संदेश प्राप्त करने के बाद माँ से सम्पर्क किया। माँ के सम्पर्क में आने वाले कुछ प्रख्यात महात्माओं का विवरण निम्नानुसार है : -

शंकर भारती जी वाराणसी के एक प्रख्यात सिद्ध संत थे जो पिछली शताब्दी में चौथे दशक के प्रारम्भिक वर्षों में साधु समुदाय में एक उन्नत, त्यागी विद्वान पुरुष के रूप में प्रसिद्ध थे। वे वाराणसी के विख्यात अन्नपूर्णा मंदिर के समीप रहते थे। वे केवल उबली हुए शाक-सब्जी ही खाते थे जो सब्जी मण्डी में दुकानदारों के चले जाने के बाद पड़ी हुई या छांटी गई सब्जी में से मिल जाती थी।

एक बार वे अत्यधिक बीमार पड़ गए। उस समय उनका परिचारक भी उनके समीप नहीं था। इसलिए न तो उनकी देखभाल हो पा रही थी और न ही उन्हें भोजन मिल पा रहा था। उपवास हालत में निस्सहाय भारतीजी माँ अन्नापूर्णा मंदिर गए और उन्हीं से प्रश्न किया कि जो देवी

सभी के लिए अन्न उपलब्ध कराती हैं उनके क्षेत्र के इतने समीप रहनेवाला कोई व्यक्ति बिना भोजन के कैसे रह सकता है? यह कहकर वे वापस चले आये। श्री माँ उस समय अपने वाराणसी आश्रम में थीं जो भारतीजी के स्थान से काफी दूर था। माँ में अचानक प्रतिक्रिया दिखाई दी और उन्होंने एक ब्रह्मचारी को बुलवाकर विभिन्न भोजन सामग्री भारतीजी के पास स्वतः भिजवा दी। इससे भारतीजी बड़े आश्चर्य में पड़ गए।

एक बार प्रार्थना के समय भारतीजी को अपनी इष्ट देवी त्रिपुरा सुंदरी के दर्शन हुए। देवी ने उनसे माँ आनन्दमयी के समीप जाकर मिलने का निर्देश दिया और कहा कि उनके पवित्र शरीर में वे सदैव निवास करती हैं। इसके तुरंत बाद भारतीजी पैदल चलकर माँ के पास पहुंचे तथा उन्हें एक बड़ा सा पुष्पहार अर्पित कर साष्टांग प्रणाम किया। जब यह बात फैली तो साधु समाज के लिए यह एक समाचार बन गई क्योंकि भारतीजी कहीं जाकर किसी से नहीं मिलते थे तथा किसी महिला से तो वे कभी नही मिलते थे। परिणामस्वरूप अन्य साधु भी आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए माँ के पास आने लगे। भारतीजी के अनुसार, ''माँ मूर्तिमान चिदानन्द स्वरूप हैं। उनके दैवी शरीर की उपस्थिति विश्व पर एक कृपा है।''

सेवादासी माताजी पश्चिम बंगाल के नवद्वीप की प्रख्यात महात्मा थीं जो 'गोविन्दजी' की भक्त थीं। वे सदा राधा भाव में रहती थीं और गोपी वेश धारण करती थीं। उनका गोविन्दजी से सीधा वार्तालाप होता था। उन्होंने आश्चर्यजनक ढंग से दो दशक से अधिक समय से कुछ भी नहीं खाया और पानी की एक बूंद भी ग्रहण नहीं की थी। फलतः उनके शरीर को मल-मूत्र के लिए जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। गोविन्दजी की अनुमति के बिना वे आश्रम परिसर के बाहर कभी नहीं जाती थीं। माँ जब सन् 1937 में नवद्वीप गईं तो एक दिन सेवादासी माताजी उनके पास आईं। उन्होंने बताया कि उनके इष्ट गोविन्दजी ने उन्हें माँ के पास जाने का निर्देश दिया है और कहा है कि उनके पवित्र शरीर में वे सदा निवास करते हैं। वे माँ को अपने आश्रम में ले गईं तथा उनसे कहा, ''आप मनुष्य रूप में भगवान कृष्ण ही हो।'' उनके अनुसार माँ के भीतर बचपन से ही गोविन्दजी विराजमान हैं।

हरिबाबा एक उच्च कोटि के संत थे और उनका सम्बन्ध पंजाब के होशियारपुर से था। उन्होंने देहरादून के सहस्रधारा में पहली बार माँ का

तब दर्शन किया जब इलाहाबाद के प्रसिद्ध संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी ने वहां भागवत सप्ताह का आयोजन किया था तथा उसमें माँ को भी आमंत्रित किया था। हरिबाबा का सम्बन्ध सिख समुदाय से था किन्तु वह चैतन्य महाप्रभु के बड़े भक्त थे। हरिबाबा के गुरु भी एक अनुभूति सम्पन्न संत थे और उन्होंने बताया था कि माँ स्वयम् ही निष्ठावान साधकों को मोक्ष प्रदान करती हैं। इसके बाद अपने गुरु के निर्देश के अनुसार हरिबाबा माँ के सम्पर्क में आये। उसके बाद से हरिबाबा ने माँ के प्रति असीम भक्ति और श्रद्धा प्रदर्शित की। माँ भी उन्हें बहुत स्नेह और सम्मान की दृष्टि से देखती थीं तथा उन्होंने कहा था कि वर्तमान युग में ऐसा महात्मा दुर्लभ है।

वर्ष 1955 में हरिबाबा गंभीर रूप से बीमार पड़ गए तथा दिल्ली के एक नर्सिंग होम में उनका ऑपरेशन किया गया। एक दिन जब उनकी शारीरिक स्थिति बहुत चिंताजनक हो गई तो माँ उन्हें देखने के लिए आईं। हरिबाबा के कमरे के प्रवेश द्वार पर उनके दिवंगत गुरुदेव सूक्ष्म रूप में आए तथा माँ से अपने शिष्य की प्राण रक्षा की विनय की। माँ की कृपा से उस बार हरिबाबा पर यह संकट टल गया। इसके बाद से वे अधिकतर समय माँ के पास ही रहे। माँ प्राय: अपना कार्यक्रम इस प्रकार बनाती थी जिससे उनको सुभीता रहे।

जनवरी 1970 में माँ हरिबाबा को देखने के लिए दिल्ली गईं जहां वे गंभीर रूप से बीमार थे। माँ जब वाराणसी लौट रही थीं तो हरिबाबा किसी शिशु की तरह माँ के ही साथ जाने के लिए बुरी तरह जिद करने लगे तथा उन्होंने अपने शिष्यों की सलाह को भी पूरी तरह नकार दिया। उनकी खराब तबीयत को देखते हुए उनके शिष्य नहीं चाहते थे कि वे कहीं जाएं। बहरहाल, माँ की सलाह पर दिल्ली के प्रख्यात हृदयरोग विशेषज्ञ एवं माँ के परम भक्त डॉक्टर दुर्गादास सेनगुप्ता रेलयात्रा में हरिबाबा के साथ गए। वाराणसी आने के कुछ ही दिनों बाद आश्रम में हरिबाबा का देहांत हो गया और उस समय उनके सिराहने पर माँ एवं गिरिजी उपस्थित थीं। इस तरह एक सिद्ध महात्मा और माँ के करीबी भक्त का देहान्त उसी तरह हुआ, जैसा कि वे चाहते थे।

उड़िया बाबा वृंदावन के एक अलौकिक शक्तिसम्पन्न महान संत थे जिनका उत्तर भारत में काफी प्रचार था। हरिबाबा वृंदावन में प्राय: उड़िया

बाबा के आश्रम में ही रुकते थे। वयोवृद्ध उड़िया बाबा भी माँ के प्रति विशेष स्नेह एवं सम्मान का भाव रखते थे।

एक बार बड़े-बड़े महात्माओं की उपस्थिति में उड़िया बाबा ने माँ का हाथ पकड़कर तथा भावाविष्ट होकर रुंधे हुए स्वरों में कहा था, "माँ, मैं आपको पहचान नहीं पाया।" माँ उनके आश्रम में होने वाले सत्संग में भाग लेने और रासलीला देखने के लिए प्राय: वहां जाया करती थीं। वृंदावन में जब उड़िया बाबा बीमार थे तो वे माँ को जाने नहीं दे रहे थे और उनका इस बात पर जोर था कि माँ उनके सिराहने के पास रहें। दोनों ने पिता एवं छोटी बच्ची की तरह कई दिन बिताए। माँ ने गुरुप्रिया दीदी को संकेत दिया था कि उड़िया बाबा का सहसा भावविह्वल होना, उनकी जीवनलीला पूर्ण होने का संकेत हो सकता है। इसके कुछ समय बाद ही आश्रम में हुए एक दुखद हादसे में उड़िया बाबा का देहांत हो गया। माँ बाबाजी के भण्डारे तथा महाप्रयाण से जुड़े अन्य क्रियाकर्मों में पूरे समय उपस्थित रही थीं।

त्रिवेणी पुरीजी पंजाब के विख्यात एवं अनुभूति सम्पन्न संत थे जिन्हें आमतौर पर "खन्ना बाबा" के रूप में जाना जाता था। वह परम वेदान्ती थे। उनसे एक भक्त ने प्रश्न किया था कि क्या माँ अवतार हैं, इस पर उन्होंने कहा, "अवतार तो छोटी चीज है। माँ वह हैं जहां से अवतार अवतरित होते हैं।" उन्होंने यह भी कहा था- "जैसे कि नदियों के समुद्र मे मिलने से उसके जलस्तर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, उसी प्रकार सभी धार्मिक भाव माँ की ओर ही जाते हैं तथा माँ सभी परिस्थितियों में समान रहती हैं। जिस प्रकार सागर की कोई सीमा नहीं होती, उसी तरह माँ को भी सीमाओं में आबद्ध नहीं किया जा सकता।"

स्वामी शिवानन्दजी महाराज भी एक विख्यात अनुभूति सम्पन्न संत थे जिन्होंने ऋषिकेश के 'दिव्य जीवन संघ' की स्थापना की थी। माँ इस वयोवृद्ध संत को देखने उनके आश्रम गईं थीं। बाद में स्वामी शिवानन्द जी ने माँ के बारे में कहा था कि वे "भारत का सबसे अधिक पूर्ण प्रस्फुटित पुष्प हैं।" उनके विश्वस्त शिष्य एवं अनुभूति सम्पन्न संत स्वामी चिदानन्दजी तथा आश्रम के अन्य लोग प्राय: माँ के दर्शन करने और आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए आते रहते थे।

परमहंस योगानन्द भी एक प्रख्यात सिद्ध संत थे जिन्होंने भारत में

'वर्ल्ड योगदा सतसंग फाउंडेशन' और अमेरिका में 'सेल्फ रियलाइजेशन फेलोशिप' की स्थापना की थी। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ऑटोबायोग्राफी ऑफ ए योगी' (हिन्दी में 'योगी कथामृत') में लिखा है कि उन्हें भारत में कई ऐसे संत मिले जिन्होंने भगवान के दर्शन किए किन्तु उन्हें पहले कभी श्री माँ जैसी आध्यात्मिक रूप से उच्चतम संत से मिलने का अवसर नहीं मिला। उन्होंने एक बार माँ से अनुरोध किया कि वे अपने बारे में कुछ बोलें। माँ ने विनम्रता से कहा, "बाबा कहने को क्या है? मेरी चेतना कभी इस अस्थायी देह से सम्बद्ध नहीं हुई। इस पृथ्वी पर आने से पहले मैं वही थी। एक छोटी बच्ची की उम्र में भी मैं वही थी। मैं बढ़कर महिला हो गई किन्तु मैं वही रही। जिस परिवार में मैं जन्मी थी उसने इस शरीर के विवाह के लिए सारे प्रबंध किए। मैं फिर भी वही थी। आपके सामने खड़ी मैं वही हूं। बाद में भी मेरे आसपास भले ही सृष्टि का खेल चलता रहे, मैं वही रहूंगी।" इस प्रकार माँ ने स्वामीजी को अपने दिव्य स्वरूप के बारे में समझाया। परमहंस योगानन्द जी से माँ के बारे में सुनकर उनकी प्रधान शिष्या सिस्टर दया एवं उनके साथ कुछ भक्त कई बार माँ का दर्शन करने अमेरिका से आये।

मोहनानन्द ब्रह्मचारीजी भी ईश्वर दर्शन का लाभ प्राप्त कर चुके एक संत थे। वे देवघर के प्रख्यात संत बालानन्द ब्रह्मचारी के योग्य शिष्य थे। उनकी भेंट माँ से अपने गुरु के आश्रम में हुई। उस समय वे गहरी साधना में लीन थे। एक बार देर रात जब वे भोजन ग्रहण करने जा रहे थे तभी उनके मन में एक विचित्र इच्छा उठी। वह चाहते थे कि भोजन में से माँ को कुछ खिलाने के बाद ही वे स्वयं भोजन करें किन्तु इतनी रात में वह माँ को परेशान करने से संकोच कर रहे थे। उसी क्षण किसी ने उनका दरवाजा खटखटाया। दरवाजा खोलते ही उनकी खुशी का ठिकाना ही नहीं रहा क्योंकि सामने माँ अकेले खड़ी थीं। उन्होंने माँ को कुछ फल खिलाए और इसके बाद माँ लौट गईं। वर्ष 1948 में बीमार मोहनानन्दजी उस समय आनन्द से भर उठे जब उन्हें देखने के लिए माँ स्वयं उनके सिराहने के पास आ खड़ी हुईं। उन्होंने बताया कि रुग्णावस्था में वे व्याकुल होकर माँ का स्मरण कर रहे थे। माँ का शरीर जाने के बाद भी वे माँ के आश्रम में बराबर आते रहे।

स्वामी शरणानन्दजी भी ईश्वर दर्शन लाभ कर चुके महात्मा थे जिन्होंने वृंदावन में 'मानव सेवा संघ' की स्थापना की थी। वे माँ की उपस्थिति में माँ के आश्रमों में आयोजित विशेष कार्यक्रमों में भाग लिया करते थे। बताया जाता है कि स्वामीजी के प्रारंभिक जीवन में भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन होने के बाद उनकी दृष्टि जीवनभर के लिए चली गई और इस प्रकार जागतिक दृश्यों को देखना बन्द हो गया। उन्होंने कहा था कि माँ स्वयं ही 'पुरुषोत्तम' हैं। मंच पर आसीन महात्माओं के बीच जब माँ उन्हें मीठे आवाज से 'बाबा' कहकर पुकारते थीं तो वे छोटे शिशु जैसे आनन्द से खिल जाते थे और जोर से 'माँ' कहकर आभार प्रकट करते थे। उनका वृंदावन का आश्रम माँ के आश्रम के बगल में है जिसका उद्घाटन वर्ष 1953 में श्री माँ की पवित्र उपस्थिति में हुआ था।

सीताराम बाबा ओंकारनाथजी एक अनुभूति सम्पन्न उच्च कोटि के महात्मा थे जिनका सम्बंध बंगाल से था। उन्होंने करीब सौ वर्ष की आयु पाई थी और माँ के प्रति उनका विशेष स्नेह था। वे कई बार माँ के दर्शन के लिए आए थे। उन्होंने माँ को एक पत्र लिखा था जिसमें माँ के स्वरूप को संक्षेप में वर्णित किया गया था। उन्होंने लिखा था- "माँ आप अपनी लीला स्वयं सबमें प्रकाशित होकर कर रही हैं। सृष्टि से पहले आप ही एकमात्र थीं। आपके भीतर कई होने की इच्छा जगी। आपने जन्म लिया। आपने अपने को 'अहंकार-पंचतन्मात्रा-पंचभूत' में परिवर्तित किया और आप अनंत ब्रह्माण्ड बन गईं। आपको एवं आपकी लीला को कोटि-कोटि प्रणाम।" उन्होंने माँ के बारे में कहा था, "ये स्वयं माँ भवतारिणी हैं, दक्षिणेश्वर की भैरवी हैं जिसकी ठाकुर श्री रामकृष्ण परमहंसदेव पूजा करते थे।"

स्वामी गिरिधर नारायण पुरीजी हरिद्वार के निर्वाणी अखाड़े के प्रख्यात महंत थे और माँ से काफी जुड़े हुए थे। एक दिन उन्होंने देवी दुर्गा स्वरूप शाकम्भरी देवी के मंदिर में पूजा के लिए विस्तृत प्रबंध किए। पूजा के एक रात पहले उन्हें स्वप्न में शाकम्भरी देवी का दर्शन हुआ एवं उन्हें ज्ञान हुआ कि माँ में ही वह देवी प्रकाशित हैं। इसलिए अगली सुबह वह सीधे आश्रम पहुंच गए और उन्होंने उन सारी सामग्रियों से माँ की विधिवत् पूजा की जिन्हें वे शाकम्भरी देवी मन्दिर में अर्पित करने जा रहे थे। गिरिजी के महाप्रयाण के पश्चात माँ ने उन्हें इस बात के लिए अधिकृत किया था

कि यदि आश्रम का कोई ब्रह्मचारी संन्यास ग्रहण करना चाहता है तो वे उसे संन्यास मंत्र प्रदान कर सकते हैं।

गोपाल ठाकुर इलाहाबाद में उच्चस्तर के एक गृहस्थ संत थे। वह अलौकिक शक्ति सम्पन्न महात्मा सत्यदेव ठाकुर के शिष्य थे। वर्ष 1944 में दुर्गापूजा के समय माँ साधक गोपाल ठाकुर के आश्रम, स्वत: गई थीं। माँ की अप्रत्याशित आगमन से वह आनन्द मग्न हो गए। उन्होंने कहा कि माँ, मेरा कितना सौभाग्य है कि आप आई हैं, अपनी स्वयं की हो रही पूजा को देखने के लिए। उनके लिए माँ स्वयं ही माँदुर्गा एवं जीवन्त गीता थीं। उनके यहां उनकी निर्देशन में अत्यन्त भाव के साथ माँदुर्गा की समवेत पूजा होती थी। पूजा के दौरान उन्होंने माँ से पूछ ही लिया कि क्या इस मृण्मयी मूर्ति में सचमुच माँदुर्गा आती हैं? माँ तुरन्त उठ खड़ी हुई एवं माँदुर्गा के मूर्ति को सिर से पैर तक स्पर्श करने के बाद गोपाल ठाकुर से देवी के वक्षस्थल पर अपना कान रखने को कहा। गोपाल ठाकुर को देवी का हृदय स्पन्दन स्पष्ट सुनाई दिया। वह अत्यन्त भावमग्न होकर रोने लगे एवं ये कहकर क्षमा याचना करने लगे कि उन्होंने माँदुर्गा की दिव्य उपस्थिति पर सन्देह किया था।

धीरे-धीरे कई अन्य महात्मा माँ के सम्पर्क में आए। उनमें से कई शंकराचार्य, अखाड़ों के महंत, महामण्डलेश्वर तथा विभिन्न धर्मों एवं धार्मिक संगठनों के उच्चतम पद पर आसीन ऐसे साधु थे जिनके अपने शिष्यों की खासी बड़ी संख्या थी। माँ सदैव ऐसे महापुरुषों का अति विनम्रता और सम्मान के साथ स्वागत करती थीं। वे भी समय निकालकर माँ के पास आना पसंद करते थे ताकि उनका मातृवत स्नेह मिल सके। वे अपनी आध्यात्मिक यात्रा के लिए माँ से मार्गदर्शन और आशीर्वाद भी प्राप्त करते थे। इनमें से अधिकतर माँ की उपस्थिति में आश्रम के विशेष उत्सवों में सम्मिलित होते थे।

श्री अरविन्द और रमण महर्षि जैसे प्रख्यात अनुभूति सम्पन्न आध्यात्मिक विभूतियों से माँ की कभी मुलाकात नहीं हुई जब कि वे माँ के जीवनकाल में सशरीर उपस्थित थे। सम्भवत: माँ से उनका सूक्ष्मरूप से गहरा सम्बन्ध था। वे आध्यात्मिक जगत में दुर्लभ शीर्ष स्थान में माँ की स्थिति मानते थे। इन दोनों आध्यात्मिक विभूतियों के शरीर त्यागने के

उपरांत दक्षिण भारत भ्रमण के दौरान माँ का उनके आश्रमों में जाना हो सका था तथा उनके शिष्यों ने माँ की बहुत सम्मान के साथ आवभगत की। श्री अरविन्द के पांडिचेरी आश्रम में वयोवृद्ध फ्रांसीसी 'मदर' से माँ की स्मरणीय मुलाकात हुई। मदर एक अनुभूति सम्पन्न संत थीं। माँ अरुणाचल एवं त्रिचूर भी गईं थीं जो रमण महर्षि का जन्मस्थल है। वहां माँ के दर्शन करने के लिए लगभग दस हजार लोगों की भीड़ प्रतीक्षा कर रही थी।

माँ का महान संतों के साथ सूक्ष्म रूप से सम्बन्ध था। इनमें से ऐसे महात्मा भी थे जिन्होंने माँ के इस संसार में भौतिक रूप से आने के पहले ही अपना शरीर त्याग दिया था। अप्रकाशित रहने के कारण ऐसी अधिकतर मुलाकातें अज्ञात ही बनी रह गईं। कुछ के बारे में माँ ने स्वयं खुलासा किया था तभी हम सब जान पाये। माँ ने संकेत किया था कि दक्षिणेश्वर के महान संत एवं माँकाली उपासक ठाकुर रामकृष्ण परमहंस देव से उनका सूक्ष्म स्तर पर गहरा सम्बन्ध रहा।

ढाका आश्रम में कार्यरत माँ अन्नपूर्णा के ऋषितुल्य अनुभूत पुजारी अतुल ब्रह्मचारिजी से सुना है कि एकबार ठाकुर रामकृष्ण परमहंसदेव भावावस्था में बहुत ही आनन्दित होकर हंसने लगे। उनके सामान्य अवस्था में लौटने के बाद जब उनसे इसका कारण पूछा गया तो उन्होंने बताया, "अरे, माँ कह रही थीं कि अब की बार वह स्वयं आ रही हैं।" भावावस्था में भवतारिणी कालीमाँ के लिए उनके मुख से 'आनन्दमयी' कहते भी सुना गया था। ठाकुर परमहंस देव का शरीरांत होने के करीब ग्यारह वर्ष बाद माँ इस संसार में स्थूल रूप में आईं थीं। माँ जब सन् 1938 में दक्षिणेश्वर गईं और वहां उन्हें रामकृष्ण परमहंसदेव के कक्ष में ले जाया गया तो उन्होंने कहा कि कमरे में सामान आदि ठीक उसी प्रकार रखा गया हैं जैसे कि माँ ने ठाकुर के जीवनकाल में उन्हें उस कमरा में निवास करते समय देखा था।

देहरादून के किशनपुर आश्रम में रहने के दौरान एक दिन बहुत सबेरे माँ ने एक सवारी मंगवाई और वे समीप के रामकृष्ण मिशन आश्रम पहुंची। वे सीधे ठाकुर रामकृष्ण के छोटे से मन्दिर के भीतर चली गईं तथा ठाकुर के चित्र के आगे खड़े होकर उन्होंने कहा- "बाबा, तुम्हारी इच्छा अनुसार यह छोटी बच्ची आ गई है।" बाद में यह ज्ञात हुआ कि इससे पूर्व रात्रि में ठाकुर स्वयं माँ के समक्ष प्रकट हुए थे तथा अगले दिन उनके स्थान

पर आने का विशेष अनुरोध किया था। अगले दिन ही ठाकुर के जन्मदिन का पावन अवसर भी था।

माँ का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए बाद में रामकृष्ण मिशन के कई संन्यासी उनके पास आए। रामकृष्ण मिशन के एक बहुत वरिष्ठ संन्यासी तथा श्री श्री शारदा माँ (रामकृष्ण परमहंस देव की धर्मपत्नी) के शिष्य मुक्ति बाबा (स्वामी निगुर्णानन्द) वर्ष 1940 में माँ के पास स्थायी रूप से आ गए और अपने निधन तक वे माँ के वाराणसी आश्रम में ही अधिकतर समय रहे। उन्होंने कहा था कि वे माँ के समीप रहना इसलिए पसंद करते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि माँ के करीब रहने से वे शारदा माँ के समीप हैं। शारदा माँ के एक अन्य शिष्य स्वामी ज्ञानानन्द (ज्ञान महाराज) भी कई बार माँ के पास आए थे। वर्ष 1930 में माँ के नवद्वीप जाने पर ज्ञान महाराज ने वयोवृद्ध एवं विख्यात संत गौरीमा से श्री माँ की मुलाकात की व्यवस्था अपनी ओर से करवाई थी। गौरीमा ठाकुर रामकृष्ण परमहंस देव की शिष्या थीं। माँ से मिलकर गौरीमा बहुत ही प्रफुल्लित हुईं। शारदा माँ की एक अन्य शिष्या तथा कुमाऊं क्षेत्र की निवासी रूमा देवी माँ से इतना अधिक आकर्षित हो गईं कि वे कैलाश मानसरोवर से माँ के लौटते समय उनके साथ हो लीं और अपनी साधना में प्रगति के लिए माँ के साथ कुछ वर्षों तक रहीं।

रामकृष्ण मिशन के प्रख्यात वेदांत प्रचारक स्वामी रंगनाथानन्दजी वर्ष 1977 में माँ के देहरादून में जन्मोत्सव के अवसर पर उनका दर्शन करने आए थे। बाद में वे रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष बने। एक अन्य महत्वपूर्ण बात भी उल्लेखनीय है कि श्री श्री आनन्दमयी संघ के सृजन के बाद इसके प्रथम महासचिव लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर आशुतोष भट्टाचार्य हुए जो रामकृष्ण परमहंस देव के शिष्य स्वामी शिवानन्दजी के शिष्य थे और उन्होंने इस पद का कार्यकाल लगातार पन्द्रह वर्ष तक सम्भाला।

माँ मार्च 1981 में किसी पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के बिना रामकृष्ण मिशन के मुख्यालय बेलुड़ मठ में ठाकुर रामकृष्ण की 145वीं जयंती के संदर्भ में गई थीं। मिशन के अध्यक्ष स्वामी वीरेश्वरानन्दजी से माँ की अलग से विशेष बातचीत हुई। यह बातचीत ठाकुर रामकृष्ण के समस्त शिष्यों द्वारा

सूक्ष्म रूप में समवेत आकर माँ से की गई विशेष प्रार्थना के बारे में थी। इस विषय में विस्तृत ब्यौरा लिखित रूप में मिशन अध्यक्ष को सौंपा गया। बहरहाल, इन मुलाकातों से सम्बन्धित ब्यौरा अन्य लोगों के लिए अज्ञात ही बना रहा।

देवता, सिद्ध, और देह त्याग कर चुके साधु व अन्य आत्माएं प्राय: माँ के पास सूक्ष्म रूप से आते थे। कई बार तो ऐसा भी हुआ कि अचानक माँ का कक्ष अलौकिक सुगंध से भर उठता था। माँ मात्र इतना ही इंगित करतीं कि कोई महापुरुष सूक्ष्म शरीर में आए हैं। ऐसे अवसरों पर कभी कभी माँ आसन बिछाने या धूप जलाने का संकेत करती थीं।

जब माँ अक्तूबर 1956 में बौद्ध गया गई थीं तो उनके साथ गए सभी लोगों ने पवित्र वट वृक्ष के नीचे कुछ समय के लिए एक अलौकिक सुगंध महसूस की थी। जब इस बारे में माँ से पूछा गया तो उन्होंने इंगित किया कि भगवान बुद्ध ने अपनी उपस्थिति को इस तरह से अनुभूत करवाया।

माँ को जानने के बाद बहुत से साधक माँ के आश्रम में शामिल हुए तथा यहां के साधु एवं ब्रह्मचारी बने। इनमें से कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने अन्य गुरुओं से दीक्षा ली थी किन्तु उनका झुकाव माँ की ओर ही था। वे माँ के आश्रम में ब्रह्मचारी की तरह शामिल हो गए।

स्वामी परमानन्दजी एक पहुंचे हुए साधु और विद्वान वेदांती थे। वे बंगाल की अनुभूति सम्पन्न ब्रह्मज्ञ माँ के शिष्य थे। वे उत्तरकाशी एवं गंगोत्री में करीब एक दशक से साधना में व्यस्त थे। भोलानाथजी ने उन्हें माँ से मिलवाया था। उस समय परमानन्दजी ने भोलानाथजी को वचन दिया था कि वे अपनी साधना पूर्ण होने के बाद माँ की सेवा करेंगे। वे 1938 में देहरादून में स्थायी रूप से माँ के आश्रम में रहने के लिए आ गये एवं उन्होंने आजीवन अपने इस वचन को निभाया।

माँ से जुड़ने के बाद वे आश्रम के तमाम तरह के कार्यों में व्यस्त रहते थे। वे न केवल एक संन्यासी थे बल्कि पाककला में कुशल, पैदाइशी इंजीनियर तथा असाधारण संगठन क्षमता रखते थे। माँ के जन्मोत्सव, दुर्गा पूजा, संयम सप्ताह, भागवत सप्ताह आदि सभी बड़े आयोजनों में स्वामी परमानन्दजी ही प्राय: सभी के प्रभारी होते थे क्योंकि उनकी अद्भुत

आयोजन क्षमता और माँ के प्रति सच्ची भक्ति थी। पद, प्रतिष्ठा, प्रभुत्व आदि में उन्हें कोई भी रुचि नहीं थी जो औरों के लिए अनुकरणीय है। माँ के निर्देशानुसार अन्ततः उन्होंने श्री श्री आनन्दमयी संघ के जेनरल सेक्रेटरी का कार्यभार सम्भाला एवं अपने जीवन के अन्त तक इस जिम्मेदारी को निभाया। स्वामीजी ने 5 मार्च 1984 को कनखल आश्रम में अपना शरीर त्यागा था।

अवधूतजी महाराज पंजाब के एक बड़े संत थे। वे प्रसिद्ध संत खन्ना बाबा के शिष्य थे। उन्होंने हिमालय में स्थित उत्तरकाशी में स्वामी परमानन्दजी के साथ रहते हुए प्रख्यात बुजुर्ग संत देवी गिरिजी महाराज से वेदांत का अध्ययन किया था। देवी गिरिजी भी माँ के प्रति काफी स्नेह एवं सम्मान का भाव रखते थे। अवधूतजी ने एक बार स्वामी परमानन्दजी से पूछा कि उन्होंने अपना जीवन श्री माँ की सेवा में लगाने का संकल्प क्यों किया? इस पर परमानन्दजी ने उत्तर दिया कि उन्हें माँ में 'स्थितप्रज्ञ' के सभी लक्षण दिखाई देते हैं जिनका वर्णन भगवद्गीता में किया गया है।

एक बार अवधूतजी की उपस्थिति में एक साधु अपने कई शिष्यों के साथ माँ के पास आया। उसने माँ को बिना किसी कारण काफी अपशब्द कहने आरंभ कर दिये। इस पूरे समय माँ शांत होकर बैठी रहीं तथा उन्होंने वहां उपस्थित क्रोधित भक्तों से कोई भी प्रतिक्रिया नहीं करने को कहा। माँ के इस दुर्लभ व्यवहार को देखकर अवधूतजी ने सदा के लिए माँ के समक्ष अपने को समर्पित कर दिया और उनके पास आना प्रारम्भ किया। उनकी प्रेरणा से कई अन्य साधु-संत भी माँ के पास आने लगे। अवधूतजी कहते थे कि माँ का सब काम ब्रह्माण्ड को लेकर होता रहता है। अपने अंतिम दिनों में वे माँ के वृन्दावन आश्रम में ही रहते थे एवं वहीं अपना शरीर त्याग दिया।

विरजानन्दजी महाराज पूर्व में टाटा के जमशेदपुर कारखाने में इंजीनियर थे। माँ के प्रति तीव्र आकर्षण के कारण परिवार एवं अच्छी नौकरी छोड़कर माँ के पास चले आये। उनकी माता उन्हें वापस ले जाने के लिए माँ के पास आई। विरजानन्दजी ने माँ से आन्तरिक प्रार्थना की जिससे उन्हें वापस न जाना पड़े। माँ ने उनकी माता को ही बनारस आश्रम में सदा के लिए रख लिया जहां उन दिनों उनके पुत्र श्री श्री आनन्दमयी संघ के



माँ से आशीर्वाद प्राप्त करते हुए राष्ट्रपति ज्ञानीजैल सिंह



आश्रम के साधु बायें से : स्वामी भास्करानन्द, निर्मलानन्द, निर्वाणानन्द, स्वामी परमानन्द, भागवतानन्द, ब्रह्मानन्द (बिभुदा) एवं श्री निताई बसु मल्लिक।

मुख्यालय का देखभाल करते थे। माँ के आदेशानुसार विरजानन्दजी आजीवन स्वयंपाकी रहे।

उन्होंने पण्डित गोपीनाथ कविराज जी से शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया एवं कविराज जी के सहायता से माँ की वाणी संकलित कर शास्त्रीय भावार्थ सहित एक पुस्तक प्रकाशित किया, जिसका नाम रखा 'अमर वाणी'। यह एक उच्चकोटि की पुस्तक है जो काफी लोकप्रिय है। इसके बाद वे नियमित रूप से माँ के पास एकान्त में बैठकर प्रश्नोत्तर लिखते थे। कभी-कभी इस काम में उनकी सुविधा हेतु माँ कुछ दिनों के लिए उन्हें लेकर अज्ञातवास में भी चली जाती थीं। माँ के कथनों को संकलित कर उन्होंने महत्वपूर्ण मातृ-भागवत छह खण्डों में बांग्ला भाषा में प्रकाशित करवाया जिसका माँ ने नाम रखा -**'स्वक्रिय-स्वरसामृत'**। इन पुस्तकों के हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा में भी अनुवाद कर उन्होंने प्रकाशित किया। विरजानन्दजी ने कहा है कि इन पुस्तकों में लिखे गये प्रत्येक शब्द एवं वाक्य माँ ने जैसा लिखवाया था बिल्कुल वैसा ही लिखा गया है। उन्होंने यह भी कहा कि कुछ ऐसी बातें जो शास्त्रों में नही मिलती हैं अथवा केवल आभास मात्र पाये जाते हैं, उन विषयों को भी माँ ने इन पुस्तकों में स्पष्ट कर दिया है। पुस्तकों की क्लिष्ट भाषा के सम्बन्ध में माँ ने कहा था कि साधक ज्यों ज्यों साधना के द्वारा उन्नत होते जाएंगे त्यों त्यों उन्हें लिखित भाषाओं में प्रच्छन्न अर्थ स्पष्ट होते जाएंगे।

विरजानन्दजी महाराज बाद में श्री श्री आनन्दमयी संघ के साधु प्रमुख भी हुए थे। आध्यात्मिक रूप से वे बहुत उन्नत थे। वह कहते थे कि यदि वृक्ष की शाखा-प्रशाखा को विभिन्न धर्म का स्वरूप माना जाय तो स्वयं माँ को वृक्ष का मूल समझ लेना चाहिए जहां से रस प्रवाह होकर समस्त शाखा-प्रशाखा अर्थात समस्त धर्मो को जीवित रखता है। उनका प्राय: माँ का दर्शन एवं सूक्ष्म आत्माओं से संयोग होता रहता था। वे कभी कभी घण्टों समाधिस्थ पड़े रहते थे। एक अगस्त 2005 को लगभग 102 वर्ष के उम्र में कनखल आश्रम में उनका देहान्त हुआ एवं उनके पार्थिव शरीर को गंगा की नीलधारा में प्रवाहित किया गया।

मौनीमा एक गृहस्थ सिद्ध संत थीं जो बंगाल की प्रख्यात संत सिद्धिमा की शिष्या थीं। वे परिवार छोड़कर आ गइ थीं और माँ के आश्रम

में रहकर साधना में मगन रहती थीं एवं वर्षों मौन रहीं थीं। बाद में उन्होंने संन्यास ले लिया था। वे बांग्ला भाषा में आध्यात्मिक कविताएं लिखती थीं जिसे संकलित कर 'कणिकामाला' नाम से पुस्तक छपवाया गया। माँ की कृपा से उन्हें भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन हुआ था। श्रीकृष्ण के हाथ में 'कणिकामाला' पुस्तक शोभायमान थी। वाराणसी आश्रम में उनके अन्तिम समय पर माँ स्वयं उपस्थित थीं। सुना है माँ ने कहा था कि वे श्रीकृष्ण के समय में उनकी सखियों में से एक थीं।

कई कुंवारी लड़कियां, विधवाएं तथा बुजुर्ग महिलाएं भी माँ का सानिध्य पाने और अपनी आध्यात्मिक प्रगति के लिए आश्रम में शामिल हो गईं। इनमें से अधिकतर काफी शिक्षित तथा सम्पन्न परिवारों से थीं। उन सभी ने आदर्श धार्मिक जीवन व्यतीत किया। माँ के दिशानिर्देशों को पालन करने का उनके प्रयास सराहनीय रहा।

आश्रम के ब्रह्मचारियों में से कुछ तो ऐसे भी थे जो पूर्व में ब्रिटिश शासन का विरोध करने के कारण क्रांतिकारी बने थे। माँ जब रायपुर आश्रम में थीं तो उस समय बंगाल का एक ऐसा ही युवक उनके पास आया था। कोलकाता की पुलिस उसे गिरफ्तार करने के लिए उसका पीछा कर रही थी और आश्रम में उसकी उपस्थिति की सूचना मिलने पर वे वहां भी पहुंच गये। पुलिस अधिकारी आया और उसने एक फोटोग्राफ दिखाकर पूछा कि क्या यह व्यक्ति आश्रम में है या नहीं। माँ ने सरलता से उससे कहा कि वह स्वयं इस बात की पुष्टि कर ले क्योंकि आश्रम में रहने वाले सभी लोग वहां मौजूद हैं। आश्चर्य है कि पुलिस अधिकारी पहचानने में विफल रहा जबकि वह युवक वहीं माँ के समीप बैठा हुआ था। इसके बाद वह युवक आश्रम में सदा के लिए शामिल हो गया तथा बाद में उसने गिरिजी से संन्यास मंत्र ले लिया। यह युवक स्वामी चिन्मयानन्द के रूप में पहचाने गए। इसी प्रकार दो अन्य क्रान्तिकारी युवकों ने वाराणसी आश्रम में माँ के सानिध्य में रहना प्रारंभ कर दिया। गिरिजी से संन्यास लेने के बाद वे स्वामी प्रकाशानन्द एवं स्वामी स्वरूपानन्द के रूप में विख्यात हुए।

क्रान्तिकारी कालाचांददा स्वामी ब्रह्मानन्दजी (रामकृष्ण परमहंस देव के शिष्य) के शिष्य थे। देश के स्वाधीनता संग्राम में वे श्री अरविन्द के सहयोगी थे तथा उनकी ब्रिटिश शासन के विरुद्ध राजनीतिक गतिविधियों

के कारण पकड़े जाने पर अण्डमान द्वीप के जेल की कालकोठरी में कठोर समय बिताना पड़ा था। बाद में वे माँ के पास आ गये एवं रांची आश्रम में रहने लगे। माँ का मार्गदर्शन पाने के बाद उन्होंने काफी उन्नत आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त की तथा अन्ततः उन्होंने संन्यास ले लिया। उनके ही भतीजे बह्मचारी पानुदा भी पढ़ाई समाप्त कर माँ के पास सदा के लिए आ गये।

धीरे-धीरे कई साधक आए और माँ का दिव्य आकर्षण अनुभव कर आश्रम में रहने लगे। माँ के पास जो भी आया, उन्हे माँ की कृपा से आध्यात्मिक उन्नति मिली। माँ का कहना था- "न तो यहां किसी से आने के लिए कहा जाता है और न ही किसी से जाने के लिए। जो कोई भी यहां आया है, वह अपने लिए ही आया है और जब तक उसका भाग्य होगा, वह यहां रहेगा। इसके बाद वह किसी न किसी कारण का बहाना बनाकर चला जायेगा।" भाईजी कहा करते थे कि यदि किसी को माँ के पास आने का अवसर प्राप्त होता है और यहां सड़क के कुत्ते की तरह भी रहना पड़े तो उसे अपने को अति भाग्यशाली मानना चाहिए क्योंकि उसे यह अवसर उसके वर्तमान या पूवजन्मों में किये गये अनेक पुण्यकर्मों के फलस्वरूप ही मिला है।

राष्ट्र के कुछ प्रमुख नेताओं का आगमन

सन् 1933 में माँ देहरादून के आनन्द चौक इलाके के मनोहर मंदिर में एक छोटे से कमरे में रुकी हुई थीं। इस मंदिर के व्यवस्थापक तनखा परिवार कश्मीरी था एवं वे माँ से बहुत प्रभावित था। वे पण्डित जवाहरलाल नेहरू के रिश्तेदार भी थे। उसी समय ब्रिटिश शासन से मुक्ति पाने के लिए चलाए जा रहे स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने के कारण नेहरू जी देहरादून की जेल में बंद थे। इसी तनखा परिवार के माध्यम से माँ के बारे में पता चलने पर पण्डित नेहरू की माता स्वरूपरानीजी एवं पत्नी कमला नेहरू जुलाई 1933 में माँ से मिलने के लिए मनोहर मन्दिर आईं थीं।

माँ का दर्शन मिलने से कमला नेहरूजी पर गहरा एवं अनूठा प्रभाव पड़ा। एक बार वे माँ के प्रति तीव्र आकर्षण के कारण इस कदर विचलित हुईं कि वे अपनी एकमात्र बच्ची इंदिरा को लेकर मध्यरात्रि में माँ से मिलने मनोहर मन्दिर आ गईं। माँ के कक्ष में ही उनके लिए भाईजी ने

जमीन पर एक कंबल बिछा दिया। कमरा छोटा होने के कारण बच्ची इंदिरा को माँ के तख्त के नीचे सुला दिया गया और कमलाजी ने माँ के दिव्य सान्निध्य में पूरी रात बितायी। बाद में माँ ने उन्हें समझा दिया कि किसी स्त्री को देर रात इस प्रकार घर से बाहर निकलना उचित नहीं है। कई बार कमलाजी माँ को अपनी कार में बैठाकर भाइजी के साथ समीप की मसूरी रोड पर पहाड़ के किसी निर्जन स्थल पर ले जाती थीं। कमलाजी माँ की गोद में अपना सिर रखकर जमीन पर लेट जाती। इस प्रकार दोनों भावस्थ अवस्था में घंटों बिता देते। ऐसी अवस्था में पहाड़ी कीड़ें उन दोनों के शरीर पर बिना अवरोध के विचरण करते रहते पर उन्हें कोई भान नहीं होता। कमलाजी के आग्रह पर माँ ने राजपुर के रास्ते में पड़ने वाले अम्बिका मन्दिर में एक भव्य यज्ञ सम्पन्न करवाया था। वे अपने जीवन के अंत तक माँ के नजदीकी सम्पर्क में बनी रहीं।

माँ 1935 में अल्मोड़ा जाते समय रास्ते में भुवाली सेनिटोरियम गईं थीं जहां कमलाजी उपचार के लिए भर्ती थीं। इसके कुछ समय बाद बेहतर उपचार के लिए कमलाजी को स्विटजरलैंड जाना पड़ा। उन्हें वहां भी सूक्ष्म रूप में माँ के दर्शन हुए थे। इस दौरान एक विचित्र घटना भी हुई। हरिद्वार में आये कोलकाता की एक भक्त ने माँ को चौड़े लाल किनारे वाली साड़ी पहनाई, जब कि उन दिनों माँ को सदा पतले किनारे वाली सफेद धोती में ही देखा जाता था। इस घटना के कुछ दिनों बाद भाईजी को स्विटजरलैंड से कमलाजी का पत्र मिला। पत्र में उन्होंने उस दिन विशेष का उल्लेख करते हुए बताया कि उन्होंने माँ को चौड़े लाल किनारे वाली साड़ी पहने देखा है। वास्तव में जिस दिन माँ ने हरिद्वार में यह साड़ी पहनी थी उसी दिन कमलाजी को माँ के उस वेश में दर्शन हुए थे।

कमलाजी ने राष्ट्र के शीर्षस्थ नेता महात्मा गांधी को माँ के बारे में बहुत सी बातें बताई थीं। उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि गांधीजी की माँ से भेंट हो जाये। गांधीजी भी माँ से मिलना चाहते थे। वर्धा में रहने के दौरान गांधीजी ने अपने एक सहयोगी एवं कांग्रेस के वरिष्ठ नेता श्री जमनालाल बजाज को अगस्त 1941 में माँ के रायपुर आश्रम में भेजा ताकि माँ के बारे में विस्तृत जानकारी मिल सके। आश्चर्य की बात है कि जमनालालजी माँ से इतने प्रभावित हो गए कि गांधीजी के कई टेलीग्राम

मिलने के बावजूद वे माँ के पास से जाने और वर्धा लौटने को अनिच्छुक थे। इसके बाद माँ ने ही उन्हें गांधीजी को जवाब देने एवं वर्धा लौटने की सलाह दी। वे वर्धा गए पर फिर वापस लौटने के लिए। इस बार वे चाहते थे कि वे अपना शेष जीवन माँ के समीप रहकर साधना करने में बिताएं। उन्होंने रायपुर में माँ के आश्रम के पास छह बीघा जमीन तक खरीद ली। किन्तु वे अधिक समय तक जीवित नहीं रह सके। सन् 1942 में जमनालालजी के निधन के बाद उनके परिवार ने यह सारी भूमि माँ के रायपुर आश्रम के लिए दान कर दी।

जमनालालजी के निधन के कुछ ही समय बाद माँ शोक संतप्त परिवार से मिलने गईं। उनका परिवार वर्धा के समीप गोपुरी गांव में रह रहा था जहां जमनालालजी ने माँ के रुकने के लिए पहले से ही सारे प्रबंध कर रखे थे। वहां माँ के प्रवास के दौरान जमनालालजी सूक्ष्म स्वरूप में माँ से मिलने के लिए आए थे। माँ ने उनके परिवार को ढांढस बंधाते हुए कहा – "आत्मा का निधन नहीं होता। क्या कोई जल को चाकू से काट कर दो हिस्सों में बांट सकता है? मृत्यु तो केवल अवस्था परिवर्तन है। सब कुछ वही रहता है। वास्तव में दिवंगत व्याक्ति उस एक में विलीन हो जाता है जो सदा के लिए उपस्थित हैं।"

गांधीजी उस समय वर्धा के सेवाग्राम आश्रम में थे और उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था। वे माँ से मिलने को बहुत इच्छुक थे। उन्होंने माँ को वर्धा लिवा लाने के लिए बाबू राजेन्द्र प्रसाद एवं आचार्य विनोबा भावे को उनके पास भेजा। दिवंगत जमनालालजी के पुत्र कमलनयनजी अपनी कार से माँ एवं उनके साथ गए लोगों को सेवाग्राम आश्रम ले आए।

गांधीजी माँ के भव्य व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने वहां मौजूद अन्य नेताओं की उपस्थिति में माँ से कहा कि जब जमनालालजी माँ से मिलकर लौटे तो उन्होंने बताया था कि माँ के सान्निध्य में मात्र तीन दिन रहने के बाद ही उन्हें अलौकिक शांति की अनुभूति हुई जबकि गांधीजी के साथ पन्द्रह साल रहने के बाद भी उन्हें ऐसी कोई अनुभूति नहीं हुई। गांधीजी ने माँ से सेवाग्राम आश्रम में कम से कम दो दिन रहने के लिए बहुत कहा। बहरहाल, गांधीजी के अनुरोध का सम्मान रखने के लिए माँ ने एक रात आश्रम में ही बिताई। दोनों ने पूरा दिन ऐसे बिताया मानों कोई

छोटी बच्ची एवं पिता लम्बे अंतराल के बाद मिले हो। रात में गांधीजी के विशेष अनुरोध पर माँ अपनी कुछ परिचारिकाओं के साथ गांधीजी के कक्ष में ही सोयीं। गांधीजी की बीमार पत्नी कस्तूरबा माँ के पास आईं और बोली कि उनकी माँ का दर्शन करने की लम्बे समय से आस थी जो आज जाकर पूरी हुई।

वर्धा से रवाना होते समय रेलवे स्टेशन पर माँ ने जमनालालजी की पत्नी श्रीमती जानकी बाई से कहा कि वे गांधीजी को अवगत करा दें कि समय तेजी से बीत रहा है; उचित समय आने पर उनकी यह छोटी बच्ची (स्वयं माँ) खुद आकर उन्हें ले जाएगी। माँ की यह बात सुनकर जानकी बाई और वहां खड़े अन्य लोग गांधीजी के जीवित रहने को लेकर सशंकित हो गए। माँ ने उनको ढांढस बंधाते हुए कहा कि अभी तुरंत ऐसा कुछ नहीं होने जा रहा है।

बाद में अक्तूबर 1946 में गांधीजी के विशेष अनुरोध किए जाने पर माँ नयी दिल्ली के बिड़ला भवन में गांधीजी की प्रार्थना सभा में सम्मिलित हुईं। जब गांधीजी ने उनसे सदा के लिए सेवाग्राम आने और उस जगह से कभी न जाने की विनती की तो माँ ने कहा- ''पिताजी, क्या तुमको नहीं लगता कि जिस तरह से मैं अभी तुम्हारे पास हूं वैसे ही हमेशा तुम्हारे साथ रहती हूं। मैं तुम्हारा साथ छोड़कर कहीं नहीं जाती।'' इस पर गांधीजी ने कहा, ''किन्तु मुझे तुम नही दिखाई देती तथा अन्य भी इस बात पर विश्वास नही करेंगे।'' फिर माँ ने इस बात को बल देकर कहा, ''मुझ पर विश्वास करो पिताजी, मैं सत्य बोल रही हूं। तुम्हारे यह छोटी बच्ची कभी झूठ नहीं बोलती।'' गांधीजी ने उनसे पूछा कि वे इतना भ्रमण क्यों करती हैं? इस पर माँ ने उत्तर दिया, ''किन्तु पिताजी, मैं तो वास्तव में एक ही स्थान पर हूं। एक ही बगीचे के भीतर घूमती रहती हूं।''

गांधीजी की जनवरी 1948 में दुखद मृत्यु से पहले उनकी संभवतः माँ से एक बार और भेंट हुई थी। दिल्ली में गांधीजी की मृत्यु के समय माँ इलाहाबाद में थीं। उनकी मृत्यु का समाचार सुनने के बाद माँ की त्वरित प्रतिक्रिया थी, ''यह ईसा मसीह की तरह है। ईसा ने अपना शरीर त्यागने से पहले सारी हिंसा को अपने शरीर पर झेल लिया था। उनमें किसी पर कोई दुर्भावना नहीं थी, हिंसा पर भी नही। ठीक इसी प्रकार, गांधीजी ने भी

अपनी अहिंसा की शक्ति से हिंसा को मिटा दिया। वे हाथ जोड़कर भगवान राम का नाम लेकर शांति से नीचे गिर गए।"

भारत स्वाधीन होने के पूर्व प्रख्यात नेता एवं शिक्षाविद् पण्डित मदन मोहन मालवीयजी श्री लालबहादुर शास्त्री के साथ माँ का दर्शन करने के लिए देहरादून के किशनपुर आश्रम गए थे। मालवीयजी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रधान संस्थापक थे एवं शास्त्रीजी वर्षो बाद पण्डित नेहरू के पश्चात देश के प्रधानमंत्री बने थे। मालवीयजी ने एक बार माँ से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आयोजित यज्ञ में आने का अनुरोध किया था। जिस स्थान पर माँ की अगवानी की गई थी, उस जगह पर आज विशाल विश्वनाथ मंदिर बिड़ला द्वारा निर्मित है। इसका शिखर भारत के मंदिरों में सबसे ऊंचा है। इसी विश्वविद्यालय में वर्ष 1950 के दीक्षांत समारोह में माँ को विशिष्ट अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया था। मालवीयजी माँ के परम श्रद्धालु थे। वे अपने साथ माँ की तस्वीर और भाईजी द्वारा प्रकाशित माँ की संकलित वाणी की पुस्तक "सद्वाणी" रखते थे और इसे अपने बिस्तर के सिराहने के पास रखना पसंद करते थे।

भारत को स्वाधीनता मिलने से कुछ माह पहले मई 1947 में पण्डित नेहरू सरदार वल्लभभाई पटेल के साथ माँ के दर्शन करने के लिए देहरादून में स्थित किशनपुर आश्रम आए थे। बाद में, प्रधानमंत्री बनने के बाद भी उन्हें जब भी अपने व्यस्त कार्यक्रम से समय मिलता वे माँ के दर्शन के लिए आ जाते थे। धीरे-धीरे नेहरूजी का पूरा परिवार माँ का भक्त हो गया।

देश के कई शीर्ष नेताओं जैसे बाबू राजेन्द्र प्रसाद, पण्डित गोविन्द वल्लभ पंत, बाबू जगजीवन राम, आचार्य कृपलानी, श्री जयप्रकाश नारायण, श्री गुलजारीलाल नंदा, श्री पुरुषोत्तमदास टंडन, श्री सम्पूर्णानन्द, श्रीप्रकाश, सर तेजबहादुर सप्रू, आदि ने भी माँ से कई बार भेंट कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया।

पण्डित नेहरू की पत्नी कमलाजी की हार्दिक इच्छा थी कि वे माँ को इलाहाबाद में अपने घर "आनन्द भवन" ले जाएं। किन्तु वर्ष 1936 में उनके निधन हो जाने से उनकी यह इच्छा अपूर्ण रह गई थी। यद्यपि उनकी यह इच्छा तब पूरी हुई जब पण्डित नेहरू एवं उनकी पुत्री श्रीमती इंदिरा

गांधी ने मई 1961 में इलाहाबाद में आयोजित माँ के जन्मोत्सव में भाग लिया एवं इसके बाद वे अपने साथ माँ को आनन्द भवन लें गए जहां माँ एक-दो दिन रुकी थीं। आनन्द भवन परिसर में एक सुंदर तम्बू में माँ के रहने का प्रबंध किया गया क्योंकि वे किसी गृहस्थ के घर में नहीं रुकती थीं। नेहरूजी के हार्दिक अनुरोध पर माँ कुछ बार नयी दिल्ली के तीन मूर्ति भवन भी गई थीं जो भारत के प्रधानमंत्री का तत्कालीन सरकारी निवास था।

पण्डित नेहरू को माँ की असाधारण आध्यात्मिक शक्तियों पर पूरी आस्था थी। वर्ष 1962 में देश पर चीन के आक्रामण के गहरे संकटों के क्षणों में उन्होंने माँ से कृपा प्रार्थना कर अपने निजी सचिव को माँ के पास दिल्ली आश्रम भेजा था। उसी दिन मध्य रात्रि से चीन ने बिना शर्त युद्ध बन्दकर अपनी फौज वापस लौटाना प्रारम्भ कर दी थी।

वर्ष 1963 में नेहरूजी के जन्मदिन की पूर्व सन्ध्या में एकाएक उनकी पुत्री इन्दिराजी को तीव्र इच्छा हुई कि अगले दिन सुबह यदि श्री श्री माँ सर्वप्रथम उनकी पिताजी को आशीर्वाद दें तो बहुत अच्छा होगा क्योंकि चीन के आक्रमण के बाद नेहरूजी बहुत टूट चुके थे। परन्तु नेहरूजी के प्राइवेट सेक्रेटरी सहमत नहीं हुए क्योंकि प्रातःकाल से ही विशिष्ट अतिथियों का आना प्रारम्भ होने वाला था। दुखी मन से इन्दिराजी को यह बात मान लेनी पड़ी। परन्तु माँ तो अन्तर्यामिनी थीं। अगले सुबह तड़के अस्वस्थ शरीर के बावजूद सोलन के महाराजा के कार में बैठकर माँ चल पड़ीं। माँ के साथ केवल गुरुप्रिया दीदी एवं विरजानन्दजी थे। तीन मूर्ति भवन में पहुंचने पर माँ के अप्रत्याशित आगमन से सभी आनन्द से अभिभूत हो गये। नेहरूजी ने माँ को भवन की छत पर ले गये। वहां रखी एक कुर्सी पर माँ को आदर के साथ बैठाया एवं स्वयं माँ के चरणों के पास भूमि पर बैठ गये। माँ के संग एकांत में उन्होंने काफी समय बिताया। छत से उतरने के बाद सभी से मिलकर माँ ने विदा ली। आते समय कार में गुरुप्रिया दीदी ने नेहरूजी से हुए वार्तालाप के विषय में माँ से पूछा। परन्तु इस विषय में माँ पूर्णतया मौन रहीं। बहुत पूछने पर माँ ने केवल इतना ही कहा, ''पिताजी (नेहरूजी) बारबार इस शरीर को क्यों कह रहे थे कि माँ यह साल मेरा अच्छा बितवा दो।'' गुरुप्रिया दीदी ने सशंकित होकर माँ से पूछा, ''क्या इस साल बाद नेहरूजी जीवित नहीं रहेगें?'' माँ चुप हो गई। फरवरी 1964 में

बीमार नेहरूजी को देखने के लिए माँ तीन मूर्ति भवन गईं थीं और यह उनकी अंतिम भेंट थी।

मई 1964 में नेहरूजी का निधन हो गया। उस समय माँ अल्मोड़ा आश्रम में थीं। उनके निधन के दिन माँ ने अपनी परिचारिका उदासजी को बहुत सुबह ही बता दिया था कि किसी बुरी खबर पाने के लिए तैयार रहें। दोपहर में एक टेलीग्राम आया जिससे यह सूचना मिली कि नेहरूजी का निधन हो गया है। इस दुखद समाचार को सुनने के बाद माँ के मुंह से निकला- "जिस प्रकार युद्ध मैदान में योद्धा अपने प्राण त्यागते हैं, जवाहरलाल ने भी एक कर्मठ व्यक्ति की तरह अंतिम सांस ली। उन्हें रोग शैया पर लेटकर अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी।"

इंदिराजी का अनुरोध प्राप्त होने के बाद माँ ने आश्रम के पांच ब्रह्मचारिणियों को उस सत्संग कार्यक्रम में भाग लेने के लिए भेजा जो नेहरूजी के अस्थि-कलश के समक्ष निरंतर हो रहा था। ब्रह्मचारिणियों द्वारा संस्कृत स्त्रोतों का मधुर सुर में किया गया पाठ इंदिराजी ने काफी पसंद किया। उन्होंने इन लोगों से अगले दिन भी इसी तरह का पाठ करने के लिए उस समय आने का अनुरोध किया जब नेहरु जी की अस्थि-कलश को इलाहाबाद के संगम में प्रवाहित करने के लिए रवाना किया जाएगा। अपने पिता की अस्थियां प्रवाहित होने के लिए ले जाने के दुखद क्षण में भी इंदिराजी इन ब्रह्मचारिणियों को वापस दिल्ली आश्रम भिजवाने का प्रबंध करवाना और उनके लिए फलों की व्यवस्था करवाना नहीं भूलीं क्योंकि वे जानती थीं कि आश्रम की ब्रह्मचारिणी बाहर का बना किसी भी तरह का भोजन स्वीकार नहीं करेंगी।

नेहरूजी की पुत्री इंदिराजी भी माँ के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखती थीं। कमला नेहरू ने मृत्यु से पहले माँ को लिखे अपने अंतिम पत्र में उनसे अनुरोध किया था कि वे उनकी एकमात्र संतान पर अपनी कृपा सदा बनाए रखें। उसके बाद से माँ का इंदिरा गांधी पर विशेष ख्याल बना रहा। वे माँ की परम भक्त हो गईं तथा अपने व्यस्त कार्यक्रम से समय निकालकर उनके पास कभी-कभी आती थीं। उनके प्रधानमंत्री बनने के बाद भी यह क्रम जारी रहा।

एक बार सर्दियों में श्रीमती इंदिरा गांधी माँ से मिलने के लिए

एकाएक दिल्ली आश्रम में उनके कक्ष में पहुंची। माँ इंदिरा जी को देखते ही समझ गई कि उन्हें बुरी तरह सर्दी लग गई है। माँ ने तुरंत सरसों के गर्म तेल की उस कटोरी को मंगवाया जिससे माँ के पैरों में मालिश की जाती थी। अपने बच्चे के लिए चिंतित किसी माता की तरह माँ ने इंदिरा गांधी से उनके मोजे उतरवा कर उनके पैरों एवं छाती में इस तेल की मालिश करने के लिए कहा। माँ ने उनसे इस तेल की कुछ बूंद को नाक के जरिये सूंघने के लिए भी कहा। साथ ही उन्हें तुलसी का काढ़ा भी पीने के लिए दिया गया। जब इंदिराजी को कुछ बेहतर महसूस होने लगा तो माँ ने उनसे तुरंत घर जाने और अपने शरीर को ढंग से ढककर सो जाने को कहा। परन्तु इन्दिराजी को इतनी जल्दी माँ के पास से जाने की इच्छा नही थी किन्तु माँ ने जोर देकर कहा कि वह घर जाकर आराम करें जो उस समय उनके लिए बहुत आवश्यक था। माँ का स्नेहपूर्ण व्यवहार यह प्रमाणित करता है कि वे इंदिराजी के जल्द ठीक होने को लेकर ही चिंतित थीं और उन्हें इस बात की कोई परवाह नहीं थी कि सामने बैठी महिला देश के उच्चतम (प्रधानमन्त्री) पद पर आसीन थी। माँ ने एकबार कहा था कि इन्दिरा में उसकी माता कमला नेहरू के कुछ विशेष गुण मौजूद है। यदि वह आध्यात्मिकता की ओर आ जाती तो इस मार्ग में भी बहुत उन्नति कर सकती थी। माँ के महाप्रयाण के लगभग दो वर्ष बाद इन्दिराजी का दुखद अन्त हो गया। उनके निधन के बाद उनके परिवार से कभी कोई माँ के आश्रम नहीं आया।

भारत की स्वाधीनता के बाद अधिकतर प्रख्यात राजनेता, महामहिम राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, राज्यपाल, मंत्री, सरकारी अधिकारी माँ का आशीष लेने प्राय: उनके पास आया करते थे। भारत के राष्ट्रपति रहने के दौरान बाबू राजेन्द्र प्रसाद 1957 एवं 1961 में दो बार माँ को बहुत आदर के साथ राष्ट्रपति भवन ले गए थे जहां माँ एक-दो दिन रुकीं। विख्यात दार्शनिक एवं शिक्षाविद् डॉ. राधाकृष्णन कई बार माँ के दर्शन करने के लिए आए थे। दिसंबर 1955 में वे जब उपराष्ट्रपति थे, अत्यन्त आग्रह के साथ वे माँ को दिल्ली में अपने आवास पर ले गए थे। श्री गोपाल स्वरूप पाठक भी माँ पर परम श्रद्धा रखते थे और बाद में वे भी भारत के उपराष्ट्रपति बने थे। उनकी दोनों पुत्रियां - शांता एवं इंदिरा भी स्थायी रूप से रहने के लिए

माँ के आश्रम में आ गई थीं और बाद में उन्होंने संन्यास ले लिया था। राजा, महाराजा, उद्योगपति, व्यवसायी आदि तमाम सम्पन्न एवं प्रभावशाली लोग माँ से मिलने आते थे किन्तु माँ सबके साथ उसी प्रकार का व्यवहार करती थीं जैसा कि किसी सामान्य व्यक्ति के प्रति उनका बर्ताव रहता था। सभी लोग माँ से मिलकर उनके दिव्य स्नेह का अनुभव करते थे।

माँ ने आश्रमवासियों को इस बात के लिए सतर्क कर दिया था कि इन गणमान्य लोगों से कोई भी उपकार नहीं मागां जाए। माँ सादगी की प्रतिमूर्ति थीं तथा दिखावट, प्रचार, धन आदि के प्रति उनका तनिक भी झुकाव नहीं था। माँ ने आश्रम के भीतर किसी भी तरह की समृद्धि को कभी बढ़ावा नहीं दिया। माँ आश्रमवासियों को सदा इस बात की सीख देती थीं कि भगवान पर पूरी तरह से निर्भर रहना चाहिए तथा किसी भी तरह की विलासिता के बिना सादगी से भरा आश्रम जीवन व्यतीत करना चाहिए। स्व-इच्छा से दिए गए किसी भी दान को आश्रम चलाने एव उसके रखरखाव के लिए भिक्षा के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। सत्संग, साधना एवं भक्ति के लिए ही आश्रम है। बहरहाल, प्राय: यह अनुभव किया गया कि वास्तविक आवश्यकताओं के अनुरूप ही भक्तों से दान मिल जाता था। गुरुप्रिया दीदी प्राय: कहा करती थीं कि अन्य आश्रमों में लोग आय के अनुरूप व्यय करते हैं किन्तु यहां माँ की कृपा से वास्तविक आवश्यकताओं के अनुरूप दान प्राप्त हो जाता है।

माँ के प्रति विदेशी श्रद्धालुओं का आकर्षण

विभिन्न देशों के बड़ी संख्या में नागरिक माँ के प्रति आकर्षित हुए। उनका आना वर्ष 1938 से ही आरंभ हो गया था। ऐसे लोग संपन्न वर्ग के या जीवन में अपना अच्छा मुकाम हासिल करने वाले तथा विभिन्न देशों, जातियों एवं मतों से थे। वे माँ के पास दार्शनिक या आध्यात्मिक प्रश्न लेकर आते थे। कुछ तो व्यक्तिगत समस्याओं एवं कठिनाइयों के चलते माँ के समीप आते थे। प्राय: उनके और श्री माँ के बीच कोई मौखिक संवाद नहीं होता था। वे आकर चुपचाप बैठ जाते थे और माँ को निहारते थे। माँ की विनम्र दिव्य उपस्थिति उनके दिलों में धीरे-धीरे प्रवेश करने लगती थी। उन्हें लगता था कि किसी मौखिक संवाद के बिना ही उनके प्रश्नों के उत्तर

मिल गए हैं तथा कई बार उनकी समस्याओं का भी हल निकल आता। श्री माँ की स्नेहपूर्ण दृष्टि उनके भीतर तक प्रवेश कर जाती थी। वे उनसे मौन में सम्पर्क साधती थीं। माँ के पास आने वालों को लगता था कि माँ उनके बहुत निकटस्थ हैं। उनके लिए माँ अनुभवातीत वास्तविकता के परे - असाधारण, अतिमानवीय और अलौकिकता की जीवंत साक्ष्य थीं।

इनमें सबसे उल्लेखनीय एवं परिचित विदेशी भक्त एक आस्ट्रियाई महिला थीं जिनका नाम मिस ब्लांका श्लेमन था। वे वाराणसी के राजघाट में स्थित एक मशहूर विद्यालय में अध्यापिका थीं और माँ से उनकी प्रथम मुलाकात अल्मोड़ा में सन् 1943 में हुई। बाद में वे माँ के पास आ गईं तथा ब्रह्मचारिणी आत्मानन्द के नाम से मशहूर हुईं। वे हिन्दी एवं बांग्ला भाषाओं को बोलने एवं लिखने में पारंगत थीं। साथ ही वे फ्रांसीसी, जर्मन एवं अंग्रेजी भाषा भी अच्छी तरह जानती थीं। आत्मानन्दजी प्रायः माँ एवं विदेशी श्रद्धालुओं के बीच दुभाषिये की भूमिका निभाती थीं। वे श्री श्री आनन्दमयी संघ द्वारा नियमित रूप से प्रकाशित 'आनन्द वार्ता' पत्रिका के अंग्रेजी संस्करण की संस्थापक संपादक थीं। माँ एवं उनके वचनों पर आधारित यह त्रैमासिक पत्रिका बांग्ला, हिन्दी व अंग्रेजी भाषाओं में अलग-अलग प्रकाशित की जाती है। आत्मानन्दजी ने गुरुप्रिया दीदी की डायरियों का अंग्रेजी में अनुवाद किया जिसमें माँ के दैनन्दिन ब्यौरों को दर्ज किया गया था। उन्होंने इन डायरियों को 'आनन्द वार्ता' के अंग्रेजी संस्करण में धारावाहिक रूप से प्रकाशित करवाया था। उन्होंने माँ एवं उनके वचनों पर आधारित कई पुस्तकें अंग्रेजी में लिखी हैं। इन पुस्तकों का न केवल विदेशी जिज्ञासुओं, बल्कि बांग्ला न जानने वाले भारतीय श्रद्धालुओं के लिए भी बहुत महत्व है।

आत्मानन्दजी का देहान्त 80 वर्ष की आयु में सन् 1985 में हरिद्वार के कनखल आश्रम के निकट एक मकान में हुआ था जहां वह अक्सर आकर रुकती थी। उनकी पार्थिव शरीर को कनखल आश्रम लाया गया तथा संन्यासी के सभी कर्मकांड विधिवत सम्पन्न करवाने के बाद उनके मृत शरीर को गंगा के नीलधारा में प्रवाहित किया गया। नीलधारा वह स्थल है जहां संन्यासियों के शव को प्रवाहित किया जाता है। उनके निधन के कई वर्ष पहले उन्होंने माँ के समक्ष अपनी मृत्यु के बाद जल समाधि कराने की इच्छा व्यक्त की थी। माँ ने कृपापूर्वक उनके अनुरोध को स्वीकार किया

तथा अपने हाथों से उनके शरीर पर कुछ क्रिया की थीं। आत्मानन्दजी ने एक सच्चे संन्यासी की तरह अपना जीवन व्यतीत किया था। सामान के नाम पर उनके पास मात्र कुछ कम्बल एवं पहनने के कुछ वस्त्र ही थे। ऐसा सादगी भरा जीवन अन्य साधकों के लिए अनुकरणीय है।

दूसरे उल्लेखनीय एवं सुपरिचित विदेशी भक्त थे डॉ. एडोल्फ विनट्रब जो फ्रांस के मर्सिली के एक सफल चिकित्सक थे। सन् 1951 में उनकी माँ से भेंट हुई थी। माँ से अनुमति लेने के बाद वह तीन साल तक माँ जहां भी जाती, उनके साथ जाते थे। माँ ने उनको 'विजयानन्द' नाम दिया था। वह किसी से कुछ भी नहीं ग्रहण करते थे। अपने पास सामान्य जो कुछ था, उसी से गुजारा कर लेते थे। केवल माँ अपने हाथों से यदि कभी कुछ देती थीं तो उसे ले लेते थे। उन्होंने अल्मोड़ा आश्रम एवं धवलछीना आश्रम में रहकर वर्षों तक कठोर साधना की थी। धवलछीना आश्रम अल्मोड़ा के हिमालय पर्वतों में स्थित एक मनोरम स्थल है। इस स्थान के सम्मुख बर्फ से ढके हुई विशाल नन्दा देवी गिरिश्रृंग का दृश्य अपूर्व है। इस आश्रम में उस समय बिजली या जलापूर्ति की कोई सुविधा नहीं थी। विजयानन्द जी को केवल वर्षा जल पर ही निर्भर रहना पड़ता था। कनखल आश्रम में संन्यासियों के रहने के लिए "साधु निवास" बनने के बाद माँ ने उनके लिए भी वहीं रहने की स्थाई व्यवस्था करवाई थी। एक बार माँ ने सबके सामने उनसे पूछा कि वे कितने देर साधना में बिताते हैं। उन्होंने अत्यन्त संकोच के साथ कहा कि वे बूढ़े हो गये हैं इसलिए अब दस-बारह घंटे से अधिक समय नहीं दे पाते हैं। माँ ने सबको सीख देने के लिए ही यह प्रश्न किया था।

विजयानन्दजी का लोग बहुत आदर करते थे तथा विदेशियों में विशेषकर पश्चिमी देशों से आए श्रद्धालुओं में वे बहुत प्रिय थे। वे उन्हें माँ के विषय में एवं उनकी शिक्षाओं के बारे में बहुत सुंदर ढंग से समझाते थे। जब उनसे पश्चिमी देशों की यात्रा करने का अनुरोध किया जाता था तो उनका उत्तर होता था-"मैं कनखल आश्रम नहीं छोड़ना चाहता क्योंकि माँ ने स्वयं मुझे यहां रहने को कहा है। इसके अलावा, यदि मैं चला भी गया तो वहां के लोग मुझे वापस आने नहीं देंगे।"

काफी पहले अल्मोड़ा में माँ ने विजयानन्दजी के बारे में कहा था

कि उन्हें भगवत पथ मिल चुका है। निधन से एक दिन पहले कनखल आश्रम में विजयानन्दजी को जब इस बात का स्मरण दिलवाया गया तो वे बहुत प्रफुल्लित हो गए और उन्होंने कहा, ''ओह! माँ ने ऐसा कहा था!'' स्वामी विजयानन्दजी का करीब 95 वर्ष की आयु में अप्रैल 2010 में कनखल आश्रम स्थित उनके कक्ष में निधन हुआ। उनकी हार्दिक अभिलाषा थी कि वे अपने प्राण आश्रम में ही त्यागें और उनकी यह आकांक्षा पूर्ण हुई थी। संन्यासी के सभी अंतिम रीति रिवाज सम्पन्न किए जाने के बाद, माँ एवं स्वामी विजयानन्द की परम भक्त सुश्री इसाबेल डेकासन (इजू) उनके पार्थिक देह को समाधि देने के लिए फ्रांस ले गई।

अमेरिका का एक युवक जैक उंगवी (जयानन्द), इंग्लैण्ड का एक अन्य युवक कालिन टर्नबुल (परमानन्द) तथा फ्रांस का हैनरी पेटिट माँ में गहरी श्रद्धा रखते थे। एबिसीनिया (वर्तमान में इथोपिया का उत्तरी भाग) में एक उच्च पद पर हैनरी पेटिट आसीन थे किन्तु भारत में माँ से मिलने के बाद उनका जीवन ही बदल गया। वह सदैव माँ के साथ ही रहना पसंद करता था। जब माँ से पेटिट को नया नाम देने का अनुरोध किया गया तो माँ ने सुझाव दिया, ''सत्यानन्द''। इस पर पेटिट आश्चर्य चकित रह गया और कहा कि वह एक दिन पहले ही इस नाम के बारे में सोच रहा था परन्तु माँ को इस बारे में कैसे पता चल गया?

गदाधर एक अमेरिकी था जो युवावस्था में ही माँ के पास आ गया था। वह जनवरी 1982 में इलाहाबाद कुम्भ में माँ के पास आने की योजना बना रहा था किन्तु वह आ नहीं सका। माँ ने उसे कुंभ मेले में अपने साथ सूक्ष्म रूप में देखा। इसके कुछ समय बाद उसका निधन हो गया। माँ ने उसके अभिभावकों से कहा कि वह अब इस संसार में फिर लौटकर नहीं आएगा।

कुछ विदेशी श्रद्धालु अपने गुरु की सलाह पर माँ से मिलने आये थे। अमेरिका में 'सेल्फ रियलाइजेशन फैलोशिप' की अध्यक्ष सिस्टर दया माता अपने गुरु परमहंस स्वामी योगानन्द की सलाह पर माँ से मिलने के लिए आई थीं। स्वामी योगानन्दजी एक बार उन्हें माँ की फोटाग्राफ दिखाते हुए कहा था, ''इनके जैसा बनने का प्रयास करो।'' दया माता की माँ से कई बार भेंट हुई थी। उनका कहना था- ''मैं अपने कृपावान गुरुजी के बारे

में सोचती हूं जिन्होंने हम सभी के लिए माँ को शाश्वत उदाहरण के रूप में चुना था जो कि दिव्यता की पुष्प हैं।''

कई प्रशंसक माँ के दर्शन करने के लिए समूह में आते थे। इनमें स्विटजरलैण्ड के दार्शनिक एवं प्राध्यापक डॉ. बॉस, हालैण्ड के गायक एवं भाषाविद् डॉ. अरनाल्ड बेक, फ्रांसीसी लेखक जीन हर्बर्ट, ब्रिटिश फोटोग्राफर रिचर्ड लेनॉय तथा कई अन्य शामिल हैं। जर्मन लेखिका मेलिटा म्याशम्यान ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि उनका यह व्यक्तिगत मत है कि माँ ऐसी मनुष्य हैं जिनके भीतर 'मैं' की भावना लेशमात्र भी नहीं है। फ्रांसीसी फिल्म निर्माता अर्नाड देसजरडिन एवं डॉ. अलेक्जेंडर लिपस्की तथा कई अन्य का मानना है कि माँ उनकी आध्यात्मिक अभिलाषाओं का उत्तर हैं। कई राजनयिक एवं राजनीतिक विशिष्ट व्यक्ति भी श्री माँ के दर्शनों के लिए आये थे। इनमें कनाडा के प्रधानमंत्री मिस्टर ट्रोडो, यूनान की राजमाता, नेपाल के महाराजा, भारत में तैनात कनाडा, स्विटजरलैण्ड, चिली, चैकोस्लोवाकिया, सीरिया, पाकिस्तान तथा कई अन्य देशों के राजदूत उल्लेखनीय हैं।

जनवरी 1971 में कनाडा के प्रधानमंत्री ट्रोडो भारतीय दौरे पर आकर दिल्ली जाने के बजाय पहले माँ से मिलने बनारस आश्रम आए थे। उनके साथ भारत में नियुक्त कनाडा के उच्चायुक्त जेम्स जार्ज तथा भारतीय दौरे पर आए सभी विदेशी लोग भी मौजूद थे। वे सभी कई मोटर लांच से गंगा नदी के रास्ते माँ के आश्रम आये। ट्रोडो ने कुछ देर माँ के साथ एकांत में समय बिताया। माँ ने उन्हें कहा था, ''विश्व व विश्वातीत में श्रेष्ठतम सच्चाई एक ही है। वही इस रूप में इस शरीर से मिलने आया है जिसके निकट कोई भी अनजान अथवा नया नहीं होता है। यहां केवल एक ही सच्चाई है - एक आत्मा। यह वही जो हर समय था, है एवं रहेगा। चिरस्थायी होते हुए भी वह हर समय नवीन हैं।'' माँ से उनकी और भी बहुत बातें हुई। मिस्टर ट्रोडो बाद में कहा कि उन्हें पहले कभी ऐसा दिव्य आनन्द प्राप्त नहीं हुआ। माँ ने उन्हें भारत के हस्तशिल्प कौशल द्वारा बनायी गयी वस्तुओं में चन्दन के छाल से बनी माला पहनायी तथा बनारसी जरी का एक आसन एवं बांस की छाल से बने डब्बे में कुछ प्रसाद दिलवाया जिसे उन्होंने प्रसन्नता के साथ स्वयं लेकर रख लिया। उस आसन पर बैठ

कर प्रतिदिन कुछ समय भगवत स्मरण करने को भी माँ ने कहा। बनारस से रवाना होकर ट्रोडो दिल्ली पहुंचे। हवाई अड्डे पर तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने जब उनका स्वागत किया तो ट्रोडो ने पहनी हुई चन्दन की माला उन्हें दिखाकर आनन्द के साथ कहा, "इसे माँ ने दिया है"। वर्तमान में इन्ही के पुत्र जस्टिन ट्रोडो कनाडा के प्रधानमंत्री हैं।

यूनान की राजमाता अपनी पुत्री राजकुमारी ईरीन के साथ माँ से नवंबर 1966 में वृंदावन आश्रम में मिलने आई थीं। लम्बे समय तक वे एकान्त में माँ के साथ रहीं। उस दौरान बिजली चले जाने पर आत्मानन्दजी एक पेट्रोमेक्स जलाकर ले आयीं, परन्तु राजमाता ने उसे अन्दर लाने से मना कर दिया। उन्होंने कहा कि वे माँ की स्वयं की उज्वलता से उन्हें स्पष्ट देख पा रही हैं। आश्रम छोड़ते समय उन्होंने आत्मानन्दजी को बताया था कि यूरोप के राजवंशों में माँ का स्मरण बहुत सम्मान के साथ किया जाता है।

लगभग सन् 1962 में नेपाल के महाराजा महेन्द्र शाह दिल्ली से देहरादून के किशनपुर आश्रम में माँ से मिलने अकेले आये थे। उन्होंने माँ से एकान्त में वार्तालाप किया। उस समय वहां केवल गिरिजी उपस्थित थीं। सम्भवतः उस समय उन्हें गिरिजी से कोई मन्त्र प्राप्त हुआ था। लौटने के कुछ बाद ही माँ के कृपा से उनका भारत में निर्वासन समाप्त हो गया एवं वे नेपाल लौटकर राजगद्दी पर पुनः आसीन हो गये। बाद में नेपाल राजवंश के रिश्तेदारों में से कुछ लोग माँ के पास आने लगे। उनमें से राज परिवार से सम्बन्धित बीनाजी माँ के पास आ गई थीं एवं आश्रमवासी हो गयीं।

श्री माँ की तस्वीर देखने के बाद इटली की एक महिला मिरियम ओव्र उनकी परम भक्त बन गई। मशहूर अभिनेत्री जेनिफर जोन्स माँ को देखकर इतनी आकर्षित हो गई थी कि उसने अपना हालीवुड जाना टाल दिया ताकि माँ के साथ अधिक समय बिताया जा सके। उसने बाद में कहा कि माँ से मुलाकात के कारण उसका भारत आना सार्थक हो गया। कई विदेशी महसूस करते थे कि माँ उन संत की तरह हैं जिनकी दिव्य उपस्थिति से उनके भीतर एक आन्तरिक श्रद्धा का भाव पैदा करती है।

पश्चिमी देशों से ईसाई श्रद्धालुओं की लगातार बढ़ती संख्या को देखते हुए उनके लिए माँ के विशेष दर्शन का प्रबंध करवाया जाता था। क्रिसमस के दिन माँ के समीप विदेशी भक्तों के भीड़ बढ़ जाती थी एवं



1967 में इलाहाबाद में माँ के जन्मोत्सव समारोह में उपस्थित प्रधानमंत्री नेहरू एवं श्रीमती इन्दिरा गांधी



1977 में वाराणसी आश्रम में माँ के साथ कनाडा के प्रधानमंत्री ट्रोडो

माँ की उपस्थिति में उनके लिए सामूहिक ध्यान का प्रबंध किया जाता था। उनमें से कई के भीतर यह पवित्र भावना थी कि माँ स्वयं ही ईसा मसीह हैं।

विदेशी भक्त जब भी माँ को अपने देश ले जाने का प्रयास करते तो माँ का उत्तर होता कि वे सदा से वहां भी हैं। कई ऐसी भी घटनाएं हुईं जिसमें माँ को बिल्कुल नहीं जानने वाले व्यक्ति ने उन्हें स्वप्न में देखा अथवा पवित्र गिरिजाघर में लगे ईसा मसीह के चित्र में उन्हें माँ दिखाई दीं। उन्हें बाद में जाकर यह पता लगा कि उन्होंने जिन्हें देखा था वे आनन्दमयी माँ थीं।

सभी धर्मों का लक्ष्य एक

माँ ने सभी धर्मों की सार्वभौमिकता को प्रकट किया और इस बारे में समुचित सलाह दी कि सभी धार्मिक मत जिस चरम सत्य को मानते है- वह है 'ईश्वर'। माँ को सभी धार्मिक विधि-विधानों का पूर्ण ज्ञान एवं अनुभूति थी। माँ ने एक बार कहा था- "तुम्हें नहीं मालूम कि तुम कौन हो? तुम अपने को एक हिन्दू, एक मुसलमान या एक ईसाई समझ रहे हो। वास्तविक सत्य यह है कि तुम एक आत्मा हो।" उन्होंने यह भी कहा था- "धर्म वे हैं जो सभी को एक साथ बांधकर रखते हैं तथा ईश्वर की ओर जाने को प्रेरित करते हैं। कोई धार्मिक पन्थ उन गतिविधियों को अपनाता है जो सर्वोच्च के पथ पर ले जाने में सहायता करती हैं।" एक अन्य अवसर पर माँ ने कहा था- "तुम अपनी यात्रा वहां से शुरू करो जहां तुम अभी खड़े हो। यदि तुम सही ढंग से आगे बढ़ोगे तो तुम्हारी समझ में यह आ जाएगा कि विभिन्न धर्मों की सभी दिशाएं एक ही लक्ष्य की ओर ले जाती है।" माँ के अनुसार सभी धर्मों के संदेशों का सार एक ही है; विवाद बाहरी प्रतीकों एवं रीति-रिवाजों के कारण हैं। माँ के विचार इतने सार्वभौम थे कि उनके पास सभी धार्मिक मतों के लोग आते थे तथा उनके दर्शन एवं वचनों को सुनकर वे पूरी तरह संतुष्ट हो जाते थे।

माँ धार्मिक परम्पराओं के समर्थन, संरक्षण एवं प्रोत्साहन के सदैव पक्ष में रहती थीं। कई बार आश्रम में रहने के दौरान विदेशियों को निषेधों का सामना करना पड़ता था जिससे उनको कष्ट होता था तथा उनकी अहं की भावना को ठेस लगती थी। यद्यपि वे बाद में इस बात को अनुभव करते

थे कि इस कष्ट को सहने के कारण अतत: उनका ही भला हुआ। सत्य यही है कि किसी व्यक्ति के मन एवं अहं को जब तक कष्ट के साथ कभी-कभी ठेस नहीं लगती, वह अपनी साधना में कोई प्रगति नहीं कर पाता। इसके अलावा यदि इन निषेधों का पालन नहीं किया जाता तो आम रूढ़िवादी भारतीय हिन्दुओं के लिए माँ के पास उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए आना कठिन हो जाता, जबकि इस प्रकार के निषेधों से विदेशियों सहित किसी को भी माँ के पास आने में कोई अड़चन नहीं होती थी। **माँ कुछ भी मिटाने नहीं, परिपूर्ण करने आई थीं।**

धार्मिक मुसलमानों ने तो माँ के पास उसी समय से आना शुरू कर दिया था जब वे ढाका एवं तारापीठ में थीं। एक बार एक मुस्लिम फकीर ने निस्संकोच यह बताया था कि जब भी वह नमाज अदा करता है तो उसके दिल में माँ का ज्योतिपूर्ण चेहरा प्रकट हो जाता है। इसीलिए वह अपने अल्लाह यानी माँ को देखने के लिए उनके पास चला आता है। इसी प्रकार देहरादून का एक पक्का मुस्लिम माँ के पास तब आया जब मक्का मदीना में हज करने के दौरान एक सिद्ध अरबी फकीर ने उसे माँ के सम्पर्क में आने के बारे में बताया था। माँ की कृपा से उसे अध्यात्म के क्षेत्र में वह मिल गया जिसकी उसे आकांक्षा थी।

एक ईसाई पादरी ने कहा था कि पवित्र बाइबिल में प्रभु के स्वरूप के बारे में जो भी विवरण दिए गए हैं, हम उन्हें समग्रता से माँ के दिव्य शरीर में देख सकते हैं। इसी कारण वह अपने स्थान से लम्बी दूरी तय कर माँ के पास आता है। एक सिख श्रद्धालु ने कहा कि उसने माँ के वचनों में वही सब कुछ पाया जो पवित्र गुरु ग्रन्थ साहिब में लिखा है। उसने माँ के समक्ष गुरु ग्रन्थ के कुछ अंश का पाठ की अनुमति भी मांगी। माँ ने उसे प्रसन्नतापूर्वक इसकी अनुमति दे दी क्योंकि वे विभिन्न धर्मों में कोई भेद नहीं करती थीं।

श्री माँ सभी धर्मों एवं मतों को ईश्वर अनुभूति का प्रामाणिक पथ मानती थीं। उन्होंने स्वयं अपना कोई मत या धर्म या सम्प्रदाय नहीं बनाया। माँ ने इस बात पर बल दिया था, ''सभी धर्मों को साथ लेकर चलना ही इस शरीर का सम्प्रदाय है। साधकों के मतों पर ध्यान दिये बिना उनके लिए इस शरीर से अनुकूल कार्य हो जाते हैं ताकि उनके स्वयं के आध्यात्मिक

पथ पर उनकी प्रगति हो सके। उनकी सच्ची जिज्ञासा के परिणामस्वरूप ही ऐसे अनुकूल कार्य हो जाते हैं।''

एक दिन एक श्रद्धालु ने पूछा, ''क्या वास्तव में भगवान हैं? क्या उन्हें देखा जा सकता है?'' माँ ने कहा, ''जिस प्रकार तुम्हारा अस्तित्व है, उसी प्रकार भगवान का भी अस्तित्व है। यदि तुम पर्दा हटा सकते हो तो तुम उनको पा जाओगे जो स्वतः प्रकाशित हैं। जिस प्रकार से एक बीज के अंदर पूरा वृक्ष रहता है उसी प्रकार से भगवान अपने पूर्ण भव्यता के साथ तुम्हारे भीतर हैं।'' उसने फिर संदेह जताते हुए माँ से पूछा, ''तो फिर वे हमारे कष्टों को क्यों नहीं समझते हैं और वे इतना निर्मम क्यों है?'' माँ का उत्तर था, ''वे निर्मम नहीं हैं। वे तुम्हें अपने पास लाने का विधान रचते हैं क्योंकि तुम भोग विलास एवं दुखों में बुरी तरह डूबे रहते हो। वे स्वयं ही अपने साथ खेल रचाते हैं और यही उनकी लीला है।''

पश्चिमी देश का एक नास्तिक युवक माँ से वृंदावन आश्रम में मिला। उसने माँ को बताया कि उसे धर्म या ईश्वर पर कोई विश्वास नहीं है। उसने माँ से वह तरीका बताने का अनुरोध किया जिससे उसे मानसिक शांति मिल सके। माँ ने उससे कहा, ''तुम धर्म या ईश्वर में विश्वास नहीं करते किन्तु निश्चित तौर पर तुम कुछ नियमों का तो पालन करते होगे।'' कुछ समय विचार करने के बाद युवक ने कहा कि वह केवल सामाजिक नियमों का पालन करता है। इस पर माँ ने कहा–''सामाजिक नियम संदेश देते हैं –(1) यदि कोई कुछ पूछता है तो सत्य बताना चाहिए। इसलिए तुम सदैव 'सत्य' बोलोगे। (2) अपने आसपास के लोगों की अपनी क्षमताओं के अनुसार मदद करोगे जिसे 'सेवा' कहते हैं। (3) समाजिक नियमों में अच्छे लोगों की संगत करने पर बल दिया जाता है, जो 'सत्संग' कहलाता है। (4) यदि तुम छात्र हो तो तुम अपना ध्यान पढ़ाई पर केन्द्रित करोगे और यदि तुम नौकरी करते हो तो पूरी गंभीरता एवं निष्ठा से अपना काम करोगे जिसे 'स्वाध्याय' कहते हैं। इस प्रकार यदि तुम इन चारों सामाजिक नियमों का पालन करोगे तो तुम्हें निश्चित तौर पर मानसिक शांति मिलेगी। हालांकि मात्र पहले नियम का पालन करने से शेष तीनों का अनुपालन अपने आप होने लगेंगे।''

मानसिक शांति प्राप्त करने के लिए माँ ने एक बार कहा था–

''जब तक अपनी इच्छाएं हैं, शांति नहीं आ सकती। शांति तभी प्राप्त की जा सकती है जब अपनी इच्छा को भगवान की इच्छा में मिला दिया जाए।'' माँ ने यह भी कहा था- ''तुम कष्ट इसलिए पाते हो क्योंकि तुम स्वामी और मालिक बनना चाहते हो। मालिक न बनो बल्कि माली बनो, तब तुम देखोगे कि तुम्हारें सारे कष्ट दूर हो जाएंगे।''

अध्याय-षष्ठम्

वाराणसी में माँ के आश्रम की स्थापना

श्री माँ जब भी वाराणसी (काशी) पहुंचती थीं तो उनके पास श्रद्धालुओं का तांता लगा रहता था। यद्यपि वहां कोई ऐसी जगह नहीं थीं जहां वे माँ से सुविधापूर्वक मिल सकें। माँ प्राय: गंगा तट पर एक नौका पर रुकती थीं और वहीं श्रद्धालुओं से मिलती थीं। गुरुप्रिया दीदी को इस बात की बहुत आवश्यकता प्रतीत हो रही थी कि गंगा नदी के किनारे कोई उपयुक्त भूमि लेकर उस पर आश्रम का निर्माण करवाया जाए किन्तु वह समुचित जगह को लेकर कुछ निश्चिय नहीं कर पा रही थीं।

एक दिन श्री माँ एवं गुरुप्रिया दीदी लखनऊ रेलवे स्टेशन के वेटिंग रूम में बैठकर अपनी ट्रेन के आने की प्रतीक्षा कर रही थीं। माँ ने दीवार पर वाराणसी शहर का एक नक्शा टंगा देखा। इसी दीवार के पास एक मेज भी रखी हुई थी। माँ कूदकर मेज पर चढ़ गईं तथा उन्होंने नक्शे पर दर्शाया गया गंगा नदी के तट पर अस्सी एवं भदैनी घाट के बीच एक स्थान की ओर इशारा किया और कहा, "दीदी, यह रहा तुम्हारा आश्रम।" वर्ष 1942 में ठीक उसी स्थान पर आश्रम के लिए जमीन मिल गई। गुरुप्रिया दीदी के अथक प्रयासों के कारण अंतत: जनवरी 1944 में जमीन के हस्तान्तरण का पंजीकरण हो गया। माँ उस समय अल्मोड़ा में थीं। माँ ने वहीं से देखा कि वाराणसी में आश्रम के लिए ली गई भूमि पर बौने आकार के कई सूक्ष्म शरीरधारी महात्मागण खुशी से नाच रहे हैं। माँ ने उसी समय खुलासा कर दिया कि दीदी को अंतत: आश्रम के लिए जमीन मिल गई है। माँ ने संकेत किया कि यह स्थल प्राचीन काल से एक पवित्र एवं तपोभूमि है। ऐसा कहा जाता है कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी वहां तपस्या की थी। काशी पंचांग के अनुसार प्राचीन काल में वहां एक विशाल शिव मंदिर था।

काशी आश्रम के भूमि पर वर्ष 1944 में पहली बार श्री माँ का पदार्पण हुआ। टिन की छत वाला एक अस्थायी कमरा वहां बनाया गया तथा वहीं आश्रम की पहली वासंती दुर्गा पूजा का आयोजन किया गया। उसके बाद से यह दुर्गा पूजा हर वर्ष चैत्र नवरात्र के दिन यहां आयोजित की जाती है। पूजा परिसर को अब 'चंडी मण्डप' कहा जाता है। गुरुप्रिया

दीदी के अथक प्रयासों के कारण श्री माँ के इस भव्य एवं सुंदर आश्रम का निर्माण वर्ष 1945 में पूर्ण हुआ। तीन दशकों तक यह आश्रम कई पवित्र एवं दिव्य मातृलीलाओं का केन्द्र रहा। बड़े-बड़े विद्वान यहां आकर श्री माँ के संग अनेक बार धार्मिक विचार विमर्श किया। जटिलतम प्रश्नों का सहज सरल भाषा में माँ का उत्तर सुनकर सभी अचम्भित हो जाते थे। ढाका से माँ के एक परम भक्त प्रोफेसर अमूल्य कुमार दत्तगुप्त ने इन सत्संग और विचार विमर्श का ब्यौरा अपनी डायरियों में लिख रखा था। इन डायरियों को बाद में कई खण्डों में बांग्ला भाषा में प्रकाशित किया गया और इन्हें अमूल्य माना जाता है। इनमे से कई खण्डों का हिन्दी, गुजराती एवं अंग्रजी भाषाओं में भी अनुवाद किया गया है। हिन्दी में दत्तगुप्तजी की डायरियां "श्री श्री माँ आनन्दमयी प्रसंग" शीर्षक से कई भागों में प्रकाशित हुई हैं। शेष भागों का अनुवाद कार्य जारी है।

वर्ष 1950 में आश्रम में पहली मंजिल पर एक छोटा किन्तु सुन्दर अन्नपूर्णा मंदिर बनवाया गया। यहां माँ अन्नपूर्णा का वही विग्रह प्रतिष्ठित किया गया जो देश विभाजन के पूर्व ढाका के रमणा आश्रम से लाया गया था और इसे दीपावली की रात में विधि-विधान के साथ स्थापित किया गया। माँ ने ढाका से आये आश्रम के अतुल ब्रह्मचारी को माँ अन्नापूर्णा की नित्य पूजा की जिम्मेदारी सौंपी। उन्होंने वर्ष 1995 में अपने देहान्त होने तक इस दायित्व को पूरी गंभीरता से निभाया। माँ अन्नपूर्णा को नित्य एक निश्चित मात्रा में अन्नभोग व अन्य व्यंजन अर्पित किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त दिवाली के बाद शुक्ल प्रतिपदा तिथि में 'अन्नकूट' के दिन अन्नपूर्णा माँ को सवा मन चावल तथा विभिन्न प्रकार के करीब सौ से अधिक व्यंजनों का भोग लगाया जाता है। उस दिन सैकड़ों श्रद्धालु आश्रम आकर माँ अन्नपूर्णा का भोग का दर्शन एवं प्रसाद ग्रहण करते हैं। माँ ने कहा था, "जब तक माँ अन्नपूर्णा की नित्य पूजा होती रहेगी और उन्हें समुचित ढंग से अन्न भोग चढ़ाना जारी रहेगा, माँ के आश्रमों में कभी अन्न की कमी नहीं होगी।" इस आश्रम भवन की जब नींव खोदी जा रही थी तो वहां से दो शिवलिंग निकले थे जिन्हें बाद में अन्नपूर्णा मंदिर में स्थापित किया गया। श्री माँ ने उन्हें 'स्वयंभू' एवं 'विश्वनाथ' नाम दिया।

माँ का एक वयोवृद्ध भक्त गोपालजी की काले पत्थर से बनी एक

सुंदर प्रतिमा लेकर आश्रम आये थे। कहा जाता है कि यह प्रतिमा हजार वर्ष से अधिक प्राचीन है। पहले यह प्रतिमा पूर्वी बंगाल के किसी राजघराने के पास थी। उस समय आक्रमणकारियों द्वारा गोपालजी की प्रतिमा को क्षति पहुंचाने की आशंका को देखते हुए उस प्रतिमा को एक पण्डित के माध्यम से बंगाल से बाहर काशी भिजवा दिया गया था। धन की कमी के कारण नित्य पूजा एवं भोग की व्यवस्था करने में असुविधा हो जाने से इस प्रतिमा की देखरेख करने वाला इसे आश्रम में माँ को देने के लिए ले आया। इस प्रकार 9 अगस्त 1954 को गोपालजी माँ के आश्रम में पधारे और उन्हें अन्नपूर्णा मंदिर के बगल वाले कमरे में रखा गया। कई लोगों को गोपालजी की उपस्थिति का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। एक बार किसी एस्टेट की रानी माँ के पास आई हुई थीं। उन्हें एक दिन दर्शन हुआ कि गोपालजी उनके गले के हार मांगते हुए उनकी ओर हाथ बढ़ा रहे हैं। ऐसा ही एक-दो बार और देखने के बाद उन्होंने मन ही मन तय कर लिया कि यदि माँ स्वयं मांगे तो वह हार दे देंगी। वे आश्चर्यचकित हो गये जब माँ के कमरे में प्रवेश करते ही उन्होंने देखा कि माँ ने उनकी ओर जैसे कुछ लेने के लिए अपना हाथ बढ़ा दिया हो। रानी ने अपने गले का हार खोलकर माँ के हाथ में सौंप दिया। माँ ने उसे गोपालजी को पहनाने के लिए कह दिया। गोपालजी की ऐसी कई लीलाएं यहां घटित हुई हैं।

मुख्य आश्रम का निर्माण होने के बावजूद शेष निर्माण कार्य समाप्त नहीं हुआ था। आश्रम का भव्य सत्संग हॉल गंगा नदी के तट पर बनाया गया था किन्तु यह बाढ़ के पानी के चपेट के कारण क्षतिग्रस्त हो गया था जिस कारण वर्ष 1954 में इसे तोड़ना पड़ा। इसलिए आश्रम के बगल में एक और जमीन ली गई तथा गुरुप्रिया दीदी के सहयोग से उस पर श्री श्री माँ का भव्य मंदिर तथा एक सत्संग हॉल का निर्माण करवाया गया। इस मंदिर के वास्तु (आर्किटेक्चर) की डिजाइन प्रसिद्ध फ्रांसीसी वास्तुकार ला-कार्बुसो एवं तत्कालीन पंजाब के चीफ इन्जीनियर एवं माँ के भक्त श्री पी एल वर्मा ने तैयार की थी। कार्बुसो ने ही पंजाब एवं हरियाणा राज्यों की संयुक्त राजधानी चंडीगढ़ की डिजाइन बनाई थी।

माँ के नवनिर्मित मंदिर का उद्घाटन 30 अप्रैल 1968 को अक्षय तृतीया तिथि के पवित्र अवसर पर किया गया। मंदिर के गर्भगृह में संगमरमर

की सुंदर डिजाइन वाली वेदी बनाई गई थी जिस पर चार विभिन्न दिशाओं में मुख करे माँ की चार प्रतिमाएं स्थापित की जानी थी। वेदी के ठीक बीच में एक संगमरमर का स्तम्भ स्थापित किया गया जिसकी ऊंचाई माँ के शरीर की ऊंचाई के बराबर रखी गयी। चूंकि उन दिनों माँ जीवित थीं इस लिए इस वेदी पर माँ की प्रतिमाएं स्थापित नही की गई। माँ के निर्देशानुसार वेदी पर चंदन की लकड़ी से बना सुन्दर सिंहासन रखा गया जिस पर उपरोक्त गोपालजी की प्रतिमा अस्थाई रूप से स्थापित की गई। मन्दिर के उद्घाटन के पहले ही गर्भगृह में प्रवेश के मुख्यद्वार के ऊपर सफेद पत्थर पर लिखवा दिया गया था – 'श्रीभगवान परमात्मा स्वरूप'।

लगभग दो दशक के बाद चन्दन सिंहासन सहित गोपालजी की प्रतिमा को इसी मन्दिर की पहली मंजिल पर ले जाया गया तथा कांसे से बने माँ के तीन विग्रह संगमरमर की वेदी पर वर्ष 1987 में अक्षय तृतीया तिथि के पवित्र अवसर पर स्थापित किए गए। तीन विग्रहों के मुख तीन दिशाओं की ओर रखे गये। बहुत बाद में अप्रैल 2011 में कांसे से बना माँ का चौथा विग्रह भी उन तीन विग्रहों के पीछे चौथी दिशा में स्थापित कर दिया गया। इस प्रकार चार विभिन्न भावों वाले माँ के चार विग्रहों की स्थापना हो गई जैसा कि गुरुप्रिया दीदी को बहुत पहले इस प्रकार के दिव्य दर्शन हुए थे। माँ का इन प्रतिमाओं में प्रदर्शित चार भाव हैं– 'भक्ति भाव', 'ब्रह्मचारी भाव', 'शंकर भाव' एवं 'बुद्ध भाव'।

शिव मंदिर के समीप माँ की माताजी दीदीमा (मुक्तानन्द गिरिजी) के नाम पर एक छोटा-सा मंदिर निर्मित किया गया जहां पांच श्वेत संगमरमर के शिवलिंग स्थापित किए गए। बाद में माँ की उपस्थिति में अप्रैल 1974 में दीदीमा की संगमरमर की एक प्रतिमा भी वहीं स्थापित की गई।

गुरुप्रिया दीदी के असीम उद्योग के फलस्वरूप आश्रम के समीप एक बड़ी सा भूमि लेकर सुन्दर अस्पताल का निर्माण किया गया। अस्पाल सेवा के लिए माँ ने कहा था "रोग रूपी जन-जनार्दन सेवा"। भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने माँ की उपस्थिति में 26 दिसंबर 1968 को इस अस्पताल का उद्घाटन किया। श्री श्री माँ आनन्दमयी अस्पताल को वाराणसी के अच्छे अस्पतालों में शामिल किया जाता है। इसी परिसर में एक और सामाजिक सेवा "माँ आनन्दमयी करुणा" के नाम से

सन् 1951 से संचालित हो रही है। यहां रोगियों की होम्योपैथिक चिकित्सा, बच्चों को नित्य दुग्ध वितरण, साधुओं एवं विधवाओं को निःशुल्क गर्म कपड़ों के वितरण का प्रबंध तथा होनहार बच्चों की शिक्षा के लिए मासिक छात्रवृत्ति की व्यवस्था की जाती है।

श्री श्री माँ आनन्दमयी कन्यापीठ

माँ के ख्याल के अनुसार ब्रह्मचारिणी कन्याओं के लिए कन्यापीठ का प्रारम्भ 25 दिसंबर 1938 को माँ की उपस्थिति में हरिद्वार की 'पीतकुटी' में हुआ था। उस समय इसका श्रीगणेश मात्र दो छात्राओं के साथ ही हुआ था। वर्ष 1945 में जब आश्रम में "कन्यापीठ ब्लॉक" का निर्माण करवाया गया तब इस संस्थान को वाराणसी में अपना स्थायी ठिकाना मिल गया। प्राचीन ऋषियों की बनाई गई परम्पराओं के अनुरूप कन्याओं को शिक्षा देना एवं उसी तरह उनका चरित्र ढालना कन्यापीठ का आदर्श है। इसीलिए कन्यापीठ को पूरी तरह से आवासीय बनाया गया। आज यह एक आदर्श संस्थान बन गया है जहां प्रत्येक छात्रा एक ब्रह्मचारिणी का जीवन व्यतीत करते हुए शिक्षा ग्रहण करती है। वे केवल पीत वस्त्र ही धारण करती हैं तथा बाहर का कोई भी भोजन करने से परहेज करती हैं। यह सब माँ की कृपा तथा गुरुप्रिया दीदी के अथक प्रयासों से सम्भव हो पाया।

यह संस्थान वाराणसी के सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है। संस्कृत की उच्च कोटि की शिक्षा के अलावा यहां संगीत में भी प्रशिक्षण दिया जाता है। शास्त्रीय संगीत की परीक्षा इलाहाबाद की प्रख्यात संस्था 'प्रयाग संगीत समिति' के तहत करवायी जाती है। कन्यापीठ में लड़कियों को कला एवं शिल्प, सिलाई-कढ़ाई-बुनाई तथा पाक कला जैसे घरेलू कार्यों का भी प्रशिक्षण दिया जाता है। यद्यपि मुख्य ध्यान उनके नैतिक चरित्र के निर्माण तथा धार्मिक रुझान की ओर दिया जाता है।

माँ ने कहा था कि कन्यापीठ एवं विद्यापीठ की स्थापना के पीछे भाईजी के बहुत से आदर्श जुड़े हुए हैं। भाईजी का कहना था कि अत्यन्त भाग्यशाली ही यहां शिक्षा ग्रहण करने के लिए आ सकेंगे। वे चाहते थे कि प्रत्येक विद्यार्थी की प्रतिभा के विकास के लिए अवसर एवं गुंजाइश होनी चाहिए। जीवनयापन के लिए शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक जीवन का बहुत

गहरा सम्बन्ध होना चाहिए। भाईजी का मानना था कि शिक्षा पद्धति में सेवा व साधना गुथी होनी चाहिए। सत्य पथ का अनुसरण करने वाले व्यक्ति के लिए सत्य की रक्षा और पालन स्वाभाविक रूप से होता रहता है।

कन्यापीठ में ऋषिकुल परम्पराओं एवं शिक्षा का अनुसरण किया जा रहा है। वाराणसी के विद्वान एवं पंडित वहां की लड़कियों द्वारा संस्कृत में धाराप्रवाह वार्तालाप को सुनकर आश्चर्य में पड़ जाते हैं। उनका अनुशासित एवं आत्म संयमित व्यवहार, उनका प्रशिक्षण एवं पूजा की व्यवस्था में हर काम को त्रुटिविहीन ढंग से करना, अन्न-भोग को पकाने और अर्पित करने की शैली तथा साधना के अनुरूप उनकी दिनचर्या ऐसी है जो अतुलनीय है। कन्यापीठ की जो लड़कियां शिक्षा उपरान्त गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करती हैं वे भी अपने साथ गहरी धार्मिक भावना एवं नैतिक चरित्र की छाप लेकर जाती हैं।

अभी तक कन्यापीठ की प्रधान अध्यापिका के पद पर केवल अति शिक्षित ब्रह्मचारिणियों का ही चयन किया गया है। इनमें चंदन दीदी, जया दीदी, डॉ. गीता, एवं डॉ. गुणीता शामिल हैं। इन सभी की शिक्षा कन्यापीठ में ही हुई थी तथा वे बचपन से वहीं रहीं। इनके अलावा ब्रह्मचारिणी शिक्षिकाएं क्षमा दीदी, बिल्वजी, गंगा दीदी, विशुद्धा दीदी, सतीदी, कांतिजी, बानीदी, मालादी, इन्दुजी तथा कई अन्य ने कन्यापीठ के विकास के लिए गुरुप्रिया दीदी के मार्गदर्शन में काफी गंभीरता से काम किया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कई अनुभवी प्राध्यापकों ने आगे आकर संस्थान की मदद की और छात्राओं का मार्गदर्शन किया। इनमें प्रमुख नाम हैं डॉ. पद्मा मिश्रा, डॉ. बीथिका मुखर्जी, डॉ. ललिता पाठक एवं डॉ. कृष्णा बनर्जी ; सभी अविवाहित रहीं तथा सभी माँ की परम भक्त थीं।

श्री श्री माँ आनन्दमयी विद्यापीठ बालकों के लिए

एक बार श्री माँ भाईजी के साथ मसूरी गई हुई थीं। उन्होंने एक पहाड़ की चोटी से बालकों का एक स्कूल देखा और गौर किया कि स्कूल की घण्टी बजने पर बच्चों ने कैसे तुरंत खेलना रोक दिया और वे चुपचाप अपनी कक्षाओं में चले गए एवं पढ़ाई करने के लिए तैयार हो गए। यह देखकर माँ बहुत प्रभावित हुईं तथा उन्होंने भाईजी से कहा, "क्या हम

बच्चों को इसी तरह प्रार्थना में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित नहीं कर सकते?'' उसके बाद भाईजी ने बालकों के लिए एक विद्यालय की योजना बनानी शुरू की जिसमें बालकों को बचपन से ही वैदिक ऋषिकुल परम्परा के वातावरण में शिक्षा दी जा सके। साथ ही जीवनयापन के लिए समर्थ बनाने की दृष्टि से उन्हें वहां आधुनिक शिक्षा भी दी जाए।

माँ सदैव कहती थीं कि चरित्र निर्माण शिक्षा के लिए बचपन से ही ब्रह्मचर्य एवं आत्मानुशासन महत्वपूर्ण है जैसा कि प्राचीन वैदिक कालीन समय में होता था। ब्रह्मचर्य पर माँ विशेष बल देती थीं जो कि अगले तीन अन्य आश्रमों - गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास का निर्बाध पालन महत्वपूर्ण नींव है तथा इससे समाज में शांति एवं कल्याण की सम्भावना मजबूत होती है।

इन आदर्शों को ध्यान में रखकर वर्ष 1942 में देहरादून के किशनपुर आश्रम में श्री श्री माँ आनन्दमयी विद्यापीठ प्रारम्भ किया गया था ताकि दिवंगत भाईजी की इच्छा की पूर्ति हो सके। बाद में इसे रायपुर आश्रम में स्थानांतरित किया गया और यह कुछ समय के लिए वहीं रहा। इसे स्थायी स्वरूप देने के उद्देश्य से हिमालय के ऊंचाई वाले क्षेत्र अल्मोड़ा आश्रम में ले जाया गया। यद्यपि जाड़ों के मौसम में इसे हरिद्वार में महाराजा सोलन के 'बघाट हाउस' अथवा माँ के वृंदावन आश्रम में ले जाया जाता था।

विद्यापीठ पूरी तरह से आवासीय विद्यालय था जिसमें बालकों को भोजन, पुस्तकादि एवं परिधान के लिए पीत वस्त्र आदि निशुल्क उपलब्ध कराए जाते थे। सोलन महाराज जब तक जीवित रहे, वे विद्यापीठ के अधिकतर व्यय को स्वयं वहन करते थे। शैलेश ब्रह्मचारी (बाद में स्वामी शिवानन्दजी) इस संस्थान के तीन दशक तक प्रधान अध्यापक रहे। एक प्रेम करने वाले पिता एवं स्नेहशील माता की तरह वे अपने छात्रों की जिम्मेदारी के साथ देखभाल करते थे।

आश्रम में शामिल होने के बाद ब्रह्मचारी पानुदा भी वहां रहे और करीब एक दशक तक विद्यापीठ के बच्चों को पढ़ाया। उन्होंने कोलकाता प्रेसीडेन्सी कालेज से एम.ए प्रथम स्थान में उत्तीर्ण किया था। एक बार उन्होंने किसी बच्चे की गलती पाने के बाद उसके कोमल गाल पर कसकर तमाचा मारा। उस समय माँ अल्मोड़ा आश्रम में ही थीं और उन्होंने पानुदा को बुलवाया। माँ ने पानुदा से उनका गाल देखने को कहा जो लाल पड़ गया था। पानुदा यह देखकर हैरत में पड़ गए कि उनकी अंगुलियों के

निशान भी माँ के गाल पर स्पष्ट रूप से उभर आए थे। इसके बाद पानुदा जब तक वहां रहे उन्होंने किसी भी छात्र के साथ इस तरह का व्यवहार कभी नहीं किया।

श्री माँ के महाप्रयाण के बाद विद्यापीठ करीब एक दशक तक बंद रहा। बहरहाल, श्री श्री आनन्दमयी संघ के तत्कालीन जनरल सेक्रेटरी स्वामी स्वरूपानन्द जी के प्रयासों से यह हरिद्वार के कनखल आश्रम में वर्ष 1993 से फिर शुरू हो गया। माँ के परम भक्त तथा चैरिटेबल सोसाइटी के अध्यक्ष डॉ. गुणेन राय की सहायता से उस समय विद्यापीठ के भूतल का निर्माण करवाया गया। उत्तराखण्ड सरकार की मान्यता प्राप्त करने के लिए विद्यालय भवन के प्रत्येक कक्ष का आकार बड़ा करना था। इंजीनियर सोमूदा की डिजाइन एवं उनके देखभाल से इसके भूतल पर सारी सुविधाओं वाले पढ़ाई के कक्ष तथा इसके पहले तल पर सुसज्जित छात्रावास निर्मित किया गया जहां 48 छात्रों के रहने के लिए सम्पूर्ण सुविधा उपलब्ध है। इस प्रकार श्री श्री आनन्दमयी विद्यापीठ का अब समुचित विद्यालय भवन है। साथ ही यहां खेल का एक बड़ा मैदान है। यह पूरी तरह से आवासीय तथा छात्रों के लिए नि:शुल्क है। अब उत्तराखण्ड सरकार ने इसे कक्षा छह से आठ तक के लिए मान्यता भी प्रदान कर दी है। हाईस्कूल तक मान्यता पाने का प्रयास जारी है।

पश्चिमी त्रिपुरा के अगरतला में एक और विद्यापीठ चल रहा है किन्तु वह आवासीय नहीं है। यह अंग्रेजी माध्यम वाला स्कूल है जहां करीब 400 स्थानीय छात्रों को आधुनिक शिक्षा प्रदान की जाती है। श्री आर. एन. चक्रवर्ती एवं अन्य के अथक प्रयासों के कारण आज इसे अगरतला के प्रख्यात स्कूलों में शामिल किया जाता है। इस विद्यापीठ की अपना तिमंजिला विशाल भवन एवं बच्चों के लिए अपनी स्कूल बस भी है।

वाराणसी आश्रम में सावित्री महायज्ञ

माँ के ख्याल के अनुसार वाराणसी आश्रम में पौष संक्रांति के शुभ अवसर पर 14 जनवरी 1947 को सावित्री महायज्ञ का शुभारम्भ हुआ। अभूतपूर्व स्तर पर हुआ यह यज्ञ तीन वर्ष तक चला। ढाका शाहबाग में सन् 1926 में कालीपूजा के उपलक्ष्य में माँ द्वारा जो यज्ञाग्नि प्रज्ज्वलित हुई थी

एवं यज्ञोपरान्त उसे अखण्डरूप से संरक्षित रखा जा रहा था, उसी अग्नि से इस यज्ञ के लिए अग्नि प्रज्ज्वलित की गई। ढाका में माँ ने उसी समय यह संकेत किया था कि इस पवित्र अग्नि का उपयोग बाद में एक महायज्ञ के लिए किया जाएगा। इस प्रकार माँ की यह भविष्यवाणी दो दशक बाद चरितार्थ हुई।

माँ से अनुरोध किया गया था कि वे ही यज्ञशाला के स्थल का चयन कर दें। माँ ने आश्रम भूमि के मध्य में इसके लिए स्थान तय करने का निर्देश दिया। जब यज्ञशाला के लिए उपयुक्त मध्यस्थल का निर्धारण सम्भव नहीं हो सका तो माँ ने स्वयं ही जाकर सही स्थान दिखा दिया। आश्रम भूमि का समुचित माप लेने के बाद पता चला कि माँ ने जिस स्थान को इंगित किया था वह आश्रम के ठीक मध्य में स्थित है। बाद में माँ ने खुलासा किया कि जब भूमि का पंजीकरण करवाया गया था, उस समय उन्होंने अल्मोड़ा में देखा था कि इसी जगह पर सूक्ष्म रूप में कई बौने संत आनन्द से झूम रहे हैं। उसके बाद वहां एक सुन्दर यज्ञशाला का निर्माण करवाया गया।

विश्व शांति के संकल्प के साथ सावित्री महायज्ञ का श्रीगणेश हुआ था। महायज्ञ आरम्भ होने के सात माह बाद 15 अगस्त 1947 को भारत को ब्रिटिश शासन से स्वाधीनता मिली तथा 14 जनवरी 1950 को इसकी पूर्णाहुति के कुछ ही दिन बाद 26 जनवरी को भारत एक गणतंत्र देश बना। लगता है इस विशाल सावित्री महायज्ञ का सम्पादन के साथ भारत की स्वाधीनता प्राप्ति का विशेष संयोग रहा। इन तीन वर्षों में महायज्ञ की पवित्र अग्नि में तीस लाख आहुतियां दी गई और इस अवधि में ग्यारह हजार ब्राह्मणों को भोजन करवाया गया। इतने अधिक संसाधनों की आवश्यकता वाले इस महायज्ञ का आरम्भ मात्र पांच सेर गाय के देशी घी के भण्डार से शुरू किया गया था। माँ की असीम कृपा के फलस्वरूप यह महायज्ञ बिना अधिक कठिनाई के सम्पन्न हुआ।

इस महायज्ञ के मुख्य होता थे श्री अग्निसत्व शास्त्री (बाटुदा)। महायज्ञ सम्पन्न करते समय सारे शास्त्रीय विधानों का पूरी तरह से पालन किया गया। बाटुदा उन गिन-चुने लोगों में एक थे जिन्हे चारों वेद कंठस्थ थे। वे स्वयं एक अच्छे साधक थे और अपने तीन पूर्व जन्मों की स्मृति रहने

के कारण भी उनकी ख्याति थी। उनके पिता एक सिद्ध संत थे। इस महायज्ञ में तपनदा (अब स्वामी निर्मलानन्द) एवं दाशूदा, दोनों ही विद्यापीठ के छात्र तथा कुसुमदा (स्वामी निर्वाणानन्द) ने होता की भूमिका निभायी थी। तीनों अपने पूरे जीवन आश्रम में ब्रह्मचारी बने रहे।

सावित्री महायज्ञ की पूर्णाहुति के दिन वाराणसी आश्रम में कई विख्यात महात्मा, साधु, संत तथा देश-विदेश के कई श्रद्धालु पधारे थे। पंजाब से हरिबाबा, त्रिवेणी पुरीजी एवं अवधूत महाराजजी, उत्तरकाशी से देवीगिरी जी, इलाहाबाद से प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी एवं गोपाल ठाकुर, वृंदावन से शरणानन्दजी, अखण्डानन्दजी एवं चक्रपाणिजी तथा कई अन्य आध्यात्मिक विभूति सावित्री महायज्ञ की पूर्णाहुति के अवसर पर उपस्थित थे।

यज्ञ की संचालन के लिए गुरुप्रिया दीदी ने अथक परिश्रम किए थे। महायज्ञ की पूर्णाहुति के दिन उन्हें एक अनूठा दिव्य दर्शन हुआ। उन्होंने देखा कि यज्ञ की विशाल अग्निशिखा में से पहले 'यज्ञेश्वर' की विशाल प्रतिमा और फिर श्री श्री माँ का विशाल स्वरूप निकलकर आकाश में विलीन हो गया। माँ ने स्वयं गुरुप्रिया दीदी द्वारा किए गए दर्शन की पुष्टि की थी।

माँ के आश्रम के एक बहुत वरिष्ठ साधु स्वामी भास्करानन्दजी ने एक अनूठी घटना का वृत्तांत सुनाया था। उन दिनों भगवान श्रीराम के एक अनुभूत भक्त महात्मा अयोध्या में सरयू नदी के तट पर साधना कर रहे थे। उन्हें यह दिव्य दर्शन हुए कि स्वयं श्रीराम वाराणसी में 'सावित्री महायज्ञ' कर रहे हैं। इसलिए वे उस स्थान का दर्शन करने के लिए वाराणसी आ गये और ढूंढते हुए माँ के आश्रम में यज्ञ स्थल पर पहुंच गए। उन्होंने पाया कि सारे भवन एवं आसपास की जगह बिल्कुल वैसी ही थी जैसा कि उन्हें अयोध्या में दर्शन हुए थे। बस एक यही अंतर था कि उन्होंने जिन भगवान राम का दर्शन किया था उनके स्थान पर यहां स्वयं माँ थीं। इस प्रकार उन्हें श्रीराम एवं माँ में अभिन्नता का बोध हुआ।

इस महायज्ञ की पवित्र यज्ञाग्नि को अभी तक सुरक्षित रखा गया है तथा वाराणसी, कनखल एवं नैमिषारण्य आश्रमों की यज्ञशाला में इसी अखण्ड यज्ञाग्नि में नित्य यज्ञ किया जाता है। माँ के महाप्रयाण के बाद एक समय वाराणसी आश्रम में हवन कार्य में ढिलाई को देखा गया। आश्रम के परिचालक ब्रह्मचारी पानुदा को माँ ने स्वप्न में दर्शन देकर आगाह किया

एवं यहां तक कह दिया कि यदि अखण्ड यज्ञाग्नि कभी बुझ जाती है तो वह जीवित नही रह पायेंगे। तब से इस विषय पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। आगे जो लोग इस दायित्व का निर्वाह करेगें वे विशेष सतर्कता बरतें जिससे यज्ञाग्नि किसी भी परिस्थिति में खण्डित न होने पाये।

श्री श्री आनन्दमयी संघ की सन् 1950 में स्थापना

गायत्री महायज्ञ का सफलतापूर्वक सम्पन्न होने के तुरंत बाद माँ के कई प्रमुख भक्तों एवं आश्रम के कई अन्य शुभचिंतकों ने एक ऐसी पंजीकृत संस्था की आवश्यकता महसूस की जो माँ के नाम पर स्थापित आश्रमों की देखभाल कर सके तथा यह संस्था माँ के निर्देशों के अनुसार सभी आध्यात्मिक गतिविधियों को सम्पन्न करे एवं विभिन्न आश्रमों में प्रतिष्ठित देवी-देवता की प्रतिमाओं की नित्य पूजा-अर्चना की व्यवस्था करे। विभिन्न आश्रमों को चलाने के लिए आवश्यक है नियमित कार्यालय, कार्यों का सम्पादन, धन का समुचित उपयोग, खातों का निरीक्षण एवं नियंत्रण ताकि आश्रम की जवाबदेही बनी रहे। उन शुभचिंतकों के समर्पित प्रयासों एवं कुछ जानकार लोगों के सहयोग के परिणामस्वरूप 'श्री श्री आनन्दमयी संघ' के नाम से एक पंजीकृत संस्था का सृजन हुआ जिसका सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम 1860 के तहत 25 जनवरी 1950 को विधिवत पंजीकरण करवाया गया। इसका प्रत्येक पांच वर्ष के अन्तराल पर नवीकरण कराना आवश्यक होता है। इस संगठन की स्थापना श्री माँ की उपस्थिति एवं उनके आशीर्वाद स्वरूप हुई। भारत में यह संभवतः पहली ऐसी संस्था है जिसमें समुचित प्रबंधन के लिए पहले ही दिन से संघ के संचालन समिति में साधु एवं गैर साधु सदस्य दोनों मिलकर काम कर रहे हैं। इसका मुख्यालय माँ के वाराणसी आश्रम में बनाया गया था। माँ के महाप्रयाण के बाद मुख्यालय को 1984-85 में हरिद्वार के कनखल आश्रम में ले जाया गया। वर्तमान में इसकी संचालन समिति में कुल 42 सदस्य हैं; 21 सदस्य साधु और 21 सदस्य गैर साधु हैं। इनमे से तीन वर्ष से आसीन 14 सदस्यों - 7 साधु सदस्य एवं 7 गैर साधु सदस्यों का प्रत्येक वर्ष परिवर्तन हेतु निर्वाचन किया जाता है।

संघ के संविधान के अनुसार संस्था के मुख्य उद्येश्य निम्नलिखित है-

"श्री श्री माँ आनन्दमयी से प्रेरणा लेकर मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति के लिए माँ द्वारा प्रेरित प्रत्येक क्रिया-कलाप को ग्रहण करना एवं गरीबों की सहायता, चिकित्सा-राहत तथा जन-साधारण के किसी भी अन्य कल्याणकारी उद्देश्य को प्रोत्साहन देना जिसमें लाभ की कोई संलिप्तता नहीं होगी।"

यह देश की सर्वाधिक लोकतांत्रिक एवं पारदर्शी आध्यात्मिक सह परोपकारी (चैरिटेबल) संस्थाओ में एक है, जो श्री माँ के भारत में स्थित 24 तथा बांग्लादेश में दो आश्रमों की देखभाल कर रही है। श्री माँ की प्रेरणा एवं कृपा से इस संस्था ने वर्ष 2010 में अपने साठ वर्ष पूर्ण कर लिए थे। सन् 2011 में माँ के जन्मोत्सव के अवसर पर कनखल आश्रम में विख्यात महात्माओं, उत्तराखण्ड सरकार के मंत्री एवं बड़ी संख्या में श्रद्धालुओं की उपस्थिति में संघ की हीरक जयंती को भव्य तरीके से मनाया गया।

संघ के सृजन के प्रारंभिक वर्षों से इस संस्था के सदस्यों में कई गणमान्य लोग शामिल हुए। हिमांचल प्रदेश के सोलन राजवंश के राजा दुर्गा सिंह जी को इस संस्था का प्रथम अध्यक्ष चुना गया था। देश की स्वाधीनता के बाद भारत सरकार ने उन्हें हिमांचल प्रदेश का राज्यपाल बनाने की पेशकश की थी जिसे उन्होंने विनम्रता से मना कर दिया था। अपनी बहुमुखी धार्मिक प्रतिभाओं के कारण वे श्रद्धालुओं के बीच "योगी भाई" नाम से विख्यात थे। माँ ने यह संकेत किया था कि वे पूर्व जन्म में एक योगी थे। तीन वर्ष बाद योगी भाई ने टिहरी गढ़वाल की राजमाता श्रीमती कमलेन्दु शाह को संघ के अध्यक्ष पद के लिए प्राथमिकता दी जो उस समय संसद सदस्य भी थीं। वे इस पद पर छह वर्ष तक रहीं। बाद में उनकी स्वास्थ्य बेहतर न होने के कारण उन्होंने यह पद त्याग दिया और दूसरी बार इस पद पर योगी भाई (राजा दुर्गा सिंह) आसीन हुए। वे इसके बाद अपने जीवन की शेष अवधि तक इस पद पर बने रहे। माँ की उच्चतम आध्यात्मिक स्थिति के बारे में योगी भाई से पता चलने पर, समस्त भारत के कई राजवंशों के राजा एवं उनके परिवार माँ के परम भक्त बन गए।

योगी भाई के मार्च 1977 में दिवंगत होने के बाद माँ के करीबी भक्त बंबई के श्री बी. के. शाह को अध्यक्ष चुना गया। वे एक विख्यात अर्थशास्त्री, भारतीय जीवन बीमा निगम लि. के अध्यक्ष थे तथा न्यू इण्डिया



माँ अपनी आरम्भिक जीवन काल
में समाधी की अवस्था में



पद्म-बिभूषण गोपीनाथ कविराजजी



1956 में वाराणसी में जन्मोत्सव के दौरान पीतल के शेर पर रखे चांदी
के सिंहासन पर माँ गहरी समाधि की अवस्था में।

इंश्योरेंस कंपनी के भी शीर्ष अधिकारी रह चुके थे। संघ के अध्यक्ष पद पर वे अपनी जीवन की शेष अवधि सितंबर 1995 तक बने रहे। सन् 1940 के दशक से माँ के करीबी भक्त तथा सेवानिवृत्त आई.सी.एस. श्री गोविन्द नारायण जी इसके बाद संघ के अध्यक्ष बने। माँ के अनन्य भक्त डॉ. पन्नालाल के वह दामाद थे। उन्होंने उत्तर प्रदेश एवं केन्द्र सरकार में विभिन्न उच्च व महत्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर कार्य किया था। वे कर्नाटक के राज्यपाल भी रह चुके थे तथा उन्हें भारत सरकार की ओर से 'पद्म विभूषण' प्रदान किया गया था। अप्रैल 2012 को निधन के समय तक गोविन्द नारायणजी संघ के अध्यक्ष पद पर आसीन रहे।

इसके बाद, वरिष्ठतम साधु स्वामी निर्वाणानन्दजी मई 2012 में संघ के अध्यक्ष बने। स्वामीजी इलाहाबाद के रहनेवाले थे एवं उन्होंने अपनी अधिकतर पढ़ाई वहीं की थी। उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से रसायनशास्त्र में एम.एस.सी. किया था। सन् 1944 में पढ़ाई समाप्त हो जाने पर वे माँ के पास चले आये। उन्होंने माँ के निर्देशानुसार दो अन्य ब्रह्मचारियों के साथ तीन वर्ष तक कठिन "गायत्री पुरश्चरण" साधना की थी। माँ ने उन्हें दीक्षा देने के लिए संघ का आचार्य चुना था जिस दायित्व का वह अभी तक सहर्ष निर्वहण कर रहे हैं। बर्तमान में उनकी आयु लगभग 95 वर्ष है। हाल ही में उनकी इच्छानुसार लगभग 87 वर्ष के वयोवृद्ध संन्यासी स्वामी अच्युतानन्दजी को मार्च 2016 से तीन वर्ष के लिए अध्यक्ष पद पर चुन लिया गया है। उन्होंने स्वामी मुक्तानन्द गिरिजी से दीक्षा प्राप्त की थी। वे लगभग 60 वर्षों से माँ के आश्रमों में रहते हुए रांची, नैमिषारण्य, वृन्दावन आदि आश्रमों के साधु-इंचार्ज भी रह चुके हैं।

श्री श्री आनन्दमयी संघ के सृजन के पश्चात श्री माँ के जीवनकाल में संघ के जेनरल सेक्रेटरी क्रमशः श्री आशुतोष भट्टाचार्य, पानुदा, स्वामी चिन्मयानन्द एवं स्वामी परमानन्दजी थे एवं तदोपरांत क्रमशः स्वामी स्वरूपानन्द, स्वामी भास्करानन्द, डॉ. डी. पी. मुखोपाध्याय (देबूदा) एवं श्री सोमेश चन्द्र बनर्जी (सोमूदा) ने इस पद भार को सम्भाला था। सन् 2016 से कोलकाता के श्री स्वपन गांगुली तीन वर्ष के लिए इस पर पदासीन हुए।

वाराणसी में श्री श्री माँ का हीरक जयन्ती 'जन्मोत्सव'

मई 1956 में माँ के शरीर के साठ वर्ष पूरे होने जा रहे थे। श्रद्धालु चाहते थे इस अवसर को बहुत उत्साह, भव्यता और धूमधाम से मनाया जाए। उनमें से अधिकतर इसे पश्चिमी परम्परा का भावानुवाद कर 'हीरक जयन्ती' कह रहे थे। बहरहाल, वाराणसी के विख्यात संत शंकर भारतीजी ने इसका संस्कृत भाषा में नामकरण करते हुए इसे ''षष्टितम जयन्ती उत्सव'' बताया। उस वर्ष माँ का जन्मोत्सव 2 से 27 मई के दौरान 26 दिनों तक स्मरणीय ढंग से वाराणसी आश्रम में मनाया गया।

वृंदावन के अवधूतजी महाराज को एक बार सिंह पर सवार माँ के दिव्य दर्शन हुए थे। श्रद्धालुगण स्वयं भगवती दुर्गा के स्वरूप मानकर माँ की पूजा करते थे। अतः अवधूतजी महाराज एवं भक्तों के हार्दिक अनुरोध पर अष्टधातु की विशाल सिंह मूर्ति के ऊपर माँ के बैठने या शयन के लिए चांदी का सुन्दर सिंहासन निर्मित किया गया। अकेले सिंह का वजन ही 28 मन था। सिंहासन पर लाल वेलवेट के गद्दे बिछे हुए थे। कोलकाता के प्रख्यात शिल्पी श्री निताई पाल ने इस सिंहासन का निर्माण किया था। सिंह की दोनों आंखें बिजली से जलती थी। सिंहासन पर जरी का काम किया हुआ लाल मखमल का सुन्दर लाल छत्र लगाया गया था। ऐसा सुंदर सिंहासन शायद ही कभी बना हो।

दो मई की देर रात पहली जयन्ती पूजा थी। श्री माँ ने इस सिंहासन पर बैठने से साफ मना कर दिया। कई बार अनुनय-विनय करने के उपरांत भी माँ ने अपना मन नहीं बदला। माँ भावावस्था में इसकी सीढ़ियों पर ही बैठ गईं। कोई उपाय न रहने पर श्री माँ के सीढ़ियों पर समाधिस्त बैठे रहने की अवस्था में ही उनकी पूजा एवं आरती आदि सम्पन्न की गई।

इस उत्सव के उपलक्ष्य में असंख्य भक्त, धनी-गरीब, विशिष्ट या साधारण जन, हिन्दू, सिख, ईसाई, जैन, आहूत-अनाहूत अतिथि, बच्चे, युवा, वृद्ध आदि सभी सम्मिलित हुए। इस आयोजन में सम्मिलित विशिष्ट महात्माओं में परम पूज्य हरिबाबाजी, ग्वालियर से रामदास बाबाजी, झूसी (इलाहाबाद) से प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी, बम्बई से कृष्णानन्दजी, वृंदावन से शरणानन्दजी, चक्रपाणिजी, अखण्डानन्दजी, कोलकाता से योगेश ब्रह्मचारीजी शामिल थे। इसके अलावा कई अन्य साधु-संत एवं महात्माओं की उपस्थिति

भी थी। प्रत्येक अतिथि के उपयुक्त त्रुटिविहीन देखभाल की विशेष व्यवस्था की गई थी।

महात्माओं के अतिरिक्त देश के विभिन्न भागों से विभिन्न राजवंशों के महाराजा–महारानियां तथा अन्य गणमान्य लोग भी इस अवसर पर पधारे थे। प्रति दिन करीब दो हजार लोगों के ठहरने, भोजन आदि की व्यवस्था सुचारू रूप से की जाती थी।

उत्सव में सत्संग आदि कार्यक्रमों में आम जनों के बैठने के लिए विशाल पण्डाल एवं एक ओर विशाल ऊंचे मंच का निर्माण किया गया था। इस मंच के निर्माण के पीछे यही उद्देश्य था कि श्रद्धालु श्री माँ का सुचारू रूप से दर्शन कर सकें। इसके पूर्व इतना सुन्दर, अभिनव एवं सुसज्जित विशाल पण्डाल वाराणसी में दिखाई नहीं दिया।

आश्रम में इस अवधि में धार्मिक कार्यक्रम भी जारी थे जिनमें 26 दिनों तक निरन्तर जप, रुद्राभिषेक, यज्ञ, रामायण पाठ, चण्डीपाठ, विष्णु सहस्रनाम पाठ एवं शिव स्तुति शामिल हैं। इस दौरान वृंदावन एवं कोलकाता के कलाकारों द्वारा क्रमशः 'रासलीला' एवं 'निताई–गौर लीला' का नित्य मंचन किया जा रहा था। साथ ही मुख्य महात्माओं के प्रवचन भी चल रहे थे।

गायन एवं वृंद बजाने वाले प्रसिद्ध शास्त्रीय संगीतकारों एवं वादकों ने अपनी प्रस्तुतियां देकर इस अवसर की शोभा बढ़ाई। पण्डित रविशंकर, बिस्मिल्ला खान, अली अकबर खान, सामता प्रसाद एवं कंठे महाराज ने अपने अपने साजों से प्रस्तुति दी। सिद्धेश्वरी देवी, गिरिजा देवी, डागर बंधु, सुखेन्दु गोस्वामी, छबि बन्दोपाध्याय ने अपने गायन से इस अवसर पर आए लोगों को मंत्र मुग्ध कर दिया। इस पण्डाल में आठ से दस हजार लोग बैठ सकते थे और यह श्रोताओं से ठसाठस भरा रहता था।

इन सभी आयोजनों में सबसे आकर्षक अनुष्ठान 'तुलादान' था जिसमें माँ के वजन के बराबर विशिष्ट सामग्रियों को तौलना था। कन्यापीठ के समक्ष खुले स्थान पर 18 इंच ऊंची एवं 18 फुट भुजावाली चौकोर वेदी का निर्माण करवाया गया। तुलादान के सम्पादन के लिए इस वेदी के ऊपर एक विशाल तराजू रखा गया। वेदी के चारों तरफ चार वेदों...ऋगवेद, साम्वेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद के प्रतीक स्वरूप चार यज्ञकुण्ड भी रखे गए थे।

परमानन्द स्वामीजी माँ को वेदी तक आहिस्ते-आहिस्ते लेकर आए। श्री माँ उस समय उच्च भावावस्था में थीं। माँ की आंखों में अश्रुधारा थी किन्तु उनका मुखमण्डल अत्यधिक दीप्तिमान लग रहा था। माँ को तराजू के दाहिने पलड़े पर बैठाया गया तथा उनकी गोद में छह नारायण शिला (शालिग्राम) रखी गयीं। आचार्य ने माँ के एक हाथ में भगवान नारायण की छोटा स्वर्ण प्रतिमा तथा दूसरे हाथ में 'यम' की प्रतिमा रखी। इसके उपरांत...चावल, गेहूं, जौ, काली उड़द, तिल, गो घृत, फल, रेशम धागे, सूती वस्त्र तथा चीनी सहित दस विभिन्न वस्तुओं से माँ को तौला गया। इसके उपरांत गिरिजी (दीदीमा) एवं मामाजी (माँ के छोटे भाई) की इच्छानुसार उन्हें बतासों एवं मिसरी से तौला गया। सबसे अंत में उन्हें चांदी से तौला गया। माँ के करीबी भक्त डा. पन्नालाल, सेवानिवृत्त आई.सी.एस. , की ओर से यह चांदी उपलब्ध करवाई गई थी। इस बार दोनों पलड़े बराबर नहीं हो रहे थे, किन्तु जब चांदी वाले पलड़े पर एक तुलसी पत्र रखा गया तो दोनों पलड़े बराबर हो गए। अनुष्ठान के बाद चांदी को छोड़कर सभी सामग्रियां गरीबों को वितरित कर दी गईं। इस चांदी का उपयोग बाद में श्री माँ के वृंदावन आश्रम में भगवान निताई गौर मंदिर में किया गया जहां पन्नालालजी ने प्रतिमाओं की व्यय भार वहन किया था।

श्री माँ की तिथि पूजा के लिए 27 मई 1956 को पूजा मंच एवं सिंह पर स्थित चांदी के सिंहासन को सुन्दर ढंग से सजाया गया। पूजा के लिए व्यापक प्रबंध किए गए थे। माँ को पूजा मंच तक एक सुन्दर ढंग से सजायी गई पालकी में लाया गया। किन्तु श्री माँ सिंहासन की सीढ़ी पर उसी तरह बैठ गईं जैसा कि वे पहले जयन्ती पूजा के दिन बैठ गईं थीं। हरिबाबा, अवधूतजी तथा अन्य महात्माओं ने श्री माँ से हार्दिक विनती की कि वे श्रद्धालुओं को निराश नहीं करें। अंततः माँ सीढ़ियों पर चढ़ी तथा सिंहासन पर जाकर लेट गईं। गहरी समाधि में माँ की देह स्पन्दनहीन एवं गतिहीन प्रतीत हो रही थी। विशिष्ट महात्माओं एवं असंख्य श्रद्धालुओं की उपस्थिति में माँ की व्यापक पूजा मध्यरात्रि से लेकर प्रातःकाल तक चलती रही। संस्कृत श्लोकों के उच्चारण, कीर्तन एवं आरती के बीच पूरे पण्डाल में पवित्रमय, श्रद्धामय एवं भक्तिपूर्ण दिव्य वातावरण फैला हुआ था। पूजा सम्पन्न होने पर सभी श्रद्धालुओं को एक-एक करके माँ के पास जाकर

प्रणाम करने दिया गया। अंत में, माँ को उसी समाधि अवस्था में पालकी में लिटाकर कन्यापीठ की भूमिगत गुफा में एकांत विश्राम के लिए ले जाया गया। इस दौरान माँ का असाधारण दिव्य भाव था तथा उनका मुखमण्डल अपूर्व ज्योति से चमक रहा था। माँ का यह भावपूर्ण दिव्यरूप दर्शन अविस्मरणीय रहा।

लगभग 25 वर्ष बाद सन् 1981 में कनखल आश्रम के शंकराचार्य हॉल में आयोजित माँ के जन्मोत्सव के उपलक्ष में इसी भव्य सिंहवाहिनी सिंहासन को पुनः व्यवहार में लाया गया था। इस पर माँ के समाधिस्थ शरीर को लेटाकर जन्मतिथि की पूजा सम्पन्न किया गया था। वर्तमान में यह सिंहासन कनखल आश्रम के मातृ स्मृति संग्रहालय में सुरक्षित रखा गया है।

अध्याय-सप्तम

श्री माँ का वृंदावन आगमन

हरिद्वार में 1927 के कुम्भ मेले में भाग लेने के बाद ढाका लौटते समय श्री माँ मथुरा एवं वृंदावन आई थीं। यह माँ की पहली वृंदावन यात्रा थी। वह वर्धमानकुंज मंदिर के धर्मशाला में रुकी थीं। माँ सन् 1936 में दोबारा वृंदावन आई जब वे उत्तर भारत का अकेले ही व्यापक भ्रमण कर रही थीं। उस दौरे में माँ के साथ मात्र एक बुजुर्ग महिला श्रद्धालु बिराजमोहिनी दीदी थीं। इस दौरान कई धार्मिक व्यक्ति माँ के सम्पर्क में आए एवं उनके भक्त बन गए।

बाद में भक्तों की इच्छा के अनुरूप वृंदावन में माँ के आश्रम के लिए मथुरा रोड पर एक विशाल भूखण्ड लिया गया। वर्ष 1949 में वृंदावन के प्रख्यात संत उड़िया बाबा ने हरिबाबा एवं स्वामी अखण्डानन्दजी की उपस्थिति में श्री माँ की कुटिया की नींव रखी होली उत्सव के दौरान जब भी हरिबाबा वृंदावन में होते थे तो माँ भी प्राय: वहीं रहती थीं क्योंकि इसी अवसर पर हरिबाबा का जन्मदिन भी होता था। एक बार होली के दिन भक्तों के जुलूस में शामिल होकर माँ कई आश्रमों में गईं। उन्होंने रंगों के इस त्योहार का पूरा आनन्द उठाते हुए न केवल महात्माओं एवं संतों पर रंग छिड़का बल्कि पशुओं एवं वृक्षों पर भी रंग डालना नहीं भूलीं। वे हरिबाबा एवं अखण्डानन्दजी के पास भी गई और उन पर रंग डालने का आनन्द लिया। उन्होंने कहा, ''बाबा, जब कोई वृंदावन में रहता है तो वह रंग के छींटों से बच नहीं सकता।''

वृंदावन आश्रम के निर्माण का कार्य सही अर्थों में फरवरी 1952 से शुरू हुआ। माँ के चरणों से स्पर्श कराई गई एक ईंट को नींव में रखा गया। मण्डी एवं टिहरी राजवंश के राजा एवं रानी साहिबा ने भी वहां नींव में ईंट रखी थी। एक वर्ष बाद आश्रम के नवनिर्मित शिवमंदिर में तीन शिवलिंग स्थापित किए गए। माँ ने उन्हें ''योगेश्वर'', ''सिद्धेश्वर'' एवं ''वानेश्वर'' नाम दिया।

हरिबाबा की प्रेरणा से शिवमंदिर से थोड़ा अलग उसी तरह का एक अन्य मंदिर निर्मित करवाया गया तथा वहां 8 मार्च 1955 को श्री माँ

एवं हरिबाबा की उपस्थिति में गौर-निताई की प्रतिमाएं स्थापित की गई। इस कार्य पर खर्च हुआ अधिकतर व्यय माँ के अनन्य भक्त एवं आई.सी.एम. अधिकारी डॉ. पन्नालाल ने वहन किया था। पन्नालालजी के बारे में माँ ने संकेत किया था कि वे पूर्व जन्म में चैतन्य महाप्रभु के साथ थे। गौर-निताई की इन सुन्दर प्रतिमाओं को कोलकाता के शिल्पकार श्री निताई पाल ने बनाया था। इसके बाद आश्रम के विशाल परिसर में सत्संग हॉल, गीता भवन, राम मन्दिर, साधु एवं इच्छुक वानप्रस्थियों के लिए कुटियाओं तथा आने वाले श्रद्धालुओं के लिए अतिथिगृह का क्रमिक निर्माण होता गया। इसके अलावा वहां एक गोशाला भी बनी जिसमें कई गायों को रखा जाता है ताकि गो-सेवा के साथ आश्रम की दूध की आवश्यकता की पूर्ति हो सके।

एक बार ग्वालियर राजघराने की महारानी विजयराजे सिंधिया माँ के पास आईं तथा वे गौर-निताई की आकर्षक प्रतिमाएं देखकर आनन्द से भर उठीं। उन्होंने ग्वालियर में अपने महल के नवनिर्मित मंदिर में किशोरवय भगवान श्रीकृष्ण की मध्यम आकार की कांस्य प्रतिमा बनवाने के लिए उन्हीं गौर-निताई के शिल्पकार श्री निताई पाल की सेवा ली। उन्होंने शिल्पकार को प्रतिमा के आकार एवं खड़ी हुई मुद्रा का विवरण दिया जो आमतौर पर भगवान श्राकृष्ण के चित्रों में देखने को मिलता है। जब नव निर्मित प्रतिमा को ग्वालियर में सौंपा गया तो यह पता चला कि भगवान श्रीकृष्ण की खड़ी हुई मुद्रा पूरी तरह से अलग है। इस प्रतिमा के आने के कुछ ही समय बाद रानी साहिबा के पति का देहांत हो जाने के कारण वे इस प्रतिमा को अपने मंदिर में स्थापित करने को लेकर सशंकित हो गईं। कोई अन्य उपाय न होने के कारण वे इस प्रतिमा को पैकिंग बाक्स में पैक करवाकर माँ के वृंदावन आश्रम ले आईं तथा इसे उन्होंने माँ को सौंप दिया।

एक दिन देर रात को माँ एवं राजमाता विजयराजे सिंधिया की उपस्थिति में इस प्रतिमा को पैकिंग बाक्स से निकाला गया। भगवान श्रीकृष्ण की इस अपूर्व चमक वाली प्रतिमा को देखकर सभी लोग मोहित हो गए। माँ ने तुरंत निर्देश दिया कि अगली सुबह तड़के ही इस प्रतिमा की पूजा का प्रबंध किया जाए। चूंकि उस समय तक बाजार बंद हो चुके थे, माँ ने कहा कि आश्रम में जो कुछ भी उपलब्ध हो उसी से पूजा के लिए आवश्यक प्रबंध किए जाएं। इसी के अनुसार जो कुछ भी उपलब्ध था, उसी

से अगले दिन प्रातःकाल माँ के निवास स्थल में पूजा प्रारम्भ की गई। पूजा शुरू होने के कुछ ही देर बाद प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी के आश्रम से एक व्यक्ति बड़ी थाली में माखन-मिश्री एवं अन्य पकवान लेकर आ गया। ऐसे पकवान आम तौर पर विशेष अवसरों पर ही श्रीकृष्ण के भोग में लगाए जाते हैं। माँ यह देखकर प्रसन्न हो गईं और तुरंत उनके मुंह से निकला-"देखो, भगवान ने अभी से ही अपनी लीला दिखानी शुरू कर दी।"

भगवान श्रीकृष्ण की परम भक्त राजमाता सिंधिया के हाल में पति का निधन होने से वे दुखी थीं। पूजा को देखकर तथा माँ की उपस्थिति के कारण उत्पन्न दिव्य भाव से प्रभावित होकर उन्होंने भारी मन से कहा- "माँ, इस छलिया ने मुझे काफी परेशान किया है।" इस पर माँ ने उनसे तुरंत पूछा कि उन्हें भगवान कृष्ण के लिए 'छलिया' शब्द कहां से मिला जिसका वह उत्तर नहीं दे पाईं। इसके बाद से भगवान श्रीकृष्ण की उस प्रतिमा को प्यार से 'छलिया' बुलाया जाने लगा।

इसके बाद माँ ने एक दिव्य घटना सुनाई जो उनके साथ पहले घटी थी। एक बार माँ को मध्यरात्रि में दिल को छू जाने वाली मोहक दर्दभरी धुन में गाई एक दिव्य पंक्ति सुनाई दी, जो कहीं दूर आकाश से आ रही थी। इसमें बहुत करुण स्वरों में भगवान श्रीकृष्ण को पुकारा जा रहा था। ब्रज भाषा की इस पंक्ति के शब्द थे- "आओ मेरे सलोना छलिया रे, बनवारी रे।" माँ उच्च भाव में स्वयं यह गीत गा रही थीं तथा उनके गाने में उस गीत एवं धुन में छिपा दिव्य 'राधाभाव' प्रकट हो रहा था। उन्होंने आश्रम के अच्छे गायक ब्रह्मचारी विभुदा को बुलाने का संकेत किया। वे जब आए तो माँ ने उन्हें इंगित किया कि वे भी उनके संग गाकर इस दिव्य गाने को सीख लें। इस प्रकार माँ ने दिल को छू जाने वाली इस धुन के साथ साथ उसमे निहित दिव्य 'राधाभाव' भी विभुदा में संचारित कर दिया। उसी समय माँ ने उन्हें कह दिया कि इस पद को आमतौर किसी को न सुनाया करें। बाद में कई अवसरों पर महात्माओं ने माँ ने अनुरोध किया कि वे इस गीत को गाने के लिए विभुदा से कहें किन्तु विभुदा इसे गा नहीं पाते थे और इसके बजाय वे. भाव में आकर रोने लगते थे। इस पद में निहित भाव, सुर व व्याकुलता को माँ ने 'राधा पुकार' कहा जिसे उस युग में कृष्ण-विरह में अत्यधिक पीड़ित राधाजी व्याकुल होकर गाया करती थीं।

आश्रम में छलिया के लिए एक बड़ा मन्दिर बनवाया गया जिसका निर्माण स्थल का चयन माँ ने स्वयं किया था। यह स्थल शिव तथा गौर निताई मंदिरों के बीच में और उनसे थोड़ा पीछे हटकर है। मन्दिर में राधा-कृष्ण की चार युगल प्रतिमाएं स्थापित की गईं। भगवान श्रीकृष्ण की मुख्य प्रतिमा को 'छलिया' कहा जाता है जबकि उनकी राधा का नाम 'आनन्द' है। राधा का यह नाम कोलकाता की एक भक्त भवानी दीदी की इच्छानुसार रखा गया जिन्होंने राधा प्रतिमा का व्यय भार वहन किया था। इस प्रकार यह मन्दिर 'आनन्द छलिया मन्दिर' कहलाया जाने लगा। राधा–कृष्ण की एक अन्य युगल प्रतिमा सोलन के महाराजा (योगी भाई) की इच्छा के अनुरूप स्थापित की गई जो उन्होंने अपनी दिवंगत रानी साहिबा की इच्छा पूर्ति के लिए रखवाई थी। इन प्रतिमाओं का आकार भी आनन्द छलिया के लगभग बराबर है। श्री माँ की दो श्रद्धालु बहनों रमाजी एवं कमलाजी ने भी वहां छोटे आकार की राधा–कृष्ण की दो अन्य युगल प्रतिमाएं स्थापित करवाईं।

माँ ने यह भी प्रकाशित किया था कि आज जहां यह मन्दिर है, द्वापर युग में वहां से यमुना नदी की एक धारा बहा करती थी। उन्होंने देखा था कि उस युग के किशोरवय भगवान श्रीकृष्ण उसी स्थान पर यमुना नदी के तीर पर खड़े हुए हैं। उनके चेहरा, घुंघराले बाल, खड़े होने की मुद्रा आदि मंदिर की छलिया प्रतिमा से बहुत कुछ मिलती- जुलती है। बाद में जब मंदिर के लिए नींव खोदी जा रही थी तो वहां भूमि के भीतर से जमीन की परतों में यमुना की बालू मिली जबकि वर्तमान समय में यमुना नदी आश्रम से करीब डेढ़ मील दूर बहती है। माँ ने यह भी खुलासा किया कि भगवान श्रीकृष्ण एक छत्र लिए खड़े थे जिससे यह संकेत मिलता है कि उनकी प्रतिमा किसी छत्रधारी अर्थात् राजवंश से आएगी। माँ की इन बातों से यह स्पष्ट हो गया कि उन्होंने मन्दिर बनाने के लिए वर्तमान स्थान की ओर संकेत क्यों किया था? साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि शिल्पकार द्वारा इस मूर्ति को गढ़ते समय उनके खड़े होने की मुद्रा में स्वतः कैसे ऐसा परिवर्तन आ गया। क्या कोई कह सकता है कि यह मूर्ति बनाते समय मूर्तिकार को भी भगवान श्रीकृष्ण के इसी प्रकार खड़ी हुई मुद्रा में दर्शन हुए थे? इस प्रतिमा को बनाने के कुछ ही समय बाद शिल्पकार निताई पाल का देहान्त हो गया।

सितंबर 1966 में आनन्द छलिया मन्दिर का उद्घाटन एक बहुत ही आनन्द-उल्लासपूर्ण आयोजन रहा। माँ ने मंदिर के उद्घाटन के कुछ महीने पहले से ही अपने सभी भक्तों से इस अवसर पर उपस्थित होने के नए कहना शुरू कर दिया था। 27 अगस्त से 7 सितंबर तक भगवान ीकृष्ण के मधुर नामों का निरंतर कीर्तन तथा गान होता रहा। यह क्रम ुबह पांच बजे से शुरू होता तथा रात नौ बजे तक चलता था। उद्घाटन से तीन दिन पहले श्री माँ ने एक अद्भुत आकर्षक पद एवं सुर में स्वयं कीर्तन शुरू कर दिया। माँ ने गाया, "कृष्ण छलिया आनन्दलाल, ब्रज रमण प्राण गोपाल।" माँ के कीर्तन और दिल को छू लेने वाली उनके मधुर सुर से उत्साहित भक्तों ने इस कीर्तन को पांच दिन तक लगातार जारी रखा। इसके बाद जन्माष्टमी के दिन प्रातःकाल वृंदावन की गलियों में आनन्द छलिया की धूमधाम से शोभायात्रा निकाली गई। अवधूतजी ने इसके लिए कुछ अद्भुत सुन्दर झांकियों का प्रबंध किया जो रथों पर चल रही थी। पूरे माहौल में नाम-कीर्तन गुंजायमान था। उसी दिन दोपहर में श्री माँ की उपस्थिति में पूरी भव्यता एवं भक्तिभाव के साथ छलिया मन्दिर में सभी विग्रहों की प्राण प्रतिष्ठा सम्पन्न की गई। उसी दिन मध्यरात्रि के समय वहां जन्माष्टमी पूजा के लिए व्यापक प्रबंध किए गए। उसके बाद से वर्तमान मंदिर में नित्य पूजा एवं भोग लगाने की प्रक्रिया जारी है।

मातृनिवास के पीछे एक विशाल जलाशय खोदा गया जिसका नामकरण माँ ने किया 'आनन्द छलिया सरोवर'। यमुना में बाढ़ आने की स्थिति में उसके जल से इसे भरने की व्यवस्था की गई थी। हालांकि अभी यह व्यवस्था चालू नहीं है क्योंकि कई किसान रास्ते में ही यमुना जल का दोहन कर लेते हैं एवं इस सरोवर तक जल नहीं पहुंचता।

माँ की उपस्थिति में इस विशाल आश्रम में जन्माष्टमी, दुर्गापूजा, काली पूजा, अन्नकूट, कात्यायनी पूजा, भागवत सप्ताह, संयम सप्ताह आदि कई बड़े धार्मिक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया था। यहां माँ की उपस्थिति में छह बार संयम सप्ताह भी आयोजित किया गया। इस प्रकार माँ के आश्रमों में यह एक महत्वपूर्ण आश्रम बन गया।

वृंदावन में माँ का एक और आश्रम है जिसे पश्चिम बंगाल में स्थित वर्धमान के महाराजा ने ऐतिहासिक 'वर्धमान कुंज कृष्ण मन्दिर' माँ

को दान कर दिया। यहां राधा कृष्ण युगल के सात विग्रह हैं जो सात सौ वर्ष से भी अधिक प्राचीन हैं। वर्ष 1927 में पहली बार माँ जब वृंदावन आईं थीं तब यहीं रुकी थीं। उस समय प्रतिदिन सवा मन चावल का अन्नभोग अन्य व्यंजन सहित मन्दिर में चढ़ाये जाते थे एवं यह प्रसाद भक्तों में बांट दिया जाता था। हालांकि यह मन्दिर माँ के पास आने से काफी पहले ही यह परम्परा समाप्त हो गई थी। इस आश्रम की समुचित मरम्मत कुछ साल पहले ही करवाई गई है। इस आश्रम परिसर में मन्दिर के बगल में खाली पड़ी लम्बी जमीन पर एक गेस्ट हाउस का निर्माण करने को माँ कह गई थीं। इसका नक्शा भी बना है पर धनाभाव के कारण इसका निर्माण शेष है।

गुजरात में भीमपुरा आश्रम की स्थापना

माँ सन् 1937 में पवित्र नदी नर्मदा के तट पर बसे चांदोद पहुंचीं। श्री माँ उत्कंठेश्वर, डाकोर, बड़ौदा, चांदोद, भीमपुरा, व्यास, गंगोनाथ, कमाटी आदि विभिन्न स्थलों पर गईं और इस क्षेत्र में करीब 50 दिनों तक रहीं। उनकी अधिकतर यात्रा नर्मदा में नाव के द्वारा हुई और उस दौरान कई अलौकिक मातृलीलाएं देखने को मिली। इनका विस्तृत विवरण गुरुप्रिया दीदी की डायरियों से प्रकाशित पुस्तकों में मिलता है।

वर्ष 1938 की सर्दियों में माँ पुनः चांदोद पहुंची एवं इस बार वहां करीब दो माह रहीं। वे आसपास के विभिन्न धार्मिक स्थलों पर गईं। एक दिन माँ नर्मदा नदी में नाव पर जा रही थीं। जब नाव भीमपुरा गांव के समीप से गुजर रही थी तो माँ ने सहसा नाव को किनारे तक ले जाने का निर्देश दिया जहां बरगद का एक विशाल वृक्ष था। माँ नाव से उतरकर नदी के किनारे खड़े कगार पर तेजी से चढ़कर वृक्ष के समीप पहुंच गईं। माँ ने बाद में खुलासा किया कि नाव पर जाते समय उन्होंने बरगद वृक्ष के नीचे सूक्ष्म स्वरूप में कई ऋषियों को बैठे देखा जो उनसे वहां आने का हार्दिक अनुरोध कर रहे थे। माँ के संकेत के अनुसार गुरुप्रिया दीदी के पिता स्वामी अखण्डानन्दजी ने वहां बाद में आश्रम बनाने के लिए जमीन खरीद ली। वहां नर्मदा नदी के तट पर श्री माँ के आश्रम का निर्माण वर्ष 1939 में शुरू हुआ। यह आश्रम वर्ष 1940 में माँ के पहली बार पदार्पण से पवित्र हुआ। उसके बाद से गुजरात के भक्तों के लिए यह आश्रम विशेष श्रद्धा का केन्द्र

बना हुआ है। माँ वर्ष 1940-41 में जब दोबारा यहां आयी थीं तब ढाई माह रुककर गुजरात के अन्य धार्मिक स्थलों पर भी गईं।

दक्षिण भारत के दौरे से लौटते समय वर्ष 1953 में माँ भीमपुरा आश्रम में भी पधारी थीं। उस अवसर पर माँ के साथ कई अन्य बड़े महात्मा भी इस आश्रम में रुके थे। माँ के चांदोद निवास के दौरान आश्रम के दण्डी स्वामी- नारायण स्वामीजी को एक अनूठा दर्शन हुआ। मध्यरात्रि के सूनसान में स्वामीजी यह देखकर रोमांचित हो गए कि माँ के कमरे से निकलकर कोई महापुरुष आकाश मार्ग से चले जा रहे हैं। अगले दिन जब उन्होंने यह घटना माँ को सुनाई तथा इसके बारे में पूछा तो माँ ने यह प्रकट किया कि वह महात्मा श्रीमद्भागवत के शुकदेव थे। वे माँ से अपने मन्दिर में आने का अनुरोध करने के लिए आए थे जो चांदोद के करीब स्थित है। इस मन्दिर में जाते समय माँ नारायण स्वामीजी को साथ ले गई थीं। इस तरह की कई घटनाएं माँ के साथ हुई किन्तु उनमें से अधिकतर गोपनीय ही बनी रही।

माँ जब भी अहमदाबाद बड़ौदा तथा गुजरात के अन्य स्थानों पर जाती थीं, उनके दर्शन के लिए श्रद्धालुओं की भीड़ उमड़ पड़ती थी। सन् 1951 में मोरवी राजपरिवार के महाराजा के अनुरोध पर माँ अहमदाबाद से मोरवी गईं। उन्होंने अपने राज्य की ओर से माँ का शाही स्वागत किया था। वर्ष 1957 में कांतिभाई (स्वामी भागवतानन्द के नाम से परिचित) ने माँ का जन्मदिन अहमदाबाद में मनाने के लिए व्यापक स्तर पर प्रबंध किए थे। वहां माँ ने दिव्य भावावेश में साष्टांग लेटकर सभी को अभिवादन किया। इसके बाद वर्ष 1963 में श्री के एम मुनशाह ने अहमदाबाद में माँ की उपस्थिति में तेरहवें संयम सप्ताह का विशाल आयोजन किया था। इस बीच कई गुजराती कन्यायें माँ के पास सदा के लिए आ गई एवं आश्रम में ब्रह्मचारिणी हो गईं।

गुजरात के तत्कालीन राज्यपाल श्रीमन्न नारायणजी के अनुरोध पर माँ सितंबर 1972 में अहमदाबाद आई थीं तथा राजभवन में रुकी थीं। उनके ठहरने के लिए राज्यपाल ने राजभवन के उद्यान में विशेष अतिथिगृह की व्यवस्था की थी। राज्यपाल एवं उनकी पत्नी ने जिस प्रकार माँ का आदर व सम्मान किया, वैसा प्रायः किसी शासकीय अतिथि का ही किया जाता

था। यह दम्पति माँ के स्वागत के लिए रेलवे स्टेशन गयी थी तथा उन्होंने राजभवन के दरबार हॉल में माँ का भव्य सम्मान समारोह का आयोजन किया। सौ से अधिक गणमान्य लोगों ने इस समारोह में भाग लिया था। सभी धर्मों एवं मतों के करीब चार हजार से अधिक लोग माँ के दर्शन के लिए राजभवन के उद्यान में एकत्र हुए थे।

माँ ने वहां कहा था, ''जैसे कि एक ही व्यक्ति को विभिन्न लोगों द्वारा पिता, पुत्र या पति के रूप में देखा जाता है वैसे ही सभी संप्रदायों के लिए एक ही भगवान हैं । मनुष्य जीवन एक अनुपम उपहार है। सभी जीवित प्राणियों में केवल मानव मन को ही भगवत-दिव्यता अनुभव करने की शक्ति होती है। प्रत्येक व्यक्ति को मानव जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए; भले ही वह किसी भी जाति, धर्म या सम्प्रदाय का हो।'' वापसी की यात्रा के दौरान रेलगाड़ी जिस भी स्टेशन पर रुकती थी, वहां माँ की प्रतीक्षा में भारी भीड़ खड़ी रहती थी।

फरवरी 1973 में माँ जब अहमदाबाद रेलवे स्टेशन पहुंची तो वहां उनके स्वागत में जन-समुद्र उमड़ पड़ा था। माँ जहां कहीं भी जाती थीं, लोग अपने सन्देहों के समाधान के लिए एवं मार्गदर्शन लेने उनके पास आते थे। बड़ौदा में एक व्यक्ति जानना चाहता था कि क्या पूर्वजन्म होता है? इसके उत्तर में माँ ने कहा, ''होता है, किन्तु उन्हीं का होता है जो पूर्वजन्म या पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं। पुनर्जन्म में आत्मा का पारगमन होता है। जिनके संस्कार में ऐसा नहीं है, उन्हें इसकी अनुभूति नहीं होती।''

नर्मदा तट पर स्थित भीमपुरा आश्रम में माँ के प्रवास के समय माननीय श्री नरेन्द्र मोदी अपने युवावस्था में नर्मदा परिक्रमा के दौरान माँ के दर्शन के लिए आये थे। उस समय वे एवं उनके साथी भूखे थे। माँ ने बहुत ही आदर एवं स्नेह के साथ मोदीजी व परिक्रमा कर रहे उनके साथियों को भोजन कराया। वर्षों बाद माननीय मोदीजी भारत के प्रधानमंत्री बनने के उपरान्त नवम्बर 2014 में स्वयं माँ के वाराणसी आश्रम में पधारे। उन्होंने माँ के कमरे में जाकर माँ के बिस्तर पर श्रद्धा-सुमन अर्पित करने के बाद प्रणाम किया एवं बिस्तर पर रखी माँ की फोटो के सम्मुख कुछ देर मौन खड़े रहे। उन्होंने लगभग चालीस वर्ष पूर्व माँ के उपरोक्त दर्शन के विषय में याद करते हुए कहा कि माँ का अनुग्रह वह कैसे भूल सकते हैं।

सन् 1977 में महामण्डलेश्वर स्वामी ब्रह्मानन्दजी के अनुरोध पर चांदोद के बदरिकाश्रम में 28वां संयम सप्ताह महाव्रत के उपलक्ष्य में माँ वहां उपस्थित थीं। यह समारोह नर्मदा नदी के समीप तैयार किए गए एक विशाल पण्डाल में हुआ था। लगभग एक हजार लोगों ने इस महाव्रत में भाग लेने का संकल्प लिया था। एक दिन माँ ने कही थी, "सद्‌गुरु अपने शिष्य को कभी नहीं छोड़ता। शिष्य भले ही भागने का जितना भी प्रयास करे, गुरु उसे कभी नहीं जाने् देता है।" संयम सप्ताह के बाद माँ कुछ दिनों के लिए भीमपुरा आश्रम में भी आई थीं।

सन् 1978 में भीमपुरा के समीप नांडियाद के संतराम मन्दिर में संयम सप्ताह आयोजित किया गया जिसमें बड़ी संख्या में श्रद्धालुओं ने भाग लिया। यहां के आश्रमवासियों के सेवाभाव से माँ बहुत प्रसन्न एवं प्रभावित हुई थीं। दिवंगत संतरामजी सूक्ष्म रूप में माँ के समक्ष प्रकट हुए थे।

सन् 1979 के जनवरी एवं अक्तूबर में माँ दो बार भीमपुरा आश्रम में विश्राम करने के लिए आईं। उन्होंने अपने को अपने छोटे से कक्ष तक ही सीमित रखा और बहुत ही कम बाहर निकलीं। जनवरी 1981 में माँ एक माह तक भीमपुरा आश्रम में ही रहीं। माँ की उपस्थिति में वहां सरस्वती पूजा एवं शिवरात्रि पूजा आयोजित की गई थी। यह माँ का भीमपुरा आश्रम में अंतिम प्रवास था।

बाद में आश्रम की ब्रह्मचारिणी मधुबेन के प्रयास के फलस्वरूप एवं तत्कालीन गुजरात के मुख्यमन्त्री माननीय नरेन्द्र मोदीजी के विशेष सहयोग से अहमदाबाद में 'श्री श्री माँ आनन्दमयी नाम स्मरण स्थली' के लिए भूमि प्राप्त हो सकी जहां मुम्बई के श्री जय मेहता के आर्थिक सहयोग से एक सुन्दर आश्रम का निर्माण हुआ। यह आश्रम वर्तमान में माँ के भीमपुरा आश्रम की कमेटी के सहयोग से चल रहा है। वर्ष 2012 में प्रख्यात रामकथा प्रवचनकर्ता श्रद्धेय मुरारी बापू एवं विशिष्ट महात्माओं की उपस्थिति में इसका उद्‌घाटन किया गया। वर्षों पहले मुरारी बापूजी जब पहली बार माँ के दर्शन के लिए कनखल आश्रम आये थे, माँ ने उनसे कहा था, "बाबा, राम कथा ही कथा और सब वृथा व्यथा।" माँ की अनुप्रेरणा लेकर उन्होंने रामकथा कहना प्रारम्भ किया और विख्यात हो गये।

शिमला में माँ एवं भक्तों द्वारा दिल्ली में आश्रम स्थापना का संकल्प

सन् 1936 में माँ सोलन में महाराजा दुर्गा सिंह के यहां रुकी थीं। राजमहल परिसर में उन्होंने माँ के रहने के लिए एक सुन्दर भवन का निर्माण कराया था। वहां से माँ शिमला गई। शिमला में माँ के ठहरने का प्रबंध 'कालीबाड़ी' में किया गया था। माँ के दर्शन के लिए श्रद्धालुओं की भीड़ उमड़ पड़ी। उस समय स्थानीय नागरिकों और पर्वतीय जनों के उत्साह को नियन्त्रित करना कठिन हो जाता था। वे माँ को घेर लेते थे और उनके पास देर रात तक बैठकर अपने प्रश्नों के माँ के द्वारा दिए गए दिल को छू लेने वाले उत्तरों को लीन होकर सुनते रहते थे।

उन्होंने माँ से पूछा कि भगवद् नाम कीर्तन करते समय मन भटक क्यों जाता है? माँ ने कहा-"गलती तुम्हारे भीतर है, जिस तरह से तुम अपने साथ व्यवहार कर रहे हो उसमें जरूर कोई गलती है। जो तुम देख रहे हो, जिससे तुम मिल रहे हो, जो कुछ तुम चर्चा करते हो उसके कारण भटकाव हो सकता है, जिसके बारे में तुम्हें होश ही नहीं रहता है। इसलिए यदि कोई यह पथ चुनता है तो उसे लोकसंग छोड़ देना चाहिए और एकाग्र होने के लिए एकांत में रहना चाहिए। प्रारम्भ में यह सुनिश्चित करने के लिए सतर्क रहना चाहिए जिससे मन को ईश्वर की दिशा में लगाने में भटकाने वाली कुछ भी बीच में नहीं आए। सत् पुरुषों का संग और सत् चर्चा करो। सत् पुरुषों के संगति और उनकी जीवनी पढ़ने से तुम्हारा मन शुद्ध होगा और तुम्हारे विचार उनकी ओर ले जाने में मदद मिलेगी।" माँ ने यह भी परामर्श दिया था-"अपने शरीर को लम्बे समय तक स्थिर रखने का प्रयास करो। जितनी देर तक ऐसा कर सकोगे, उतनी ही शांति प्राप्त करोगे। भगवान का नाम जप करो और वह तुम्हें सब कुछ देगा।"

उन दिनों भारत की राजधानी को गर्मियों में छह माह के लिए दिल्ली से शिमला स्थानांतरित कर दिया जाता था। बड़ी संख्या में सरकारी कर्मचारी दिल्ली से शिमला आ जाते थे। उनमें से कई का नाम कीर्तन और 'हरे कृष्ण नाम' के गायन में विशेष झुकाव था। वे कालीबाड़ी में माँ के प्रवास के दौरान हरे कृष्ण 'नाम-यज्ञ' (कीर्तन) का आयोजन करते थे। कीर्तन सुनकर श्री माँ महाभाव में चली जाती थीं। आंधी में नाचते हुए किसी सूखे पत्ते की तरह माँ चक्कर काटते हुए नाचने लगती थीं, गिर पड़ती

थीं और अपने पैरों के अंगूठे पर खड़ी हो जाती थीं। माँ इसी महाभाव में उसी कमरे में चली जाती थीं जहां कीर्तन चल रहा होता था। श्री माँ अपने शरीर के प्रति पूर्णतया बेसुध हुआ करती थीं। उनका उज्ज्वल चेहरा सौन्दर्य से दीप्त रहता था और वे अपने पूर्ण वैभव में प्रतीत होती थीं। माँ को अपने बीच में पाकर गायक भाव विभोर हो जाते थे तथा कीर्तन अपने चरम जमजमाहट पर पहुंच जाता था। इसके बाद माँ समाधि की स्थिर एवं गतिहीन अवस्था में पहुंच जाती थीं। उन्हें धीमे से किसी कमरे में ले जाया जाता था और वे अगले दिन दोपहर तक उसी अवस्था में बनी रहती थीं।

कालीबाड़ी के कीर्तन करने वाले अधिकतर लोग दिल्ली में रहते थे। वे श्री माँ के परम भक्त बन गए। दिल्ली लौटने पर वे दिल्ली में एक आश्रम बनवाने के सन्दर्भ में सोचने लगे ताकि जब भी वे दिल्ली में रहते हों तो उन्हें माँ का सान्निध्य प्राप्त हो सके। जब एक श्रद्धालु ने दिल्ली में आश्रम बनाने का प्रसंग उठाया तो माँ ने कहा–"देखो तुम्हारे लिए आश्रम या अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। मैं केवल यही चाहती हूं कि तुम लोग शांति एवं सौहार्द के साथ रहो। तुम्हारे भीतर सद् भाव विकसित हो। चूंकि तुम आश्रम की बात कर रहे हो, पूरा ब्रह्माण्ड एक आश्रम है, उसे तुम सीमाहीन आश्रम कह सकते हो।"

तथापि वे वंचित नहीं रहे। माँ की कृपा से वे दक्षिणी दिल्ली के कालकाजी में एक भूखण्ड प्राप्त कर वहां एक आश्रम का निर्माण करवाने में समर्थ हुए जिसका उद्‌घाटन अगस्त 1954 में माँ की उपस्थिति में हुआ। उस समय वह स्थान कालकाजी क्षेत्र में एक अविकसित चट्टानी इलाका था। कीर्तन के लिए एक गोल हॉल का निर्माण करवाया गया तथा माँ ने उसे नाम दिया–"नाम ब्रह्म मन्दिर।"

माँ को नाम कीर्तन से विशेष अनुराग था। कई बार वे स्वयं अपनी मधुर ध्वनि से कीर्तन गाती थीं और लोगों से उसका अनुसरण करने को कहती थीं। माँ कहती थीं कि नाम कीर्तन से स्थान और उसका परिवेश शुद्ध हो जाता है। नाम कीर्तन करने वाला न केवल स्वयं को शुद्ध करता है बल्कि उसे सुनने वाला भी इससे शुद्ध हो जाता है। कीर्तन गान के लिए उनका परामर्श था–"कीर्तन सत्र के प्रारम्भ एवं अंत में आंख बंद करके कुछ समय के लिए ध्यान करना अच्छा होता है। यदि कीर्तनियों के समूह



वाराणसी आश्रम में श्री माँ के कमरे में माँ की फोटो के सम्मुख नमन करते हुए भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी।



भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी का वाराणसी आश्रम में पधारने पर स्वागत करते हुए इस पुस्तक के लेखक श्री सोमेश चन्द्र बनर्जी (सोमुदा) तत्कालीन जनरल सेक्रेटरी एवं स्वामी देवेशानन्द

ऊपर की ओर देखते हुए और धीमे धीमे वृत्ताकार होकर धूमते हुए कीर्तन करता है तो विशेष प्रभाव होता है।'' श्री माँ की उपस्थिति में नवंबर 1957 में दिल्ली आश्रम में 'हरे कृष्ण कीर्तन' का आयोजन किया गया था। अब भी प्रत्येक माह के अंतिम रविवार को इस आश्रम में सूर्योदय से सूर्यास्त तक हरे कृष्ण नाम कीर्तन का आयोजन किया जाता है।

माँ ने एक बार आश्रम से संलग्न एक बड़े भूखण्ड को लेने के बारे में इंगित किया जहां बाद में कई मन्दिरों का निर्माण करवाया गया। जब उस भूखण्ड में मन्दिर की स्थिति का चयन करने के लिए माँ से अनुरोध किया गया तो उन्होंने वहां उनके आने से पहले एक कुर्सी रखवाने को कहा। वहां आने के बाद माँ आकर एक जगह खड़ी हो गई और कुर्सी को वहां लाकर रखने के लिए कहा। माँ ने कुर्सी पर बैठकर मन्दिरों के प्रस्तावों के बारे में सुना और इसके बाद मन्दिरों के स्थल के बारे में कोई संकेत किए बिना वहां से चली गईं। उस समय आश्रम का प्रभार देख रहे स्वामी स्वरूपानन्दजी के मन में सहसा यह बात आयी कि माँ ने वहां आने के बाद कुर्सी की स्थिति क्यों बदलवाई। उन्होंने तुरंत मन्दिर के लिए वह स्थान तय कर दिया जहां माँ कुर्सी पर बैठी थीं।

प्रारम्भ में वहां एक शिव मन्दिर और हनुमान मन्दिर बनवाया गया। बाद में माँ काली एवं स्वामी मुक्तानन्द गिरिजी का मन्दिर भी निर्मित करवाया गया जिसका उद्‌घाटन मई 1979 में माँ की उपस्थिति में किया गया। बहुत बाद में सफेद संगमरमर का एक भव्य मन्दिर भी वहां निर्मित करवाया गया जिसमे माँ की प्रतिमा प्रतिष्ठित की गयी। इन सभी मन्दिरों में प्रतिदिन नियमित रूप से पूजा एवं अन्नभोग चढ़ाया जाता है।

माँ ने एक बार संकेत किया था कि द्वापर युग में पाण्डवगण वहां रहते थे। कहा जाता है कि इसी स्थान से भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को लेकर समीप के माँकाली मन्दिर गये थे ताकि उनके आशीर्वाद से महाभारत के युद्ध में पाण्डवों को विजय मिल सके। यहां काली मन्दिर की स्थापना के बीच क्या रहस्य है, भला कौन बता सकता है? क्या इस स्थान का उस प्राचीन काली मन्दिर से कोई सम्बन्ध है, जहां श्रीकृष्ण ने अर्जुन को लेकर गए थे? माँ ने इस बारे कुछ भी खुलासा नहीं किया।

माँ जब दिल्ली रहती थीं तो उनके दर्शनों के लिए लोगों का तांता

लगातार बना रहता था। कई बड़े महात्मा, देश-विदेश के विशिष्ट नेता, व्यापारी, उद्योगपति, उच्च पदाधिकारी और असंख्य श्रद्धालु कालकाजी आश्रम आकर माँ के दर्शन करते थे। प्रधानमन्त्री पण्डित नेहरू, इंदिराजी और उनके परिवार के सदस्यों ने कई बार आश्रम आकर माँ के दर्शन किए। सन् 1957 के संयम सप्ताह में श्री मोरारजी देसाई तथा बाबू जगजीवन राम अपनी पत्नी के साथ माँ के दर्शनों के लिए आए थे। उसके बाद श्री जगजीवन राम कई बार माँ के पास आए। एक बार वे माँ को बहुत आदर के साथ दिल्ली में अपने आवास पर ले गए थे।

दिल्ली आश्रम में माँ की उपस्थिति में जन्मोत्सव, दुर्गा पूजा, काली पूजा, अन्नकूट आदि बड़े धार्मिक उत्सवों के आयोजन किए गए थे। वर्तमान में यह आश्रम परिसर शहर के भीतर रहते हुए भी कोलाहल से दूर पेड़-पौधों की मनोरम हरित पट्टी से चारों ओर से घिरा हुआ स्थान है। अब आश्रम से केवल आधे किलोमीटर की दूरी पर 'गोविन्दपुरी' मेट्रो स्टेशन स्थित है।

माँ का रांची में आगमन

झारखण्ड राज्य के पठारी क्षेत्र में बसा रांची एक शहर है जो वर्तमान में इस राज्य की राजधानी है। माँ का आश्रम यहां शहर के बीचों-बीच मुख्य मार्ग पर स्थित है। रांची के प्रख्यात डेन्टल सर्जन एवं चिरकुमार डॉ. प्रियरंजन घोष द्वारा दिसंबर 1953 में दान किए गए नवनिर्मित मकान में यह आश्रम स्थापित किया गया था। उन्होंने अपनी मेडिकल प्रेक्टिस छोड़ दी और वे ब्रह्मचारी के तौर पर स्थायी रूप से रहने के लिए आश्रम में आ गए एवं वे प्रायः माँ के पास चले आते थे। वे गिरिजी के शिष्य एवं एक अच्छे साधक थे।

माँ के निर्देशानुसार उन्होंने कोलकाता के प्रसिद्ध शिल्पकार श्री निताई पाल द्वारा अष्टधातु से काली माँ की आकर्षक प्रतिमा बनवायी। इसको माँ की उपस्थिति में रांची आश्रम के एक कमरे में प्रतिष्ठित किया गया। काली माँ की प्राण-प्रतिष्ठा के बाद ही देखा गया कि उनके गले में पहनाये गये सोने के हार में लगा लाकेट अपने आप हिलने लगा। काली माँ की प्रत्यक्ष उपस्थिति एवं उनकी करुणा लीला को अनेक जनों ने अनुभव किया एवं अभी तक करते हैं।

वर्ष 1954 में आश्रम के बाहर खाली पड़े स्थान पर माँ की उपस्थिति में एक बार दुर्गा पूजा का आयोजन किया गया। जहां दुर्गा प्रतिमा स्थापित की गई थी उस स्थान को माँ ने चिन्हित करने के लिए कहा। बाद में यह जमीन खरीद ली गई तथा जिस स्थान पर दुर्गा प्रतिमा स्थापित की गई थी, वहीं वर्तमान काली मन्दिर का निर्माण किया गया। 21 अक्तूबर 1962 को माँकाली को नवनिर्मित मन्दिर में स्थानांतरित कर माँ की उपस्थिति में इन्हें प्रतिष्ठित किया गया। माँ ने इंगित किया था कि सदियों पहले समीपवर्ती रातू एस्टेट की कुलदेवी काली माँ का मन्दिर उसी स्थल पर था। माँ के ख्याल से रातू राजवंश के महाराजा को रांची आश्रम के आजीवन अध्यक्ष बनाया गया। इस प्रकार माँ ने इस राज घराने को सदा के लिए काली माँ की सेवा की जिम्मेदारी में सम्मिलित कर लिया।

वर्ष 1965 में माँ के जन्मोत्सव की व्यवस्था इसी आश्रम में की गई। परमपूज्य हरि बाबा तथा देश के विभिन्न भागों से संत-महात्मा इस अवसर पर यहां पधारे। इस बार माँ ने लगभग दो माह रांची में व्यतीत किये। एक बार रांची में स्थित 'एच ई सी' कारखाने में काम कर रहे चेकोस्लोवाकिया के एक इंजीनियर ने माँ से पूछा, "मैं पुनर्जन्म या आत्मा के शरीर बदलने पर विश्वास नहीं करता; क्या इससे कोई अंतर पड़ता है?" इस पर माँ का उत्तर था- "हमारे लिए सही अस्तित्व केवल एक ही है-भगवान को समर्पित जीवन। वास्तविक मृत्यु केवल एक बार ही होती है-इसे तुम मृत्यु की मृत्यु कह सकते हो। इसके परे ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे जीवन या मृत्यु कहकर वर्णित किया जा सके।"

बाद में, गिरिजी का संगमरमर के विग्रह को माँ की उपस्थिति में अप्रैल 1980 में अक्षय तृतीया को काली मन्दिर में स्थापित किया गया। प्रतिमा की स्थापना का आयोजन समारोह तीन दिनों तक चला था। प्रतिष्ठा समारोह 15 अप्रैल को शुरू हुआ था तथा दीदीमा के पुत्र माखन (मामाजी) ने सारे शास्त्रीय रीति-रिवाज के साथ इसे सम्पन्न किया। यह सारा आयोजन कनखल के निर्वाणी अखाड़ा के महन्त गिरिधर नारायण पुरी जी की निगरानी में हुआ था। सम्भवतः यह माँ का यहां अन्तिम प्रवास था। बहुत बाद में माँ की संगमरमर की प्रतिमा को काली माँ की मूर्ति के बगल में सन् 2007 में स्थापित किया गया। इस पावन अवसर पर झारखण्ड के मुख्यमंत्री भी उपस्थित थे।

माँ राजगीर में

बिहार राज्य में स्थित राजगीर के एकांत स्थल पर माँ का एक छोटा-सा आश्रम है जो वर्ष 1955 में स्थापित किया गया था। यह क्षेत्र चट्टानी है क्योंकि पहाड़ यहां से अधिक दूर नहीं हैं। द्वापर युग में राजा जरासन्ध की यहां राजधानी थी एवं यह स्थान राजगृह कहलाता था। भगवान श्रीकृष्ण ने जरासन्ध को यहीं भीम के द्वारा मल्लयुद्ध में मरवाकर 16100 बन्दी राजकुमारियों का उद्धार किया था। यहां का वातावरण कोलाहल शून्य एवं शांत है जो साधना के लिए पूरी तरह उपयुक्त है। विश्राम के लिए माँ यहां कई बार ठहरी थीं।

सन् 1965 में आश्रम में निर्मित शिव मन्दिर का उद्घाटन माँ की उपस्थिति में हुआ था। मन्दिर के अन्दर तीन शिवलिंग स्थापित हैं। माँ के मन्दिर से एक बड़ा हॉल जुड़ा हुआ है तथा बाद में एक दोमंजिला अतिथिगृह भी वहां निर्मित किया गया। यहां भवनों के निर्माण कार्य के दौरान भूमि खोदने पर मनुष्य का एक असाधारण बड़ा कंकाल मिला था।

माँ के करीबी भक्त स्वामी विरजानन्दजी प्रायः राजगीर आकर रहते थे। विशेषकर 'स्वक्रिय-स्वरसामृत' पुस्तक के लिए माँ के द्वारा लिखाये गये आलेखों के संकलन हेतु यहां का शांत वातावरण उनके लिए बहुत अनुकूल था। उनके प्रवास के दौरान एक बार एक विचित्र घटना घटी। वे तपस्या के लिए अक्सर रुद्रकूट पहाड़ी और वेणुवन जाते थे जो भगवान गौतम बुद्ध का पसंदीदा स्थल था। माँ जब राजगीर में थीं तो वे भी इन स्थलों पर गई थीं। एक बार शाम को आश्रम लौटते समय पहाड़ी सड़क के तीखे मोड़ पर विरजानन्दजी का एक बाघ के साथ बहुत करीब से सामना हुआ। जब वह बाघ उन पर छलांग लगाने जा ही रहा था कि सहसा न जाने कहां से एक ट्रक आ गया और उन्होंने वाहन के भीतर जाकर अपनी जान बचाई। इस घटना के करीब एक साल बाद माँ के संग विरजानन्दजी जब इसी सड़क पर कार से गुजर रहे थे तो माँ ने स्वयं अपनी ओर से उनसे कहा, "क्या यह वही जगह थी जहां तुम्हें बाघ मिला था?" विरजानन्दजी समझ गए कि माँ सदा उनकी देखभाल करती हैं तथा उस दिन माँ की असीम कृपा से ही उनकी रक्षा हुई थी।

राजगीर आश्रम में पानी की कमी के कारण वहां एक कुआं

खुदवाने के बारे में विचार किया गया। एक दिन माँ जब आश्रम के खुले स्थान पर टहल रही थीं तो आश्रम के सचिव ने माँ को इस प्रस्ताव से अवगत करवाया और उनसे उस स्थल का चयन करने का अनुरोध किया जहां आश्रम में कुआं खुदवाया जाए। माँ ने टहलते-टहलते एक स्थान पर रुककर सचिव की ओर देखा और वे बिना कोई निर्देश दिए उस जगह से चली गईं। सचिव ने उस स्थान को चिन्हित कर लिया जहां माँ ने टहलना रोक दिया था और ठेकेदार से वहां इस तरह खुदाई करने को कहा जिससे चिन्हित स्थल कुएं के मध्य में रहे।

करीब एक पखवाड़े के बाद जब वे काम की प्रगति को देखने के लिए पटना से आए तो वे यह देखकर खिन्न हो गए कि चिन्हित किए गए स्थान को मध्य में रखने के बजाय उससे कुछ हटकर खुदाई की जा रही है। इसका कारण ठेकेदार ने यह बताया कि पहले वाले स्थान पर काम करने से नीचे एक बड़ी चट्टान को काटना पड़ता इसलिए उस जगह को बदलना पड़ा। अधिक गहराई पर खुदाई करने पर पता चला कि पानी से भरा हुआ एक प्राचीन पक्का कुआं वहां था जिसका कुछ ही हिस्सा दिखाई पड़ रहा था। माँ द्वारा संकेत किये गये स्थल को केन्द्र मानकर यदि खुदाई की गयी होती तो उस प्राचीन कुएं को पूरी तरह से अनावृत्त किया जा सकता था।

माँ अगस्त 1978 में राजगीर गई थीं और विश्राम लेने के लिए वहां एक पखवाड़े रुकी थीं। बाद में दिसंबर 1981 में वह अपने बिगड़ते स्वास्थ्य के सुधार एवं विश्राम के लिए वहां कुछ समय पूरी तरह से एकांत में रहीं थीं। माँ की इस जगह पर वह अंतिम यात्रा थी।

माँ नैमिषारण्य में

नैमिषारण्य उत्तर प्रदेश के सीतापुर जिले में गोमती नदी के तट पर बसा हुआ एक छोटा-सा नगर है। यह लखनऊ से केवल 70 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। सत्ययुग में नैमिषारण्य को सबसे पवित्र तीर्थ माना जाता था। यहां चौरासी हजार ऋषियों ने परम विद्वान ऋषि सूतजी से पुराण सुने थे। अतः इस स्थल पर माँ का आना अवश्यम्भावी था और वे यहां वर्ष 1936 में पहली बार आई थीं। वहां के चक्रतीर्थ आदि प्राचीन पवित्र स्थलों

की दयनीय दशा देखकर माँ को इनके समुचित संस्कार का ख्याल तभी आया था।

सन् 1960 में माँ के निर्देशानुसार द्वादश संयम सप्ताह का आयोजन नैमिषारण्य के नारदानन्द आश्रम में निश्चित किया गया। यह एक सप्ताह तक चलने वाला ऐसा कार्यक्रम था जिसमें भाग लेने वाले नियमित अनुशासन, नियंत्रण एवं सामूहिक साधना में समय बिताने थे। अभी तक आयोजित सबसे प्रभावशाली संयम सप्ताहों में से यह एक था जिसका सम्पादन केवल माँ के विशेष ख्याल के कारण ही वहां सम्भव हो सका।

संयम सप्ताह शुरू होने के कुछ पहले गोमती नदी में भयंकर बाढ़ आने के कारण बाढ़ का पानी आयोजन स्थल सहित पूरे नगर में बुरी तरह भर गया था। माँ उस समय उनके भक्त श्री रामेश्वर सहाय, जो लखनऊ में उत्तर प्रदेश के चीफ कंसरवेटर आफ फारेस्ट पद पर तैनात थे, उनकी प्रार्थना पर लखनऊ से वहां आई थीं। माँ को वन विभाग के गेस्ट हाउस में ठहराया गया था। दिवाली के रात को वहीं माँ की उपस्थिति में काली पूजा की व्यवस्था की गई थी। लखनऊ शहर भी बाढ़ से प्रभावित हो गया था परन्तु इसके बावजूद माँ के दर्शन पाने के लिए विशाल भीड़ उमड़ पड़ी थी। लगता था कि नगर के अधिकतर मोटर गाड़ियां वहीं आ खड़ी हो गई हो। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल ने सपरिवार आकर माँ का दर्शन किये। तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्तजी भी माँ से मिलकर के गये। सबको दर्शन देने के बाद माँ पण्डाल से पूजा मण्डप जाने के लिए उठ खड़ी हुई। ठीक उसी समय सफेद लम्बे दाढ़ी और लम्बे बाल वाले एक प्रौढ़ साधु माँ के समीप आये एवं कहा कि माँ उन्हें पहचानेंगी नहीं क्योंकि लगभग तीस वर्ष पहले दक्षिण भारत के भ्रमण के समय उन्होंने माँ का दर्शन किया था। माँ ने तुरन्त कहा, ''हां बाबा, तुम्हे याद है कि नाव से यात्रा के समय तुमसे भेंट हुई थी और तुमने इस शरीर को एक छोटा-सा गीता भेंट की थी?'' इतना कहकर माँ चली गईं। वह साधु अचम्भित हो गये कि तीस वर्ष बाद भी माँ ने उन्हें कैसे पहचान लिया जबकि उनकी दाढ़ी और लम्बे बाल सहित वर्तमान चेहरे से उस समय के दुबले-पतले किशोरवय चेहरा का कोई मेल ही नहीं था। परन्तु, उन्हें शायद मालूम नहीं था कि श्री माँ के लिए कोई भी अनजान नहीं होता है।

बाढ़ की भयंकर स्थिति के कारण माँ से अनुरोध किया गया कि वे संयम सप्ताह का आयोजन नैमिषारण्य के बजाय लखनऊ में वहीं आयोजन करने की अनुमति दें किन्तु माँ ने इस प्रस्ताव की स्वीकृति नहीं दी। उन्होंने एक गिलास पानी मांगा और पीते समय उन्हें यह ख्याल आया कि जिस प्रकार वह गिलास का पानी खाली कर रही हैं, उसी प्रकार नैमिषारण्य में बाढ़ का पानी खाली हो जाए। आश्चर्यजनक ढंग से बाढ़ का पानी बहुत ही कम समय में उतर गया तथा संयम सप्ताह अपने निर्धारित समय पर नैमिषारण्य में ही प्रारम्भ हुआ।

कार्यक्रम में कई ज्ञानी संत-महात्मा सम्मिलित हुए और विभिन्न विषयों पर प्रवचन दिया गया। इसमें बड़ी संख्या में भाग लेने वाले व्रतियों का भी संगम हुआ था। संयम सप्ताह के बाद वहां भागवत सप्ताह भी आयोजन किया गया। शुकताल के स्वामी विष्णु आश्रमजी ने श्रीमद् भागवत पर प्रवचन किया।

संयम सप्ताह अवधि में श्री माँ ने ब्रह्मपुराण का पाठ करने का सुझाव दिया था किन्तु नैमिषारण्य एवं आसपास में कहीं इसकी प्रति उपलब्ध नहीं हुई। पुराणों की जन्म स्थली पर ही पुराणें नहीं मिलते, इस बात को ध्यान में रखते हुए श्री माँ ने नैमिषारण्य के प्राचीन गौरव को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया और वहां पुराणों के संरक्षण का काम प्रारम्भ किया गया।

हनुमान टीला पर आश्रम के लिए एक जगह का प्रबंध किया गया। यह टीला नगर का सबसे ऊंचा स्थल था जहां गोमती नदी में अधिकतम बाढ़ आने की स्थिति में भी बाढ़ का पानी वहां तक नहीं पहुंच सका था। इस टीले पर हनुमानजी का एक प्रसिद्ध मन्दिर है जहां हनुमानजी की विशाल प्राचीन प्रतिमा स्थापित है। ऐसा कहा जाता है कि पाण्डवों ने यहां प्रवास के दौरान इस विशाल प्रतिमा को स्थापित किया था। आश्रम का यह स्थल हनुमान मन्दिर से थोड़ी ही दूर में स्थित है।

माँ ने यहां आश्रम के निर्माण के साथ भव्य पुराण मन्दिर का निर्माण शुरू करवाया। इसका उद्घाटन कार्यक्रम 9 से 11 दिसंबर 1967 तक तीन दिन चला था। पुराण मन्दिर में सभी अठारह पुराणों और चारों वेदों की प्रतियां प्राप्त कर रखी गई। पुराणों पर सुन्दर ढंग से जिल्द चढ़ाकर एक

चन्दन की लकड़ी वाली कांच की अलमारी में स्थापित किया गया ताकि उनको संरक्षित रखा जा सके। माँ की गहरी अंतरदृष्टि उनके संरक्षण मात्र तक सीमित नहीं थी। पुराणों के नित्य पाठ, पूजा एवं आरती का भी प्रबंध किया गया। लगभग डेढ़ वर्ष बाद यहां माँ की उपस्थिति में वृंदावन के स्वामी अखण्डानन्दजी के दो सप्ताह तक भागवत प्रवचन हुए। इस समारोह में हरिबाबा, स्वामी शरणानन्दजी, स्वामी गोविन्द प्रकाशजी तथा क्षेत्र के असंख्य लोगों ने भाग लिया था। कलकत्ता से मंगवाए गए भव्य विशाल पण्डाल को ही देखने दूर-दूर से अगंणित लोग आते थे।

पुराण मन्दिर के समीप कई और निर्माण गतिविधियां सम्पन्न हुईं। क्रमिक रूप से एक 'मातृभवन', 'यज्ञशाला' और 'अतिथिशाला' निर्मित की गई। वाराणसी के सावित्री महायज्ञ से पवित्र यज्ञाग्नि को लाया गया और उसे आश्रम में नवनिर्मित यज्ञशाला में रखा गया। यज्ञकुण्ड में इस अग्नि को 14 जनवरी 1974 को माँ की उपस्थिति में प्रज्वलित किया गया। इस समारोह में उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल डॉ. चेन्ना रेड्डी सहित कई गणमान्य लोगों ने भाग लिया। उस दिन के बाद से नित्य हवन के माध्यम से इस पवित्र यज्ञाग्नि को अभी तक सुरक्षित रखा जा रहा है। एक बार आश्रम में माँ की उपस्थिति में यह यज्ञाग्नि बुझ गई थी। माँ वहां आकर अपनी चादर यज्ञकुण्ड के भीतर डाल दी। इसके तुरंत बाद फिर से अग्नि प्रज्ज्वलित हो गई तथा वह अभी तक सुरिक्षत है।

पुराण मन्दिर के पीछे संलग्न भूमि पर 'पुराण पुरुष' का मन्दिर भी बनवाया गया। सम्पूर्ण पुराणों के निष्कर्ष के साकार रूप में पुराण पुरुष की परिकल्पना की गई है। अष्टधातु से निर्मित पुराण पुरुष की प्रतिमा स्वामी अखण्डानन्दजी के अनुरोध पर प्रतिष्ठित की गई जो एक ज्ञानी संत और भागवत के प्रकाण्ड विद्वान थे। उनके द्वारा प्रकाशित एवं सम्पादित 'चिंतामणि पत्रिका' में प्रकाशित एक चित्र को आधार बनाकर यह प्रतिमा निर्मित की गई थी। लगभग सवा मन वजन की इस प्रतिमा का शरीर मनुष्य के अनुरूप है परन्तु मुंह तोता पक्षी जैसा है। समग्र भारत एवं विश्व में यह अपनी तरह की पहली प्रतिमा है। प्रतिमा को चन्दन की लकड़ी से बने मन्दिर में रखा गया जिसमे कांच का दरवाजा लगाया गया। इस विग्रह की स्थापना माँ की उपस्थिति में वर्ष 1975 के अक्षय तृतीया के दिन की गई। माँ की उपस्थिति

में रात्रि के समय मिट्टी के पांच बड़े पात्रों में रखकर सवा लाख बत्तियां आलोकित की गईं थी।

इस अवसर पर भागवत सप्ताह भी आयोजित किया गया। स्वयं स्वामी अखण्डानन्दजी ने भागवत पर प्रवचन दिए। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल डॉ. चेन्ना रेड्डी सहित कई गणमान्य लोगों ने आकर भाग लिया। पुराणों के संरक्षण एवं नित्य पूजा पाठ आदि से नैमिषारण्य में एक नई जीवनधारा प्रारंभ हो गई। श्री माँ ने 'पुराण पुरुष' की नित्य पूजा-भोग एवं आरती के भी समुचित प्रबंध किया।

माँ से प्रेरणा प्राप्त कर राज्यपाल डॉ. चेन्ना रेड्डी ने चक्र-तीर्थ, व्यास गद्दी आदि प्राचीन स्थलों का सुन्दर ढंग से पुनः निर्माण करवाया। इस स्थान पर माँ के प्रवास के दौरान राज्यपाल के बार-बार वहां आने से जिला प्रशासन को सड़कों, बसों के संचालन, बिजली, पेयजल आदि की आपूर्ति जैसी आम सुविधाओं को बेहतर बनाने के लिए अधिक ध्यान देने पर मजबूर होना पड़ा। इस प्रकार नैमिषारण्य की प्राचीन गरिमा का पुनरुद्धार हुआ एवं भारत के अन्य पवित्र स्थलों की तरह इसे भी समुचित महत्व मिलने लगा।

अक्तूबर 1972 में माँ की उपस्थिति में वहां दुर्गा पूजा एवं काली पूजा का आयोजन किया गया। उस समय एक असाधारण घटना घटी। समीप के एक गांव से एक साधारण वृद्धा ग्रामीण महिला दुर्गा पूजा के समय आश्रम आई। उसे मन्दिर के समीप एक सुन्दर बेल वृक्ष के नीचे देखा गया जिसके समीप लॉन में लगाये गये पण्डाल में दुर्गा पूजा आयोजित की गई थी। वह वृद्धा आश्रम में किसी को नहीं जानती थी, किन्तु माँ ने दूर से इस अपरिचित महिला को देखा और उसे अपने पास बुलाया। इस महिला ने माँ को बताया कि उसने पिछले रात सपना देखा था कि माँदुर्गा ने उसे नैमिषारण्य में स्थित आनन्दमयी आश्रम में जाने को कहा जहां माँदुर्गा अन्य देवी-देवताओं के साथ एक बेल वृक्ष का आश्रय लेकर ठहरी हुई हैं। उस समय मौजूद लोगों से माँ ने कहा कि इस प्रकार की सरल महिला कभी झूठ नहीं बोल सकती। नवरात्रि के दुर्गा पूजा में यह नियमित परम्परा है कि दुर्गापूजा प्रारम्भ के पूर्व दिन षष्ठी तिथि की शाम के समय बेल वृक्ष के समीप एक छोटी-सी पूजा आयोजित की जाती है जहां माँदुर्गा एवं अन्य

देवी-देवताओं को आमंत्रित कर बेल वृक्ष में शरण लेने की प्रार्थना की जाती है। इस प्रकार उस अज्ञात ग्रामीण महिला के माध्यम से माँ ने अन्य लागों को यह ज्ञात करवा दिया कि माँदुर्गा तथा अन्य देवी-देवता वहां वास्तव में उपस्थित हो गये हैं। उस अनजान सरल भाग्यशाली महिला को भी अभावनीय रूप से माँ के दर्शन और आशीर्वाद प्राप्त हुए।

बाद में एक दिन माँ को दर्शन हुए कि शिवजी उस सुन्दर छत्रनुमा बेल के वृक्ष के नीचे तुरही बजा रहे हैं। आश्चर्यजनक ढंग से वह वृक्ष उसके कुछ दिनों बाद मुरझाने लगा और पूरी तरह सूख गया। माँ के निर्देश पर उस स्थल पर जुलाई 1981 में एक छोटा-सा शिव मन्दिर का निर्माण करवाया गया जिसमें नर्मदा नदी से लाया गया शिवलिंग माँ की उपस्थिति में स्थापित किया गया। उसके बाद से इस मन्दिर में नित्य शिव-पूजा की जाती है।

माँ के विशेष ख्याल के अनुसार पुराणों से सम्बन्धित अन्य गतिविधियां भी प्रारम्भ की गईं। पुराण मन्दिर से कुछ दूरी पर आठ एकड़ भूमि ली गई। इसका उद्देश्य यह था कि पौराणिक एवं वैदिक अध्ययन हेतु वहां एक संस्थान के लिए उपयुक्त भवन, शिक्षक एवं कर्मचारियों के आवास, आदि का निर्माण करवाया जाये। इसके अतिरिक्त छात्रावास के तीन खण्ड बनवाए गए ताकि शोध छात्रों के रहने का प्रबंध हो सके। उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल डॉ. चेन्ना रेड्डी ने इसके लिए काफी सहयोग और अपना विशेष मार्गदर्शन दिया तथा अगले राज्यपाल श्री सी पी एन सिंह ने भी संस्थान की स्थापना में अपना काफी योगदान दिया। इस शिक्षा संस्थान के परिचालना के लिए एक न्यासी मण्डल बनाया गया जिसके आजीवन अध्यक्ष डॉ. चेन्ना रेड्डी थे और डॉ. गौरीनाथ शास्त्री उसके निदेशक थे। शास्त्रीजी वाराणसी के सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के विद्वान उपकुलपति थे और यह संस्थान इसी विश्वविद्यालय से सम्बद्ध था।

विद्वान गौरीनाथ शास्त्रीजी के मार्गदर्शन में 1978 में शोध अध्ययन विभाग स्थापित किया गया। उनके दिशानिर्देशन में संस्थान को यथेष्ट ख्याति प्राप्त हुई। संस्थान के लगभग 26 छात्रों को अभी तक पीएचडी (विद्यावारिधि) की डिग्री प्राप्त हो चुकी है। इसके अलावा "आचार्य" एवं "शास्त्री" की उपाधि के लिए विद्यार्थी निःशुल्क अध्ययन कर रहे हैं। उन्हें

पढ़ाई के लिए समुचित स्टाइपेन्ड (मानदेय) भी दिया जाता है। यह संस्थान अभी तक कई राष्ट्रीय संगोष्ठियों का आयोजन कर चुका है जिसमें देश भर से विशिष्ट विद्वानों की उपस्थिति देखी गई।

वर्ष 1981 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी माँ की उपस्थिति में इस संस्थान का उद्घाटन करने आई थीं। इस संस्थान को नाम दिया गया "माँ आनन्दमयी पौराणिक एवं वैदिक अध्ययन एवं शोध संस्थान"। इस अवसर पर माँ अपने दोनों हाथों से अपना शॉल फैलाकर वहां उपस्थित सभी लोगों के पास गई और इस संस्थान के लिए भिक्षा मांगी थी। माँ को इस प्रकार का कृत्य करते हुए पहले कभी किसी ने नहीं देखा था। इस संस्थान के संचालन व उन्नति के लिए माँ का ख्याल कितना अधिक था यह इसी से पता चलता है। श्री माँ के महाप्रयाण के लगभग एक दशक बाद तक इस संस्थान को समुचित सरकारी अनुदान प्राप्त होता रहा था जिससे इसे चलाने में असुविधा नहीं होती थी। अब राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान से सरकारी अनुदान नाममात्र रह गया है। बहरहाल, अभी इस संस्थान को बहुत से धन की आवश्यकता है ताकि भारत के इस अनूठे संस्थान को वांछित ढंग से चलाया जा सके।

नैमिषारण्य में शांत एवं कोलाहल शून्य वातावरण के कारण माँ लगभग प्रति वर्ष यहां आकर विश्राम करती थीं। यहां एक बार माँ ने याद दिलाया था कि कृपा तीन स्रोतों से आती है - ईश्वर कृपा, गुरु कृपा ओर आत्म कृपा। माँ ने कहा था-"शिष्यों पर गुरु की सदैव कृपा रहती है। ईश्वर की कृपा को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि ईश्वर दयालु एवं करूणामय हैं। किन्तु यदि आत्मकृपा का अभाव है तो गुरू कृपा एवं ईश्वर कृपा प्रभावहीन हो जाती है।" माँ इस बात पर बल देती थीं कि आत्मकृपा प्राप्त करने के लिए आत्म अनुशासन, धैर्य एवं तितिक्षा (सहनशीलता) अनिवार्य है।

नैमिषारण्य आश्रम माँ के लिए अनुकूल विश्रामस्थल था। यहां साधारणतया भीड़ नहीं होती थी। माँ लगभग प्रतिवर्ष यहां विश्राम के लिए आ जाती थीं। सन् 1981-82 के जाड़े के समय माँ कुछ समय यहीं रहीं। माँ का इस जगह पर यह अंतिम प्रवास रहा।

गिरिजी की महासमाधि एवं कनखल आश्रम की स्थापना

श्री माँ अपनी माता स्वामी मुक्तानन्द गिरिजी के साथ 29 जुलाई 1970 को वाराणसी से हरिद्वार रवाना हुईं। रेलवे स्टेशन आते समय वे आश्रम के समीप मामाजी (माँ के छोटे भाई) के घर होते हुए एवं स्टेशन आने के रास्ते सिद्धगिरिबाग में गिरिजी की पोती बुलुदी के यहां दोपहर को कुछ घंटे ठहरीं जहां माँ एवं गिरिजी के भोग के साथ अन्य को भी प्रसाद पाने की व्यवस्था थी। उस समय कौन जानता था कि माँ ने हरिद्वार रवाना होने से पूर्व गिरिजी को अपने करीबों से अन्तिम बार मिलवा दिया।

हरिद्वार पहुंचकर वे कनखल में गिरिजी के शिष्य एवं परम भक्त श्री निताई बसु मल्लिक के घर रुकी थीं। यह भवन दक्ष मन्दिर के समीप था और इसका नाम था 'शान्ति निकेतन'। निताईदा की अपनी कोई संतान नहीं थी। उनकी पत्नी के निधन के बाद उन्होंने अपने मकान का एक भाग जुलाई 1962 को अपने गुरु मुक्तानन्द गिरिजी को अर्पित कर दिया था। गिरिजी ने इसे अपनी ओर से 'श्री श्री आनन्दमयी संघ' को समर्पित कर दिया। 31 जुलाई 1970 को निताईदा ने 'शान्ति निकेतन' का शेष भाग भी श्री श्री आनन्दमयी संघ को समर्पित कर दिया। हरिद्वार के अन्तर्गत कनखल में श्री माँ के आश्रम की यहीं से शुरुआत हुई।

एक अगस्त 1970 को माँ एवं गिरिजी अन्य आश्रमंवासियों के साथ जयपुरिया भवन चली गईं जो हरिद्वार में गंगा तट के रामघाट पर स्थित था। उस समय जयपुरिया परिवार ने वहां 3 से 10 अगस्त तक भागवत सप्ताह का आयोजन किया था। वृन्दावन के श्रीनाथ शास्त्रीजी इस भागवत का प्रवक्ता थे।

प्रति दिन श्री माँ पूरा दिन जयपुरिया भवन में बिताने के बाद रात के समय कनखल में 'शान्ति निकेतन' आ जाती थीं। भागवत सप्ताह में श्री कृष्ण जन्मोत्सव 8 अगस्त को मनाया गया। उस दिन श्री माँ ने देखा कि गिरिजी का मुखमण्डल बहुत उज्ज्वल एवं ज्योतिपूर्ण प्रतीत हो रहा था। उस रात माँ कनखल में शान्ति निकेतन नहीं गईं एवं जयपुरिया भवन में ही रुकी रहीं। यहां गिरिजी गंगा नदी के समीप के एक कक्ष में रह रही थीं। उनकी यह आदत थी कि वह सोने से पहले प्रति दिन माँ के कक्ष में जाती थीं और लौटते समय पास बैठकर कहती थीं-"अच्छी तरह रहना और देखो

हमें फांकी देकर (बहकाकर) चली मत जाना।'' उस दिन गिरिजी ने माँ से अपने यह परिचित शब्द नहीं कहे और अपने कक्ष में चली गईं।

उसी रात इन्दिराजी (स्वामी ध्यानानन्द) गिरिजी के कक्ष में उनसे कई बार अनुरोध किया कि वह बतायें कि माँ कौन हैं? गिरिजी प्रारंभ में मौन रहीं और अंततः वे बोली कि माँ ''पूर्ण शक्ति'' हैं। इस प्रकार एक दिव्य अनुभूत-सम्पन्न माता ने अपने देहान्त से पहले श्री माँ के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट कर दिया जो उनकी पुत्री के रूप में इस संसार में आई थीं।

उसी रात करीब एक बजे माँ अपने आप चलकर गिरिजी के कक्ष में आ गईं। उस समय गिरिजी को श्वास-कष्ट प्रारम्भ हो गया था। माँ ने भूमि पर एक बिस्तर बिछवाकर उस पर गिरिजी को लिटाया और धीमे-धीमे उनकी छाती को मलने लगीं। रात करीब डेढ़ बजे गिरिजी ने अपनी आंखें खोलीं। माँ झुकीं और उन्होंने अपने माता के चरण स्पर्श करने की चेष्टा की किन्तु गिरिजी ने तत्काल अपने पैर खींच लिए। माँ ने बाद में बताया कि गिरिजी का यह व्यवहार इस बात का साक्ष्य था कि वे माता-पुत्री के जागतिक संबंधों से ऊपर उठ चुकी थीं। यदि उनमें इस तरह की थोड़ी भी भावना होती तो माँ उन्हें कभी शरीर त्यागने नहीं देतीं। गिरिजी ने अपने अंतिम समय हाथ जोड़कर प्रणाम किया। माँ ने उनके वस्त्र ढीले किये और अपने दोनों हाथों से धीमे से उनका सिर उठाया। इस प्रकार गिरिजी ने सीधे माँ की ओर देखते हुए प्राण त्याग दिये। उस समय 'श्रावण शुक्ल शीतला सप्तमी' तिथि थी। गिरिजी ने चलते-फिरते बिना किसी का सेवा लिए एक धर्मशाला में अपने पार्थिव शरीर को त्यागा ताकि किसी को भी उनकी सेवा के लिए परेशानी नहीं हो। उस समय गिरिजी की आयु 94 वर्ष थी।

उनके शिष्यों ने अपने अति कृपावान एवं सक्षम गुरु को गंवा दिया जो उनकी भलाई का सदैव ध्यान रखती थीं। कई गरीब लोग सूचना पाते ही बुरी तरह रो पड़े मानों उन्होंने अपना कोई निकट परिजन गंवा दिया। वे प्रायः गिरिजी से आर्थिक एवं अन्य मदद बिना किसी अन्य व्यक्ति की जानकारी के प्राप्त करते थे। यही नहीं, अपना शरीर त्यागने से काफी पहले गिरिजी ने एक अलौकिक दर्शन में माँ से तीन बार यह वचन ले लिया था कि वे उनके शिष्यों को संसार सागर से पार लगवाएंगी अर्थात बार-बार जन्म एवं मृत्यु से मुक्ति दिलवाएंगी।

गिरिजी के पार्थिव शरीर को अगले दिन 9 अगस्त 1970 को कनखल में माँ के 'शन्ति निकेतन' आश्रम में लाया गया एवं उसी रात उनकी पार्थिव देह को आश्रम के छोटे से खुले स्थान में समाधि दी गई। निर्वाणी अखाड़े के महन्त स्वामी गिरिधर नारायण पुरीजी समाधि क्रिया को सम्पन्न करवा रहे थे। समाधि देते समय महन्तजी ने माँ से पूछा कि शरीर को किस दिशा में मुख कर समाधि दी जाए? माँ ने कहा, "बाबा, जो नियम हो।" जब उन्होंने कहा कि आमतौर पश्चिम में मुख कर संन्यासी को समाधि दी जाती है तो माँ ने ऊपर की दिशा में अंगुली से संकेत करते हुए कहा-"बाबा, यदि उनको वह स्थिति मिल गई हो - तो?" महन्तजी तुरन्त समझ गए एवं गिरिजी का मुख दक्षिण दिशा की ओर रखते हुए शरीर को समाधि दी गई। सामान्य तौर पर किसी देव प्रतिमा की ही इस दिशा में मुख करके स्थापना की जाती है।

अपनी प्रियतम माता के महाप्रयाण के बाद माँ ने अपने को शांत बनाये रखा था, लेकिन साथ ही वे बहुत गंभीर भी दिख रही थीं। अगले दिन दोपहर में माँ के छोटे भाई 'मामाजी' की पत्नी, मामीजी जब माँ को एकांत में भोजन करा रही थी, उस समय गिरिजी को याद करके सहसा रोने लगीं। दुख के इस तरह प्रकट होने पर माँ की भी प्रतिक्रिया देखने को मिली। उनकी गंभीरता एकदम से पिघल गई और उन्होंने बुरी तरह रोते हुए कहा-"ओह माँ! तुम भाग्यकलश तोड़कर हम सबको छोड़ कर चली गईं।"

गिरिजी की समाधि के बाद माँ के निर्देश पर गिरिजी के चित्र के समक्ष एक-एक दिन विशिष्ट देवी-देवताओं की पूजा माँ की उपस्थिति में की जाती थी। बांग्ला नववर्ष के प्रथम दिन अर्थात पहले बैशाख को माँ को यह दिव्य दर्शन हुआ कि गोपालजी घुटने के बल चलते हुए गिरिजी के कक्ष में आए और उनकी खाट पकड़कर खड़े हो गए तथा गिरिजी की ओर एकटक देख रहे हैं। माँ ने प्रेम से गोपालजी से कहा-"ओह! तुम्हारी पूजा अभी तक नहीं हुई है, इसीलिए तुम उसी की याद दिलाने के लिए आए हो।" उसके तुरंत बाद माँ ने पूड़ी-हलवा तैयार करवा कर उसका गोपालजी को भोग लगवाने का निर्देश दिया। उसके बाद से माँ की इच्छा के अनुसार कनखल आश्रम के शिव मन्दिर में हर वर्ष पहले बैसाख की शाम को गोपालजी को पूड़ी-हलवा का भोग चढ़ाया जाता है।

गिरिजी की महासमाधि के उपलक्ष्य में ऋषिकेश स्थित शिवानन्द आश्रम में स्वामी चिदानन्दजी ने विशाल साधु भण्डारा आयोजित किया। माँ स्वयं वहां उपस्थित थीं। कनखल आश्रम में 23 अगस्त 1970 को दिवंगत संन्यासी गिरिजी की याद में होने वाला विशिष्ट अनुष्ठान 'षोड़ष दान' आयोजित किया गया। गिरिजी में दरिद्रों के प्रति विशेष करुणा की भावना थी। अतः हर की पौड़ी पर दरिद्र नारायण सेवा की समुचित व्यवस्था की गई थी। सबसे विशाल भण्डारा 25 अगस्त को कनखल के निर्वाणी अखाड़ा में आयोजित किया गया। अखाड़ा भवन में हजारों भक्तों ने प्रसाद पाया।

एक वर्ष पश्चात कनखल में 29 अगस्त 1971 को गिरिजी की बरसी, महाप्रयाण होने की तिथि के अनुसार मनाई गई। गिरिजी का महाप्रयाण श्रावण शुक्ल शीतला सप्तमी को हुआ था। इस अवसर पर मध्यरात्रि में एक घन्टे के लिए गिरिजी की पूजा, कीर्तन, मौन, ध्यान आदि रखा गया एवं रात पौने बारह बजे से रात सवा बजे तक आधे घण्टे के लिए माँ की उपस्थिति में विशेष मौन व ध्यान किया गया। इसके बाद माँ के निर्देशानुसार यह विशेष परम्परा प्रति वर्ष इस तिथि में मध्यरात्रि को कनखल में गिरिजी की समाधि मन्दिर में आयोजित की जाती है।

अक्षय तृतीया के पावन अवसर पर 25 अप्रैल 1974 को गिरिजी की समाधि के ऊपर बने एक छोटे से सुन्दर मन्दिर में संगरमर की आकर्षक प्रतिमा स्थापित की गई। उसी दिन पूर्ण कुम्भ का मुख्य स्नान भी था। यह आयोजन माँ की उपस्थिति में हुआ। जयपुर में यह प्रतिमा निर्माण के समय मूर्ति की प्रतिरूप (मॉडल) में गिरिजी की सही रूप नहीं निखर पा रहा था। माँ ने स्वयं अपने हाथों से मॉडल में समुचित फेरबदल कर उसे गिरिजी के वास्तविक रूप में ला दिया। मूर्ति प्रतिष्ठा के अवसर पर हरिद्वार के विभिन्न आश्रमों के कई महामण्डलेश्वरों ने भाग लिया। ऋषिकेश के दिव्य जीवन संघ के अध्यक्ष स्वामी चिदानन्दजी, गिरिजी के शिष्य तत्कालीन उपराष्ट्रपति श्री जी. एस. पाठक तथा कई अन्य शिष्य इस अवसर पर उपस्थित थे।

गिरिजी का जन्म सन् 1877 में वैशाख (अप्रैल-मई) में हुआ था किन्तु उनका वास्तविक जन्मदिन अज्ञात है। अतः यह तय हुआ कि वर्ष 1977 में सम्पूर्ण वैशाख माह अर्थात् 14 अप्रैल से एक माह तक गिरिजी

की जन्म शताब्दी मनाई जाएगी। श्री श्री आनन्दमयी संघ के सभी आश्रमों में गिरिजी की जन्म शताब्दी को पूरे उत्साह के साथ मनाया गया एवं इस उपलक्ष्य में एक स्मारिका भी प्रकाशित हुई।

इसी बीच, कनखल में सड़क के दूसरी तरफ एक बड़ा भूखण्ड प्राप्त किया गया ताकि मुख्य आश्रम का निर्माण और विस्तार हो सके। वहां एक बड़े सत्संग हॉल सहित अतिथिगृह निर्मित करवाया गया। 10 मई 1978 को हॉल में माँ की उपस्थिति में आदि शंकराचार्य की संगमरमर एक सुन्दर प्रतिमा स्थापित की गई। ज्योतिर्मठ के स्वामी शान्तानन्दजी एवं हरिद्वार के कई महामण्डलेश्वरों ने इस समारोह में भाग लिया। सत्संग हॉल को शंकराचार्य हॉल के नाम से जाना जाता है। माँ का जन्मोत्सव समरोह, दुर्गा पूजा, संयम सप्ताह तथा अन्य महत्वपूर्ण धार्मिक उत्सव एवं कार्यक्रम यहां आयोजित किए गये। कई बड़े महात्मा, साधु, देश के बड़े नेता, उच्च अधिकारी, राजपरिवारों के लोग तथा असंख्य श्रद्धालुओं ने यहां आकर माँ के दर्शन किये। अभी तक अधिकतर कार्यक्रमों एवं उत्सवों का यहीं आयोजन किया जाता है।

धीरे-धीरे इसी बड़े भूखण्ड पर माँ के जीवनकाल में ही मातृ निवास, साधु निवास, दो यज्ञशालाएं, अन्नपूर्णा स्थल नामक भोजन कक्ष सहित रसोई परिसर जैसे भवनों का निर्माण करवाया गया। वाराणसी आश्रम से लायी गयी पवित्र यज्ञाग्नि को 14 जनवरी 1978 को यहां नवनिर्मित यज्ञशाला में समारोह पूर्वक स्थापित किया गया। बाद में एक अन्य अतिथिगृह, विद्यापीठ भवन, पुस्तकालय तथा सफेद संगमरमर से बना माँ का भव्य मंदिर भी निर्मित हुआ।

सड़क के दूसरी तरफ साधु निवास के सामने गंगा के तट पर एक अन्य आश्रम परिसर भी लिया गया। इस भूमि पर एक अन्य मातृनिवास निर्मित करवाया गया जहां मई 1982 में माँ की उपस्थिति में अंतिम जन्मोत्सव आयोजित किया गया था। माँ ने चार जुलाई तक दो माह के लिए यहां निवास किया था। इस आश्रम में यह उनका अंतिम प्रवास था। वर्तमान में इस भवन के एक भाग को आकर्षक संग्रहालय में परिवर्तित कर दिया गया है जिसमें माँ के विभिन्न फोटाग्राफ, चित्र तथा उनके द्वारा प्रयुक्त की गई विभिन्न वस्तुओं को प्रदर्शित किया गया है। इस संग्रहालय का नाम

दिया गया 'मातृ स्मृति मन्दिर'। वर्तमान में श्री श्री आनन्दमयी संघ का मुख्यालय कनखल आश्रम में है।

कनखल आश्रम में वर्ष 1981 में आयोजित अतिरुद्र महायज्ञ

हरिद्वार के कनखल आश्रम में माँ की उपस्थिति में अंतिम व्यापक धार्मिक समारोह था –'अतिरुद्र महायज्ञ'। अग्नि को संहार का देवता (रुद्र) माना जाता है तथा यह महायज्ञ समस्त सृष्टि के कल्याण के संकल्प के साथ किया गया था।

श्री श्री माँ की सेवा में निरत कुछ ब्रह्मचारिणियों के मन में अतिरुद्र महायज्ञ कराने की परिकल्पना उठी थी जिसे माँ के ख्याल से समुचित दिशा मिली। माँ ने उन्हें सात्विक तरीके से यज्ञ सम्पन्न करने की सलाह दी। इस प्रकार माँ के कुशल मार्गदर्शन से वैदिक महायज्ञों में सबसे महान यज्ञ को कनखल आश्रम में मई 1981 में माँ के जन्मोत्सव समारोह के बीच संपन्न करवाया गया।

माँ ने यज्ञ की परिकल्पना और प्रबंध के लिए कुमारी ब्रह्मचारिणियों के एक विशेष समूह को लेकर छोटी समिति गठित की। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की सेवानिवृत्त प्राध्यापिका कुमारी डॉ. पद्मा मिश्रा को समिति का अध्यक्ष चुना गया। कुमारी निर्मला हांडू (इलाहाबाद विश्वविद्यालय की सेवानिवृत्त प्राध्यापिका), कुमारी अरुणा पाण्डया एवं कुमारी पारूल बनर्जी इसकी सदस्य थीं। ब्रह्मचारिणी शान्ताजी (स्वामी पूर्णानन्द एवं भारत के पूर्व उप राष्ट्रपति श्री गोपाल स्वरूप पाठक की सबसे छोटी पुत्री) इसकी सचिव बनाई गई। माँ के पुराने भक्त श्री एस. के. दत्त (पाटनदा), श्री एस सी बनर्जी (सोमूदा) तथा अन्य लोगों को उनकी सहायता के लिए रखा गया था। उन्हें श्री माँ के मार्गदर्शन एवं निर्देशन में इस महायज्ञ की सभी जिम्मेदारियों का वहन करना था। माँ ने आश्रम की सभी महिला सदस्यों से कहा कि वे यज्ञ के लिए अपनी क्षमता के अनुरूप सर्वोत्तम योगदान दें। कुछ लोगों को इस बात को लेकर आशंका थी कि क्या इन पांच ब्रह्मचारिणियों के लिए इतने विशाल एवं जटिल काम को सम्पन्न कर पाना संभव हो पाएगा? इस पर माँ ने कहा था, "यदि इनमें स्वार्थ-बोध नहीं पनपा तो कोई समस्या नहीं होगी।" माँ की यह अमूल्य सलाह सभी मामलों में सबके लिए लागू होती है।

इस प्रकार के व्यापक और खर्चीले यज्ञ को सम्पन्न करवाने के लिए पर्याप्त धन की आवश्यकता थी किन्तु धन की व्यवस्था प्रारम्भ करना अभी शेष था, जबकि यज्ञ प्रारम्भ होने में मात्र छह माह का समय ही रह गया था। दीपावली के दिन ब्रह्मचारिणी शान्ताजी को एक महत्वपूर्ण दान उपलब्ध हुआ। माँ का कक्ष साफ करते हुए उन्हें एक रुपये का एक सिक्का मिला तथा इसे माँ के पवित्र योगदान के रूप में इस कार्य के दान-पात्र में सर्वप्रथम जमा करवा दिया गया। इस प्रकार की पवित्र धन-प्राप्ति के बाद निश्चित तौर पर आगे धन की कोई कमी नहीं आई तथा कार्य समिति के पास उतना धन आता गया जितना कि इस काम के लिए आवश्यकता थी।

माँ ब्रह्मचारिणियों के इस समूह के साथ वर्ष 1980 में वाराणसी गईं। वाराणसी के विद्वान पण्डित वामदेवजी से सम्पर्क किया गया जो उस समय भारत के अग्रणी वैदिक याज्ञिकों में से एक माने जाते थे। उनसे 'अतिरुद्र महायज्ञ' का प्रधानाचार्य (प्रमुख पुरोहित) बनने की विनती की गई। माँ की कृपापूर्ण उपस्थिति के कारण उन्होंने इस अनुरोध को सहर्ष स्वीकार कर लिया। उनके सुझाव पर यह तय किया गया कि इस यज्ञ का श्रीगणेश 6 मई 1981 को अक्षय तृतीया के पावन अवसर पर किया जाए। यह 11 दिनों तक निरंतर चलता रहे और 16 मई को सम्पन्न हो।

माँ के निर्देशानुसार यज्ञशाला के स्थल को मातृ निवास के पीछे वाली खाली जगह पर उस स्थान पर चुना गया जिसके एक ओर थोड़ी ही दूरी में गंगा नदी का ऐक धारा बहती है एवं दूसरी ओर गंगा नहर बहती है। यज्ञशाला के स्थल निर्धारण के यद्यपि कई अन्य सुझाव मिले थे किन्तु माँ ने जो स्थल चुना था वहां स्थानाभाव रहते हुए भी उसे ही अन्त में माना गया। यज्ञशाला का सम्पूर्ण नक्शा वाराणसी में वामदेवजी तथा श्रद्धालु इंजीनियर एस सी बनर्जी (सोमूदा) की सहायता से तैयार किया गया था। शास्त्रों में बताई गई डिजाइन और नाप-जोख का पूर्णतः अनुपालन इस नक्शे में किया गया। अतः यज्ञशाला का यह नक्शा हर दृष्टि से पूर्ण था एवं माँ ने इसकी स्वीकृति दे दी। फरवरी 1981 में उस स्थल पर यज्ञशाला का भूमि पूजन एवं आधारशिला रखी गई। भूमि पूजन के समय माँ ने प्रसन्नता के साथ अपने हाथ से ताली बजायी और कहा- ''कौन जानता है कि यही

सती का स्थान रहा हो।" इस प्रकार माँ ने दक्षयज्ञ के अति प्राचीन स्थल को चिन्हित कर दिया।

यज्ञशला के निर्माण के समय नक्शा में दर्शाए गए प्रस्तावों का कड़ाई से पालन किया गया। एक चौकोर यज्ञशाला की नींव का निर्माण किया गया जिसकी प्रत्येक भुजा की लम्बाई 67.5 फुट (45 हाथ) रखी गई। चार प्रकार के वेदज्ञ - ऋगवेदी, सामवेदी, यजुर्वेदी एवं अथर्ववेदी ब्राह्मणों के प्रवेश के लिए प्रत्येक दिशा के मध्य में चार सुन्दर तोरण द्वार शास्त्रानुसार लकड़ियों से बनवाए गए। तीन तहों में फूस की छप्पर की छत डाली गयी। यज्ञशाला की बाहरी दीवार से एक हाथ की दूरी पर महीन बांसों की जाली लगवाई गई थी। इसका उद्देश्य था कि कोई भी दर्शनार्थी या बाहरी व्यक्ति का यज्ञशाला की बाहरी दीवार से सम्पर्क या स्पर्श न हो सके। यह सब यज्ञशाला की उस पवित्रता को अक्षुण्ण रखने के लिए किया गया था जिसका वर्णन शास्त्रों में मिलता है। यद्यपि यह एक अस्थायी ढांचा था किन्तु इस विशाल यज्ञशाला का एक अपना ही सौन्दर्य था जो सबकी आंखों को बहुत सुख दे रहा था। इसकी पवित्रता और भव्यता सभी को आकर्षित कर रही थी।

प्राचीन शास्त्रीय विधान के अनुसार ग्यारह यज्ञकुण्ड निर्मित करवाए गए थे। ग्यारह यज्ञकुण्डों में निरंतर घी की धारा गिराने के लिए ग्यारह पीतल के कलश छत से बंधी पीतल की जंजीर की सहायता से यज्ञकुण्डों के मध्यभाग में लटकाए गए थे। कलश एवं जंजीर अपनी नवीनता के कारण स्वर्ण जैसे प्रतीत हो रहे थे। यज्ञशाला के चतुष्कोण में चार वेदियां तथा मंडप के ईशानकोण (उत्तर पूर्व दिशा) में प्रधान वेदी बनवाई गई थी तथा प्रत्येक वेदी के ऊपर चंदोवा टांगा गया था। देवी-देवताओं के निवास के लिए इन वेदियों का निर्माण कराया गया था।

यज्ञ को सम्पन्न कराने के लिए वाराणसी, हरिद्वार, ऋषिकेश, दक्षिण भारत और महाराष्ट्र से एक सौ पैतीस विद्वान ब्राह्मणों को बुलवाया गया था। लगभग 100 ब्राह्मण अकेले काशी से ही आये थे। उन्हें व्यक्तिगत, शारीरिक एवं आतंरिक पवित्रता के सूक्ष्मतम नियमों का पालन करना और ध्यान रखना अनिवार्य था ताकि वे इस महान यज्ञ को सम्पन्न करने के अधिकारी बन सकें। सभी के अनुरोध पर माँ को यज्ञ के सर्वोच्च

पद "सर्वोपदृष्टा" का स्थान दिया गया जिस स्थिति में यज्ञ सम्पन्न कराने के लिए उनकी दिशानिर्देश एवं मार्गदर्शन को अंतिम निर्णय माना जाता था। प्रत्येक विषय में माँ सूक्ष्मतम विवरण के साथ समुचित दिशानिर्देश देती थीं और तैयारियों की हर बात पर पूरी तरह से दृष्टि रखती थीं।

यज्ञ अनुष्ठान 6 मई 1981 को प्रारम्भ हुई। ब्राह्मण पण्डित ब्राह्ममुहूर्त में गंगा स्नान कर बिना सिले पीत वस्त्र पहनकर यज्ञशाला में प्रविष्ट हुए। आचार्यों एवं पण्डितों के वेद मंत्रोच्चारण के साथ महायज्ञ का शुभारम्भ हुआ। प्रथम दिवस को सभी वेदियों पर कलश की स्थापना कर पूजा की गई। इसी के साथ एक के बाद एक चारों वेदों का भी पाठ होता रहा। चारों वेदों (ऋग, साम, यजुर और अथर्व) के नाम पर जो चार द्वार बनाये गये थे, इनके द्वार के पास इन विशिष्ट वेदों के पारंगत आचार्य को बैठाया गया था। प्रत्येक द्वार पर सम्बंधित द्वारपाल के लिए कलश की स्थापना की गई थी और उनकी पूजा भी करवाई गई। प्रत्येक वेदी पर प्रति दिन पूरे विस्तार के साथ पूजा करवाई जाती थी। इनमें पुष्प, बिल्व पत्र, रोली, वस्त्र, अन्न, मेवा, बताशा, ऋतु फल आदि द्रव्य को एक-एक करके अर्पित किया जाता था।

यज्ञ के प्रथम दिन श्री श्री माँ एवं अन्य साधु-संत यज्ञ मण्डप में विराजमान थे, जिनमें निर्वाणी अखाड़े के महन्त महामण्डलेश्वर स्वामी गिरिधर नारायण पुरीजी, दिव्य जीवन संघ के अध्यक्ष स्वामी चिदानन्दजी महाराज प्रमुख थे। वेद मन्त्रोच्चारणपूर्वक 'अरणी मन्थन' (लकड़ी के घर्षण) के द्वारा अग्निदेव प्रकट हुए। उसके बाद अग्निदेव को ग्यारह कुण्डों में स्थापित किया गया।

इस प्रकार अतिरुद्र महायज्ञ का प्रारम्भ हुआ। यह 6 से 16 मई 1981 तक चला और उस वर्ष माँ की जन्मोत्सव की अवधि में ही सम्पन्न हुआ। होताओं द्वारा 24 लाख 29 हजार 758 आहुतियां "स्वाहा" मंत्रों से दी गई।

महायज्ञ के दौरान एक दिन तेज तूफान आया। मूसलधार वर्षा और तेज हवाएं यज्ञशाला के अस्थायी ढांचे को लगातार चोट पहुंचा रही थी। हर कोई चिंतित हो गया। उस समय माँ अपने कक्ष में थीं और उन्हें इस बारे में सूचित किया गया। वे तुरंत अपने कक्ष से बारिश में ही बाहर निकल कर

आई। इसके बाद ही वर्षा धीमे पड़ने लगी और शीघ्र ही रुक गई। शान्ताजी ने बताया था कि जब तूफान छंट गया तो उन्होंने तथा वहां उपस्थित अन्य सभी लोगों ने यज्ञशाला के ठीक ऊपर आकाश में एक आश्चर्यजनक प्रकाश पुंज देखा। उस समय आकाश नारंगी, गुलाबी, सुनहरे, भूरे एवं पीत रंगों से जगमगा रहा था। इससे पहले उन्होंने कभी इतना सुन्दर आकाशीय नजारा नहीं देखा था।

एक दिन आश्रम की ब्रह्मचारिणियों ने श्री माँ को भगवान शिव के रूप में श्रृंगार किया। माँ भगवान शिव की योग मुद्रा में बैठकर गहरी समाधि में चली गईं। पूरा वातावरंण भक्तिमय हो गया तथा इस दौरान निरंतर "हर हर महादेव" तथा शिवनाम का कीर्तन होता रहा। भक्तों को लगा कि उन्हें माँ में स्वयं रुद्रदेव के दर्शन हुए हैं। माँ इस अवस्था में देर तक बनी रहीं।

अतिरुद्र यज्ञ के समय यज्ञशाला की परिक्रमा अति महत्वपूर्ण मानी जाती है। प्रति सुबह से लेकर देर रात तक यज्ञशाला की परिक्रमा करने के लिए श्रद्धालुओं का तांता लगा रहता था। परिक्रमा का यह क्रम महायज्ञ सम्पन्न होने के बाद भी चलता रहा। श्री माँ चाहती थीं कि श्रद्धालु धीमे एवं स्थिर कदमों के साथ निश्चित संख्या यथा 108, 54, 11 या 7 बार यज्ञशाला की परिक्रमा करें। इस दौरान पूरे मनोयोग के साथ जप भी किया जाए।

इस यज्ञ के लिए व्यापक स्तर पर निमंत्रण भेजे गए थे। कई धार्मिक प्रमुखों, निरंजनी, निर्वाणी और उदासीन अखाड़ों के लगभग सभी महामण्डलेश्वरों, महन्तों एवं अन्य विख्यात लोगों ने महायज्ञ में भाग लिया। इनमें अग्रणी थे द्वारिका शारदा पीठ के शंकराचार्य अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ, स्वामी रामस्वरूप (वेदान्त सम्मेलन), स्वामी सच्चिदानन्द (भोलागिरि आश्रम), स्वामी ब्रह्मानन्द (सूरतगिरि आश्रम), स्वामी वीरेश्वरानन्द (रामकृष्ण मिशन), स्वामी प्रकाशानन्द (जगतगुरु आश्रम), स्वामी ब्रजकिशोर पुरी (गीता भवन), स्वामी विद्यानन्द (कैलाश आश्रम), स्वामी चिदानन्द (दिव्य जीवन संघ), स्वामी ज्ञानेशानन्द (संन्यास आश्रम), गीता भारतीजी (हरिहरानन्द आश्रम), वृंदावन से स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती, शुकताल से स्वामी विष्णु आश्रम एवं स्वामी श्याम सुन्दर दास (गरीब दासी आश्रम)। इन संत महात्माओं की उपस्थिति से महायज्ञ का वातावरण आनन्द से परिपूर्ण हो गया था। अन्य प्रख्यात लोगों में ज्ञानी जैल सिंह (बाद में भारत के राष्ट्रपति

बने), श्री जी.एस. पाठक (तत्कालीन उपराष्ट्रपति), श्री गुलजारी लाल नन्दा (भारत के पूर्व प्रधानमंत्री), श्री कमलापति त्रिपाठी (उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री एवं केन्द्रीय रेल मंत्री) तथा डॉ. त्रिगुणा सेन (पूर्व केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री) शामिल थे।

माँ के पवित्र स्पर्श के बाद सबसे वरिष्ठ नैष्ठिक ब्रह्मचारी स्वामी भास्करानन्दजी ने पूर्णाहुति देकर अतिरुद्र महायज्ञ को सम्पन्न किया। इसके बाद माँ की गरिमामयी उपस्थिति के अनुरूप और अनुष्ठान भी किए गए। शास्त्रों के वचन के अनुसार मनोहारी ढंग से गहनों से सजायी गई दस गायों और अन्य वस्तुओं को दान किया गया। यज्ञ के सम्पन्न होने पर माँ और शंकराचार्य के साथ एक शोभायात्रा निकाली गई जो आश्रम से गंगा नदी में स्थित ब्रह्मकुण्ड तक गई और वापस आई।

श्री माँ ने संकेत किया था कि कनखल वह स्थान है जहां राजा दक्ष प्रजापति ने प्राचीन युग में महायज्ञ आयोजित किया था, किन्तु उस समय वे यज्ञ पूर्ण नहीं कर पाए थे, जिसे अब पूर्ण किया गया है। उन्होंने यह भी कहा कि इस प्रकार का सात्विक यज्ञ अब फिर नहीं हो पाएगा। जिन लोगों ने इस यज्ञ में भागीदारी निभायी या जिन्होंने इसे मात्र देखा, उन्होंने पूर्व जन्मों में कुछ विशेष पुण्य कार्य किए होंगे तभी उन्हें इस युग में अपने वर्तमान जन्म में अतिरुद्र महायज्ञ में भाग लेने का अवसर मिल पाया।

यज्ञ सम्पन्न होने के बाद माँ ने अपना यह ख्याल व्यक्त किया था कि अस्थायी यज्ञशाला को एक ऐसे स्थायी ढांचे में परिवर्तित किया जाए जो हजार वर्ष तक चल सके। इसका निर्माण शास्त्रों में वर्णित डिजाइन और नाप-जोख का पूरी तरह से पालन करते हुए सम्पन्न करवाया गया। माँ के निर्देशानुसार यज्ञशाला के स्थल और आकार, अंदरुनी स्तंभों के स्थान, प्रवेश द्वार तथा सभी ग्यारह यज्ञकुण्डों को यथावत पहले जैसे रखा गया। दिल्ली के मशहूर आर्किटेक्ट श्री कानविन्दे ने इस कांक्रीट यज्ञशाला का नक्शा बनाया और उसी के अनुरूप इसका निर्माण करवाया गया। विशेष देवी-देवताओं की मूर्तियों को शास्त्रानुसार यज्ञशाला में यथास्थान स्थापित किया गया। इसे अब भारत की एक अनूठी यज्ञशाला माना जाता है जो अन्य कहीं देखने को नहीं मिलती। माँ की सलाह पर अंग्रेजी भाषा में एक पुस्तक प्रकाशित करवाई गई जिसमें इस अनूठे महायज्ञ के छोटे से छोटे ब्योरों को संकलित किया गया।

माँ अगरतला में

अगरतला पश्चिमी त्रिपुरा राज्य की राजधानी है। अगरतला में वर्ष 1977 में आश्रम बना और यह बांग्लादेश के समीप पूर्वी भारत में माँ का एकमात्र आश्रम है। त्रिपुरा राजवंश के महाराजा श्री मयंक बहादुर ने प्रसिद्ध उमा महेश्वर मंदिर के समीप एक बड़ी भूमि यहां माँ को दान की थी।

माँ की अंतिम अगरतला यात्रा मार्च 1982 में हुई थी जब वे वहां एक सप्ताह तक रुकी थीं। स्थानीय भक्त माँ के आगमन की तीन वर्ष से प्रतीक्षा कर रहे थे। राज्य की सरकार ने माँ को राजकीय अतिथि होने का सम्मान दिया। राज्य के मुख्यमंत्री माँ से मिलने के लिए आए थे। माँ 'कसबा' के काली मन्दिर गई थीं जो भारत बांग्लादेश सीमा के पास स्थित है। इसी मन्दिर में माँ की दादी ने अपने पुत्र बिपिन बिहारी के लिए संतान प्राप्ति की प्रार्थना की थी और बाद में माँ का जन्म हुआ।

आश्रम के औपचारिक उद्घाटन के लिए माँ ने वहां 31 मार्च 1982 में प्रवेश किया। माँ के निवास के लिए वहां एक नयी कुटिया निर्मित की गई थी। माँ के ख्याल के अनुसार उसी दिन माँ के लिए बने नवनिर्मित कक्ष में माता सरस्वती की प्रस्तर प्रतिमा स्थापित करवाई गई। माँ की उपस्थिति में बरामदे में शिवलिंग की भी स्थापना करवाई गई। माँ ने उस समय अपनी दूरदर्शिता से यह भविष्यवाणी की थी कि भविष्य में यह क्षेत्र शिक्षा के लिए जाना जाएगा। बाद में वहां माँ आनन्दमयी विद्यापीठ खोला गया जहां अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा दी जाती है और आज यह राज्य के प्रख्यात शिक्षण संस्थान के रूप में विकसित हो रहा है। इसके अलावा वहां और अधिक भूमि लेने की योजना बन रही है ताकि माँ के नाम पर एक विश्वविद्यालय स्थापित किया जा सके। अपने प्रवास के अगले दिन महाराजा के निमंत्रण पर माँ राजमहल के मन्दिर में गईं। राज दंपति ने मां का बहुत आदर के साथ स्वागत किया।

माँ का इतना प्रबल आकर्षण था कि आसपास के करीब एक लाख लोग उनके दर्शनों के लिए आ गए तथा चारों ओर के दूरवर्ती गांवों से और अधिक लोंग माँ के दर्शन के लिए चल चुके थे। राज्य प्रशासन के लिए इस प्रकार की अभूतपूर्व और निरंतर बढ़ती जा रही भीड़ को नियन्त्रित करना अत्यधिक कठिन होने लगा। पुलिस-प्रशासन की सलाह पर किसी

अप्रिय घटना से बचने के लिए माँ को वहां से रवाना होने के निर्धारित दिन से पहले ही उस स्थान से प्रस्थान करना पड़ा। माँ की इस स्थल पर यह अंतिम यात्रा थी।

अगरतला से माँ धर्मनगर और बोनगाईगांव होते हुए कोलका पहुंचीं। धर्मनगर में एक ऊंचे मंच पर माँ को बैठाया गया था जिसमे एकत्रित विशाल भीड़ माँ का दर्शन कर सके। माँ ने कहा था कि अगरतल में भी यदि ऐसे मंच का व्यवस्था होती तो सबके साथ भेंट हो जाती बनारस होते हुए 10 अप्रैल 1982 को माँ कनखल वापस पहुंच गई।

श्री श्री माँ आनन्दमयी के अन्य आश्रम

पुणे आश्रमः- महाराष्ट्र राज्य में माँ का एकमात्र आश्रम पुणे मे है। माँ सन् 1960 में मुम्बई में एक पखवाड़े तक चले जन्मोत्सव के सम्पन्न होने के बाद यहां पहुंची थीं। मुम्बई में माँ का जन्मोत्सव श्री बी. के. शाह के विले पार्ले स्थित निवास के बहुत बड़े परिसर में मनाया गया था। माँ क रहने के लिए वहां एक सुन्दर पैगोडानुमा कुटिया का निर्माण कराया गया था। मुम्बई आने पर माँ यहीं रुकती थीं। मुम्बई रहते समय विशाल भीड़ माँ के दर्शन पाने के लिए उमड़ पड़ी।

पुणे में माँ के प्रवास के दौरान विख्यात गायक श्री दिलीप कुमार राय एवं श्रीमती हीरा बाई वरोदकर ने आकर माँ के समक्ष अपने भजनों की प्रस्तुति दी थी। उस दौरान माँ के दर्शनों के लिए आने वाले विख्यात लोगों में मध्य प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री के. एन. काटजू और देश के तत्कालीन गृह मंत्री श्री गुलजारी लाल नन्दा शामिल थे।

जून 1961 में माँ फिर उस समय यहां आई थीं जब श्री भगवान दास नागपाल ने गणेश खिंद रोड पर आश्रम के लिए एक भूमि दान दी थी। इस बार माँ करीब छह सप्ताह तक पुणे में रहीं। भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद ने पुणे में अपने प्रवास के दौरान महाराष्ट्र के राज्यपाल श्रीप्रकाश जी के साथ आश्रम आकर माँ से भेंट की। 'सेक्रेड हार्ट ऑफ क्राइस्ट' संस्था में रहने वाले कई लोगों ने माँ के दर्शन कर उनका आशीर्वाद लिया। इसके बाद माँ कई बार पुणे आईं तथा उनकी उपस्थिति में जन्मोत्सव, भागवत सप्ताह, शिवरात्रि आदि पांच महत्वपूर्ण उत्सवों का

आयोजन वहीं सम्पन्न हुआ। माँ के अनन्य भक्त श्री मुलजी भाई पटेल जो भारत के प्रसिद्ध नेता एवं पूर्व उप प्रधानमंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल के परिवार के सदस्य थे, ने अपनी बेटी नन्दुबेन के साथ पुणे आश्रम में वर्षो रहकर साधना की। नन्दुबेन आश्रम ब्रह्मचारिणी हो गई थीं एवं अपने जीवन के अन्त तक यहीं रहीं।

पुणे में 25 जनवरी 1981 को संयम व्रत दिवस मनाया गया और उस अवसर पर सामूहिक ध्यान किया गया। एक दिन माँ ने वहां श्रद्धालुओं से एक हार्दिक आह्वान करते हुए कहा, "यह शरीर तुम सभी से भिक्षा मांगता है कि प्रत्येक दिन किसी भी निश्चित समय में मात्र पन्द्रह मिनट केवल भगवान का स्मरण करने के लिए निकालो। इस अवधि में कम से कम पूरी तरह मौन तो रहा ही जा सकता है।" इस स्थान पर माँ की यह अंतिम यात्रा थी।

भोपाल आश्रम: मध्य प्रदेश में माँ का एकमात्र आश्रम भोपाल के बैरागढ़ क्षेत्र में है। माँ इस नये आश्रम में मार्च 1965 में आई थीं। यहां आने वाले लोग समीपवर्ती विशाल झील के मनोहारी दृश्य को देखकर अभिभूत हो जाते हैं। सिख समुदाय से सम्बन्ध रखने वाले सर दातार सिंह ने यह भूमि माँ को दान दी थी। दातार सिंह जी का सम्पूर्ण परिवार माँ का भक्त बन गया। उनकी पुत्री कृपालजी जो महात्मा गांधी के सहायिका रह चुकी थी, अपनी तीन वर्षीय बेटी गुणीता के साथ माँ के आश्रम में शामिल हो गई थीं। गुणीताजी ने वाराणसी आश्रम के कन्यापीठ में बचपन से शिक्षा पाई और वहां ब्रह्मचारिणी बन गईं एवं कन्यापीठ में रहकर वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय से पीएचडी (विद्यावारिधि) की। कृपालजी की छोटी बहन की बेटी श्रीमती मेनका गांधी (वर्तमान में केन्द्रीय मन्त्री) भी बचपन से ही माँ के पास आती थी। एक बार माँ ने उन्हें देखकर कहा था कि इसे दुनिया पहचानेगी। बाद में इनका विवाह प्रधानमंत्री इन्दिराजी के पुत्र संजय गांधी से हुआ और वह दुनिया में मशहूर हो गईं।

भोपाल आश्रम में माँ के प्रवास के दौरान भोपाल रियासत की बेगम माँ के दर्शन के लिए आई थीं। वे माँ का दर्शनकर बहुत आनन्द से भर उठीं और उन्होंने माँ के समीप पवित्र कुरान का पाठ किया। नवंबर 1971 में माँ की उपस्थिति में यहां भागवत सप्ताह आयोजन किया गया था।

शुकताल के प्रख्यात स्वामी विष्णु आश्रमजी महाराज भागवत के प्रवचनकर्ता थे। दिसंबर 1977 में माँ इस स्थान पर मुम्बई और पुणे जाते समय अंतिम बार आई थीं । वर्तमान में ब्रह्मचारिणी डॉ. गुणीता के मार्गदर्शन में इस आश्रम परिसर में एक विशाल स्कूल चलाया जा रहा है जिसमें आसपास की मलिन बस्ती के गरीब परिवारों के सैकड़ों बच्चे निःशुल्क शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

केदारनाथ एवं जमशेदपुर आश्रम : उपरोक्त जितने भी आश्रम का उल्लेख किया गया है वहां समय-समय पर माँ का प्रवास हुआ था, किन्तु उत्तराखण्ड के केदारनाथ और झारखण्ड राज्य में जमशेदपुर के आश्रम ऐसे हैं जहां माँ की शारीरिक उपस्थिति नहीं हो सकी।

केदारनाथ में एक छोटा-सा आश्रम तब निर्मित हुआ जब उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यापल डॉ. चेन्ना रेड्डी ने पहल करते हुए वहां आश्रम के लिए भूमि को मामूली पट्टे की दर पर उपलब्ध करवाया था। वर्ष 1982 में इस नवनिर्मित आश्रम में माँ को ले जाने की व्यवस्था कर लिया गया था एवं माँ भी जाने को तैयार थीं, परन्तु उनके स्वास्थ्य की विपरीत स्थिति को देखते हुए यह दौरा स्थगित करना पड़ा। फलतः माँ का यहां आना नहीं हो सका।

जमशेदपुर में माँ पहली बार वर्ष 1932 में गई थीं। इसके बाद वे कई बार इस स्थल पर गई। वहां के अनेक लोग माँ के भक्त बन गये थे। मई 1937 में वहां माँ का जन्मोत्सव भी अच्छी तरह मनाया गया था। बरहराल, माँ के इस संसार से प्रयाण करने के पांच वर्ष बाद वहां के भक्तगण वर्ष 1988 में जमशेदपुर आश्रम का निर्माण करवाने में समर्थ हुए।

बांग्लादेश में माँ के आश्रम : वर्ष 1937 में माँ के अपने जन्मस्थान खेवड़ा जाने के बाद वहां आश्रम के लिए भूमि प्राप्त की गई। इस यात्रा में माँ ने स्वयं उस स्थान को संकेत करके बताया था जहां उनका जन्म हुआ था जबकि उस स्थान में कई परिवर्तन आ जाने से माँ की माता दीदीमा एवं अन्य लोग सही स्थान बताने में भ्रमित हो गये थे। जिस मकान में माँ का जन्म हुआ था उसका स्वामित्व काफी समय पहले किसी और व्यक्ति के पास चला गया था। माँ जब वहां गयी तो उस समय इस मकान का स्वामित्व एक मुसलमान व्यक्ति के पास था। माँ ने अपने आरम्भिक

जीवन के करीब 15 वर्ष इस मकान में बिताए थे। वर्तमान में जन्मस्थान पर केवल एक छोटा-सा मंदिर स्थित है।

इस जन्मस्थान का और विकास सम्भव नहीं हो पाया क्योंकि वर्ष 1947 में देश के विभाजन के बाद यह स्थान पूर्वी पाकिस्तान में चला गया। तदोपरांत वर्ष 1971 में पाकिस्तान के साथ युद्ध के बाद नये देश के गठन होने पर यह स्थान अब बांग्लादेश में स्थित है। हाल ही में जन्मस्थान से संलग्न कुछ और भूमि ले ली गयी है जिसे चहारदिवारी से घेर दिया गया है। खेवड़ा में मुख्य आश्रम पवित्र 'जन्मस्थान' से कुछ ही दूरी पर स्थित है जहां माँ के नाम से एक बड़ा स्कूल चल रहा है।

ढाका का रमणा आश्रम नहीं बच पाया। बांग्लादेश के गठन के बाद रमणा मैदान में शहीद स्मारक के निर्माण के लिए वर्ष 1971 में इस आश्रम को ध्वस्त कर दिया गया। ब्रह्मचारी पानुदा से सुना है कि रमणा आश्रम की नींव वहां अभी तक दिखाई देती है। यद्यपि ढाका का सिद्धेश्वरी आश्रम सुरक्षित है। वर्ष 2008 में इसकी विशेष मरम्मत करवाई गई।

उपरोक्त 26 आश्रमों के अलावा भारत एवं विदेशों में माँ आनन्दमयी के नाम से कुछ निजी आश्रम भी हैं। ऐसे आश्रम माँ के मूल संगठन 'श्री श्री आनन्दमयी संघ' के अधीनस्थ नहीं हैं और उससे सम्बद्ध भी नहीं हैं।

माँ के आश्रम जहां भी स्थापित किए गये उनमे अधिकतर उस समय निर्जन क्षेत्र में स्थित थे और बस्ती से काफी दूर थे। किसी को भी इन स्थानों को सामान्य स्थल नहीं समझना चाहिए। ये प्राचीन समय में साधना के स्थल थे जिसका अस्तित्व विलुप्त हो चुका था। इन स्थलों पर आश्रमों का निर्माण इसलिए किया गया क्योंकि इन स्थानों के प्राचीन साधकों ने सूक्ष्मरूप में आकर माँ से उनकी साधना स्थली पर रहने के लिए विशेष रूप से प्रार्थना की थी। वहां स्थापित देवी-देवताओं की प्रतिमाओं को सामान्य मन्दिरों में स्थापित देवी-देवताओं की तरह नहीं समझना चाहिए। यहां इन देवी-देवताओं के माँ से दिव्य संस्पर्श की घटनायें घटित हुई हैं। इन प्रतिमाओं में साक्षात् ईश्वरीय उपस्थिति का सम्पूर्ण विश्वास रखनी चाहिए। इसलिए माँ ने इन आश्रमों के मन्दिरों में देवी-देवताओं की पूजा एवं त्रुटिहीन सेवा पर सदैव बल दिया एवं आश्रम परिचालकों के लिए यही मुख्य कर्तव्य बताया। माँ ने कहा है, "आश्रम अर्थात् शुद्ध पवित्र स्थान, जहां पैर रखते ही सब के मन में धर्मभाव जाग्रत हो। सभी को यह

कोशिश होनी चाहिए कि दिन-रात यहां का वायुमण्डल साधना-भजन, सत् चिन्ता, सदालोचना के प्रभाव से शुद्ध रहे। परमार्थ लाइन में जो ब्रह्मचारी, संन्यासी हैं उनके सम्बन्ध में या उनसे बातचीत करते समय भद्र व्यवहार, शिष्टाचार, नीति - श्रद्धा की सीमा का उलंघन न हो। किसी के ऊपर अप्रिय दृष्टि नहीं रखनी चाहिए। कर्म करने से चित्त शुद्धि, सद्‌बुद्धि, तद्‌बुद्धि।''

माँ ने एक बार कहा था- ''मुझे तुम्हारे आश्रमों की कोई आवश्यकता नहीं है। मुझे तुमसे कुछ भी नहीं चाहिए। मैं तुमसे बस यही चाहती हू कि तुम सब शान्ति एवं प्रेम से एकसाथ रहो। तुम्हारे भीतर शुद्ध भाव पुष्ट होना चाहिए, बस मैं तुमसे यही चाहती हूं। यदि तुम कहते हो कि यह आश्रम है - तो यह केवल तुम्हारे लिए हैं और इसे तुमने शांति एवं आनन्द बढ़ाने के लिए स्थापित किया है। इसके विपरीत यदि तुम्हारे भीतर अलग-अलग दल पैदा हो गया हो तो फिर आश्रम की क्या आवश्यकता है, इससे अच्छा है कि यह न हो। तुम्हारा आनन्द ही मेरा आनन्द है। यदि तुम कहते हो कि मेरा आश्रम तो पूरा विश्व ही एक आश्रम या अनन्त आश्रम है। मेरा केवल यही कहना है कि तुम सब मिलकर वही करो जिससे तुमलोगों का आध्यात्मिक कल्याण हो और देखना जो होना है वह होता ही जायेगा। ऐसे एक जन सब देख रहे हैं, उसकी दृष्टि से कोई बच नहीं सकता। ठीक से चलोगे ठीक रहोगे, विषय में चलोगे ठोकर खाओगे। आग में हाथ दोगे, जलेगा नहीं? सब ठीक चल रहा है और चलेगा।''

माँ ने एक बार सावधान किया था कि भविष्य में इन आश्रमों की संपदा को देखकर कुछ ऐसे लोगों का प्रवेश हो सकता है जो केवल अपनी सुख सुविधाएं बटोरने के प्रयासों में लग जाएं। माँ ने यह भी संकेत किया कि भविष्य में आश्रम के भीतर अविचार, अनाचार एवं यहां तक कि व्यभिचार भी हो सकता है। हम सब माँ से विनम्रतापूर्वक यह प्रार्थना करते हैं कि इस प्रकार की विपत्ति के प्रवेश से हमारे आश्रमों को रक्षा करें। यह वांछनीय है कि आश्रम के कार्यकर्ता का चयन सोच समझ कर सतर्कता के साथ किया जाये। **माँ ने कहा था कि ट्रस्टी के सदस्य के रूप में केवल उन लोगों को ही चुना जाये जो कभी भी किसी हालत में आश्रमों का किसी प्रकार अहित नहीं करें।** माँ ने कहा था, ''जो जानकार और करने में समर्थ है, उसे करने दो''।

अध्याय-अष्टम

गिरिजी के महाप्रयाण के बाद गुरु दीक्षा प्रणाली

आध्यात्मिक लक्ष्य की उपलब्धि के लिए किसी साधक द्वारा 'दीक्षा' ग्रहण, उनके आगे की यात्रा के लिए द्वार खोलने की तरह होता है। कोई भी व्यक्ति दीक्षा का पात्र तभी बनता है जब सर्वशक्तिमान भगवान उस पर कृपा करते हैं तथा परम लक्ष्य को उपलब्ध करने के लिए यात्रा प्रारम्भ करने का एक प्रबल आकांक्षा उसके भीतर उत्पन्न होती है। सदगुरु को इसकी पहचान होती है तथा वह उपयुक्त समय पर साधक को इष्ट का बीज मन्त्र देना स्वीकार करते हैं। इसलिए इस अति दायित्वपूर्ण कार्य के योग्यता के लिए ऊंची आध्यात्मिक उपलब्धियों की आवश्यकता होती है।

माँ ने एक बार अपने बारे में कहा था कि वह किसी भी तरह के संस्कार से पूर्णतः मुक्त हैं, यहां तक कि गुरु बनने के संस्कार से भी। इसलिए इस अति महत्त्वपूर्ण कार्य को माँ पहले बाबा भोलानाथ के माध्यम से सम्पन्न करवाती थीं। सुना है कि वे प्रति दिन एक लाख जप करते थे। बाद में माँ ने अपनी संन्यासी माता स्वामी मुक्तानन्द गिरिजी के माध्यम से इस काम को करवाना प्रारम्भ किया और वे आजीवन यह दायित्व निभाती रहीं। दोनों हीं, पूरी तरह से अनुभूति सम्पन्न महापुरुष थे तथा सदगुरु में जो भी विशेषताएं होनी चाहिए, उनसे वे सम्पन्न थे। गिरिजी के बारे में माँ ने कहा था कि गीता में जिस 'स्थितप्रज्ञ' का वर्णन मिलता है, उसकी गरिमा उनके व्यक्तित्व में झलकती थी।

वर्ष 1970 में गिरिजी के महाप्रयाण के बाद गुरुदीक्षा पूरी तरह से रुक गई थी। बाद में माँ ने "दीक्षा" प्रक्रिया को "बीज मन्त्र यन्त्र" की सहायता से जारी रखने की अनुमति दे दी। यह दीक्षा प्रक्रिया आचार्य की सहायता से होती है और इसमें आचार्य ही बीज मन्त्र को यन्त्र में दिखाते हैं। माँ की कृपापूर्ण दृष्टि तथा मार्गदर्शन से भरे उनके शब्दों से दीक्षा सम्पन्न होती थी। दीक्षा प्रक्रिया सम्पन्न होने के बाद माँ दीक्षा प्राप्त करने वाले साधक/साधिका को समझाती थीं -"यदि कोई तुमसे पूछे कि तुम्हारा गुरु कौन है तो उत्तर होना चाहिए - तुम्हारे इष्ट ही तुम्हारे गुरु हैं।" बहरहाल, दीक्षा प्रक्रिया में आचार्य की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। यदि

दीक्षा प्राप्त करने वाले को आध्यात्मिक साधना में कोई कठिनाई आ रही हो तो वह आचार्य से मार्गदर्शन प्राप्त कर सकता है। साधना के माध्यम से क्रमिक रूप से आध्यात्मिक उन्नति होने पर व्यक्ति को समझ में आ जाता है कि माँ हर समय साथ रहती है एवं **वही स्वयं गुरु, इष्ट एवं मन्त्र हैं।**

दीक्षा मन्त्र की गोपनीयता के बारे में माँ ने कहा था-"देखो जिस प्रकार, जमीन में बोये और मिट्टी से ढंक दिए गए बीज को यदि निकालकर बार-बार देखोगे तो वह जम नहीं पाता। ठीक उसी प्रकार यदि बीज़ मन्त्र को मन में गोपनीय बनाए रखा जाए और नियमित जप किया जाए, यह ध्यान दिये बिना कि तुमको उसे किसने दिया था, तो यथा समय बीज पनपकर एक वृक्ष में बदल जाएगा और उसमें फूल-फल निकलेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। बोने के बाद तुम जैसा भी देखरेख करो, तुम्हें उसके अंकुर पनपने के लिए सही क्षण की प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी। तुम्हारे अंदर धैर्य और सेवा होनी चाहिए क्योंकि तुम पौधों के पनपने की प्रक्रिया को तेज नहीं कर सकते। पौधे से वृक्ष, उसके फूल और फल उचित समय पर ही आएंगे। **साधना का मूल है - धैर्य।"**

'जप' की संख्या रखने के बारे में माँ की टिप्पणी थी, "संख्या रखना अच्छा है। कोई भी यह नहीं कह सकता कि कितने जप के बाद उनकी कृपा प्राप्त हो जाएगी। किन्तु यदि कोई मानसिक जप करते हुए गहन ध्यान में पहुंच जाता है तो उसे जप संख्या रखने की आवश्यकता नहीं है।" जप समर्पण के महत्व के बारे में माँ ने कहा था-"जप का अपना ही लाभदायक फल प्राप्त होता है। किन्तु यदि कोई इसके फल को भगवान को समर्पित कर देता है तो वह सुरक्षित तिजोरी में रखा रहेगा। भगवान उसे सही समय में वापस कर देंगे।"

ध्यान के सद्गुणों की चर्चा करते हुए माँ ने एक बार कहा था, "यदि तुम सब जप या भगवान के ध्यान के लिए कोई एक निश्चित समय तय कर लेते हो तो तुम सब भावातीत अवस्था को पा जाओगे तथा इन उपलब्धियों का अन्य सभी पर कई गुना प्रभाव पड़ेगा।" ध्यान में व्यक्ति को पता लगता है कि उसका मन कितना अशांत है। मन के बारे में माँ ने कहा था- "जो भगवान के पथ से अलग करे - वह है मन ।" मन्त्र के बारे में उन्होंने कहा था कि इससे 'मन का त्राण' होता है अर्थात मन से छुटकारा मिल जाता है।

माँ ने दीक्षा प्रक्रिया को जारी रखने के लिए तीन विद्वान ब्राह्मण नैष्ठिक ब्रह्मचारियों के लिए तीन 'दीक्षा यन्त्र' प्रदान किए थे। दीक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को वे 'आचार्य' बनकर बीज मन्त्र को यन्त्र में दर्शन कराते थे - 'गुरु' बनकर नहीं। इन तीन ब्राह्मण ब्रह्मचारियों के नाम है - स्वामी भास्करानन्द, स्वामी निर्वाणानन्द एवं स्वामी निर्मलानन्द। इन सभी ने माँ के निर्देश पर तीन साल तक 'गायत्री पुरश्चरण' की कठोर साधना की थी। वर्तमान में श्री श्री आनन्दमयी संघ की साधु कमेटी नये आचार्यों का चयन करती है जो संघ की संचालन समिति की अनुमति के बाद दीक्षा देने के पात्र बनते हैं। उन्हें केवल माँ के आश्रमों में ही दीक्षा मन्त्र प्रदान करने का अधिकार होता है। स्वामी भास्करानन्दजी के देहान्त के बाद उनके स्थान पर कनखल आश्रम की विदुषी ब्राह्मण ब्रह्मचारिणी चन्दन पुराणचार्य, जो 'गायत्री पुरश्चरण' साधना पूर्ण कर चुकी थीं, को आचार्य चयनित किया गया। वर्तमान में चन्दन दीदी श्री श्री आनन्दमयी संघ की उपाध्यक्ष हैं। वह गिरिजी के भाई की पोती हैं।

कुल गुरु के द्वारा दीक्षा देने की पद्धति प्राचीन काल से चली आ रही है। माँ जब बाल्यावस्था में थीं उस समय उनके माता-पिता ने अपने कुल गुरु से ही दीक्षा प्राप्त की थी। यद्यपि, दीक्षा के बाद उनके कुल गुरु ने उनसे कह दिया था कि उनके कुल में उनके बाद कोई भी इतना सक्षम नहीं रह गया है जो उनके वंश को दीक्षा दे सके। उन्होंने माँ के अभिभावकों को यह परामर्श दिया था कि आगे से उनके परिवार की आने वाली पीढ़ियों को ही यह दायित्व आपस में स्वयं उठाना पड़ेगा।

अतः माँ ने ऐसा ही एक 'यन्त्र' मामाजी (श्री माँ के छोटे भाई) को भी दिया था। माँ के वंश से दीक्षा लेने के इच्छुक व्यक्तियों को दीक्षा मन्त्र प्रदान करने के लिए उन्हें अधिकार दिया गया। मामाजी बहुत उन्नत आत्मा थे जिन्होंने उच्च आध्यात्मिक स्तर प्राप्त किया था। उन्हें स्वयं अपनी माँ स्वामी मुक्तानन्द गिरिजी से उनके देहान्त से पहले 'इच्छा मृत्यु' मन्त्र और स्वयं श्री माँ से एकान्त में संन्यास मन्त्र प्राप्त हुआ था। उन्होंने कभी भगवा वस्त्र पहनकर अपने को संन्यासी की तरह प्रदर्शित नहीं किया। उन्होंने अपने को सदैव गोपनीय भाव में बनाए रखा और एक सच्चे संन्यासी की तरह अपनी साधना करते रहे। माँ ने उन्हें गुरु की तरह दीक्षा देने के

लिए अधिकार दिया था। उन्होंने माँ की उपस्थिति में कुछ लोगों को दीक्षा दी थी। माँ ने यह भी कहा था कि मामाजी के बाद इस वंश के सक्षम लोग इस वंश से दीक्षा प्राप्त करने के इच्छुक लोगों को दीक्षा मन्त्र दे सकेगें। इस वंश के कुलगुरु ने भी ऐसा ही निर्देश दे गये। माँ ने अपने वंश के किसी भी सदस्य को किसी ऐसे व्यक्ति से 'दीक्षा' प्राप्त करने की अनुमति नहीं दी जो उनके वंश के अन्तर्गत न हो। मामाजी के पास रखा दीक्षा-यन्त्र वर्तमान में उनके ज्येष्ठ पुत्र बच्चूदा के पास है जो गिरिजी के शिष्य हैं एवं दर्शन शास्त्र के उच्च विद्वान तथा अच्छे साधक हैं। परिवार के सीमित सदस्यों तथा मात्र कुछ अन्य भक्तों के आग्रह किये जाने पर उन्होंने आचार्य के रूप में इस यन्त्र से दीक्षा भी दी है।

एक व्यक्ति को अपने कुल गुरु की क्षमता पर सन्देह था। उसने इस बारे में माँ से परामर्श मांगा। माँ ने उसे स्पष्ट किया कि जैसे पवित्र बेल की कोपलें मात्र बेल वृक्ष में ही फूटती हैं, किसी अन्य प्रजाति के वृक्ष में नहीं, ठीक उसी तरह पूर्व समय के किसी महान गुरु के बाद उनकी पीढ़ियों से प्राप्त दीक्षा मन्त्र से शिष्य को आध्यात्मिकता की वही 'गुरु-धारा' अर्थात गुरु कृपा प्राप्त होती है जो कि उस महान गुरु से स्वत: आ पहुंचती है। माँ ने कहा था, "गुरु जैसा भी हो, जो बीज मन्त्र तुमको मिला (कुल गुरु से) निश्चित तौर पर वह उनका (भगवान का) नाम है। यदि इस बीज के साथ तुम निर्धारित नियमों के साथ क्रिया करते रहो तो परिणाम मिलेगा। **देखो! एकनिष्ठ ध्यान एवं सच्ची आस्था ही उन्हें पाने का मात्र उपाय है।"** श्री अमूल्य कुमार दत्तगुप्त ने अपनी प्रख्यात पुस्तक 'श्री श्री माँ आनन्दमयी प्रसंग' में लिखा है कि उनके द्वारा पूछने पर माँ ने कहा था कि गृहस्थों के लिए कुलगुरु से दीक्षा लेना ही श्रेय है।

एक बार किसी सम्प्रदाय के एक संन्यासी ने माँ से कहा था कि उनसे कुछ लोग दीक्षा देने को कहते हैं किन्तु उनकी तो वह स्थिति नहीं है - इच्छा भी नहीं होती है। ऐसी स्थिति में उन्हें क्या करना चाहिए? उस समय साधकों को सतर्क करते हुए माँ ने जो अपूर्व वाणी कही थी, वह इस प्रकार है -**"कर्तव्य यह है - जहां गुरु का आदेश है, वहां आदेश पालन तक ही। जिस साधक का चरम परम पूर्ण लक्ष्य ही एकमात्र, वह गुरु पद कभी नहीं लेंगे। जिस स्थिति में पहुंचने पर स्वयं गुरु स्थिति प्राप्त, वह तो**

स्वाभाविक रूप से लभ्य है। अपने साधन परम स्थिति को लक्ष्य भ्रष्ट कर या गौण रखते हुए यदि लोक-कल्याण-वासना प्रधान कर चलना चाहें, वहां वह शक्ति कहां? जहां स्व-शक्ति अर्जन, वहां ही कल्याण, अन्यथा पतन अवश्यम्भावी है। जहां जागतिक प्रशंसा, प्रतिष्ठा और शिष्य-पिपासु और चाहिए अर्थ, वहां सब व्यर्थ। क्या केवल व्यर्थता ही - वहां अमृत की ओर गति कहां?''

माँ ने गुरु चयन में सावधानी बरतने के विषय में कहा है, ''इस महायात्रा में विशेष विघ्नों की आशंका बनी रहती है। प्रारम्भ में यथाशक्ति सावधान होकर चलना पड़ता है। इसलिए कहा जाता है कि सुकौशल से इस रास्ते में प्रवेश करना चाहिए। साधारणतः लोग प्रकृत (असली) साधु पहचान नहीं पाते। ऐसे कुछ धर्म-पिपासु हैं जिन्हें कभी कोई ऐसा अच्छा लग जाता है जो दीक्षा आदि लेकर बाहर की पूजा आदि सब सीखकर-जैसे कीर्तन, ग्रन्थादि से भगवत प्रसंग पाठकर लोगों को सुनाना, पूजा-जप-ध्यानादि करना, प्रणाम करने देना, स्पर्श से भी किसी प्रकार आशीर्वाद का प्रकाश करना, फूल-गन्ध चन्दन माला आदि से भूषित होना आदि साधुओं का अनुकरण करते हों। इनके संगत से उन्हें कुछ आनन्द भी मिलता है। फिर भी यह भी तो तुम लोगों के मुख से सुनते हैं - **जिनके आश्रित होगे वह खुद जितना है उतना ही तो दे सकेगा, उससे अधिक तो नहीं।** यदि भगवान की कृपा एवं शुभ योगायोग होता है, तभी भक्त-शिष्य गुरु को भी अतिक्रम कर चला जा सकता है।''

माँ ने कहा है, ''जब तक गुरु न मिले, जो रूप जो नाम अच्छा लगे - लेकर रहना और नित्य प्रार्थना करना - हे ठाकुरजी, तुम मेरे समीप सदगुरु रूप में प्रकाशित हो। गुरु तो अन्तर में। अन्तर गुरु न मिलने से हुआ नहीं समझना। अन्तर गुरु के सन्धान के लिए ही गुरु करण।

आध्यात्मिक प्रगति की इच्छा रखने वाले साधकों को परामर्श

ब्रह्मचारियों की ओर दृष्टिपात करते हुए माँ ने उनसे कहा था -''याद रखना, बहुत भाग्य से किसी को इस प्रकार का जीवन मिल पाता है। इसे व्यर्थ न गंवाओ।'' माँ ने उन्हें यह भी कहा -''व्यक्ति को सदा धैर्य और अनुशासन के साथ रहना चाहिए। जिस प्रकार दही की एक बून्द ही

दूध से भरी गागर में पूरे दूध को दही में परिवर्तित कर देती है, उसी प्रकार भावों के थोड़े से भी विकार होने से आदमी की शान्ति को विशाल क्षति पहुंच सकती है।''

मनुष्यों पर शारीरिक स्पर्श के दुष्प्रभावों को समझाते हुए माँ ने कहा था, ''यदि तुम वृक्ष में उग रहे किसी हरे फल को स्पर्श करोगे तो वह खराब हो सकता है। इसी प्रकार मनुष्य पर भी शारीरिक स्पर्श का दुष्प्रभाव पड़ने का भय रहता है। स्पर्श करने से सुख की अनुभूति होती है किन्तु यह सुख ही हानिप्रद हो सकता है। केवल बीमारी, खतरों, दुर्घटना या जीवन रक्षा की अवस्था में ही इसकी अनुमति है।''

सच्चे साधु की पहचान बताते हुए माँ ने कहा था-:

''हस्त, वाक्य, उदर, उपस्थ,
चारों जिनका है सुरक्षित,
साधु उन्हें जानना निश्चित।''

इन शब्दों में माँ ने स्पष्ट तौर पर कहा है कि निश्चित रूप से साधु उसे ही समझना चाहिए जो अपने हाथों को गलत काम करने से बचाता हो, अपनी वाणी से असत्य नहीं बोलता हो, अवांछित खाद्य सामग्री ग्रहण करने से अपने उदर को सुरक्षित रखता हो और ब्रह्मचर्य का पालन करता हो। माँ के ये शब्द इतने युक्तिसंगत हैं कि इनका अनुपालन किसी भी धर्म में रहते हुए किया जा सकता है।

माँ के अनुसार साधु या ब्रह्मचारी का विशिष्ट परिधान वास्तव में उसे सांसारिक प्रभावों से बचाने के लिए होता है; वास्तव में, साधु की स्थिति पाना इस बात निर्भर करता है कि किसी का अंदरूनी भाव में समुचित परिवर्तन हो सका है या नहीं। माँ के अनुसार ''सर्व सुख त्याग ही संन्यास है।'' माँ ने कहा था कि प्रत्येक व्यक्ति अपने आप का साक्षी स्वयं होता है और इसी अनुरूप उसे अपनी उन्नति के लिए विवेकपूर्ण होना चाहिए।

एकबार आश्रम में एक ब्रह्मचारी को यह कहते हुए सुना गया कि साधना करने से क्या फायदा जब ज्योति-दर्शन तो दूर, एक जुगनू की रोशनी भी दिखाई नहीं दी। माँ तक यह बात पहुंचने पर माँ ने केवल इतना ही कहा, ''उसे रुपये गिनने को कह दो''। वास्तव में देखा गया कि उसे

धन के प्रति अत्यधिक प्रलोभन था एवं वह अपने को संयमित नहीं रख पाया। माँ ने तो यहां तक कहा था कि लक्ष्य विहीन साधु या ब्रह्मचारी बनने से कहीं बेहतर है कि आदर्श गृहस्थ जीवन व्यतीत किया जाए। उनकी दृष्टि में "सद् गृहस्थ जीवन व्यतीत करने में कोई बुराई नहीं है। कुछ लोगों के लिए विवाह के जरिये भगवान के समीप पहुंचने का प्रयास करना बेहतर हो सकता है।" उन्होंने कुछ ब्रह्मचारियों से एक बार कहा था कि कई साधक, गृहस्थ जीवन में रहकर उनसे कहीं अधिक उच्च आध्यात्मिक अवस्था प्राप्त कर लेते हैं। **साधना में इन दोनों प्रकार के जीवन के लिए वास्तविक महत्वपूर्ण है - सच्ची निष्ठा तथा आत्म-नियन्त्रण । उस अखण्ड के प्राप्ति के लिए चाहिये अखण्ड भगवत स्मरण।**

माँ ने कहा था कि प्राचीन समय में लोग बचपन से ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते थे। इसलिए उनके गृहस्थ जीवन में भटकाव नहीं आता था और उनका जीवन पूरी तरह उनके आधीन रहता था। गृह धर्म का पालन करने के बाद वे वानप्रस्थी का जीवन व्यतीत करते थे। बाद में वे समय आने पर संन्यासी बनते थे। इस प्रकार उनका गृहस्थ जीवन से गुजरना उनके आध्यात्मिक परिवर्तन में बाधक नहीं बनता था।

साधना में सात्विक भोजन का महत्व

आध्यात्मिक साधनाओं के लिए शरीर एवं मन को उपयुक्त बनाने एवं स्वस्थ रखने के लिए केवल सात्विक भोजन लेना अनिवार्य है। माँ ने कहा था, "पहले भजन फिर भोजन, दोनों की ही इस जीवन में आवश्यकता है। तुमको भगवान का नाम लेना है, किन्तु भगवान के लिए भावपूर्ण भक्ति विकसित करने के लिए तुम्हें अपनी जीवनचर्या, अपना आचरण एवं आदतें नियन्त्रित करनी होंगी। उदाहरण के लिए, भोजन उतना ही महत्वपूर्ण है जितनी की रोगी के लिए दवा, अन्यथा रोगी को रोग से मुक्ति नहीं मिलेगी। तुम लोगों के साथ समस्या यह है कि तुम सब कुछ चिकित्सक पर छोड़ रोगी बने रहना चाहते हो।" माँ ने भक्तों से यह भी कहा था, "जैसा खाये अन्न, बैसा बने मन।" इसीलिए जीवन भर समुचित सात्विक भोजन करना भी अपने आप में एक महत्वपूर्ण साधना है। भोजन की शुद्धता से मनुष्य अंदरूनी शुद्धता प्राप्त करता है।

माँ ने एक बार कहा था- "अनुशासन एवं संयम के बिना तुम अपने जीवन को सर्वोच्च सत्ता की ओर नहीं ले जा सकते। हर मामले में आत्म नियन्त्रण होना चाहिए, भले ही वह भोजन हो, बातचीत हो या अन्य के साथ व्यवहार हो।" माँ ने आश्रम में साधकों का एक विशेष समूह बनाया जिन्हें वे "शुद्धाचारी" कहती थीं। ऐसे लोग साधु जैसा जीवन बिताने में विशेष प्राथमिकता देते हैं। उन्हें भोजन सम्बन्धी विशेष नियमों एवं अनुशासनों का पालन करना पड़ता है। नियम के अनुसार उन्हें स्वयं अपना भोजन पकाना होता है अथवा वे किसी अन्य शुद्धाचारी द्वारा बनाये गये भोजन को ही ग्रहण कर सकते हैं। उन्हें पूर्णतः शाकाहारी बनना पड़ता है। उनके भोजन में प्याज-लहसुन जैसी सब्जियों और मसालों में हींग के प्रयोग का निषेध है क्योंकि इनसे सात्विक गुणों के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। वे बाहरी स्थलों यथा दुकान, होटल, रेस्त्रां आदि में बना भोजन ग्रहण नहीं कर सकते हैं। यहां तक कि वे गैर शुद्धाचारी द्वारा स्पर्श किए गए भोजन को भी ग्रहण नहीं करते। ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी और साधना करने को इच्छुक गृहस्थ भी "शुद्धाचारी" बन सकते हैं। अपरिहार्य परिस्थितियों जैसे लम्बी यात्रा के समय वे पानी के बजाय दूध से गूंथे गए आटे में बनी पूड़ी, रोटी या खाकरा तथा बिना नमक के पकायी गयी सब्जी खा सकते हैं। यद्यपि भोजन से पहले उसमें नमक अलग से मिलाया जा सकता है। बाजार से वे दूध, दही तथा रबड़ी जैसी दूध से बनी चीजें लेकर खा सकते हैं किन्तु उन्हें यह ध्यान रखना होगा कि ऐसी किसी दुकान से यह चीजें न खरीदी जाएं जहां नमक वाला भोजन सामग्री बनती हो। अन्य शब्दों में कहा जाए तो साधक को केवल सात्विक भोजन लेने तक अपने को सीमित रखना पड़ेगा ताकि लोभ पर नियन्त्रण सम्भव हो सके जो साधना में सबसे बड़ा अवरोधक है। इन सबसे भी महत्वपूर्ण बात है कि उन्हें अपनी साधना के अभ्यास के प्रति पूरी तरह से प्रतिबद्ध होना पड़ेगा तथा अपने भीतरी एवं बाहरी जीवन में शुद्धता रखनी होगी। साधकों को प्रेरित एवं उत्साहित करने के लिए श्री माँ स्वयं इन अनुशासनों का पालन करती थीं, यद्यपि उनके लिए इन सब की कदापि आवश्यकता नहीं थी। इस प्रकार के पवित्र जीवन को प्रोत्साहन देने के लिए माँ कभी-कभी शुद्धाचारियों से उनके लिए भोजन पकाने की अनुमति देती थीं और कई

बार उन्हें माँ को भोजन करवाने की अनुमति भी मिलती थी जो शुद्धाचारियों के लिए विशेष आकर्षण का अवसर होता था।

एक बार माँ कनखल के पुराने आश्रम में पहली मंजिल पर स्थित अपने कमरे में रुकी हुई थीं। एक ब्रह्मचारिणी शुद्धाचारी नियमों का कठोरता से पालन करती थी। वह माँ के कमरे के नीचे भूतल पर स्थित आश्रम की रसोई घर के पास सब्जियां काट रही थी। उस समय वह मन ही मन सोच रही थी कि वह अपने कमरे में जाकर अपने लिए भोजन तैयार करते समय उसमें हींग आदि मसाले डालकर उसे स्वादिष्ट बनाएगी। इसके फौरन बाद वह उस समय आश्चर्य में पड़ गई जब पहली मंजिल की खिड़की से माँ की तेज आवाज कान में पड़ी-"यदि कोई भोजन बनाते समय हींग का प्रयोग करना चाहता है तो उसे कह दो कि आश्रम के बाहर जाकर पकाये और खाये।" इस प्रकार आश्रम में रहने वाले व्यक्ति के लिए माँ से कुछ भी छिपाना सम्भव नहीं था, यहां तक कि मन में छिपाकर रखी गई बात भी नहीं।

अभी भी, कुछ आश्रमवासी और कुछ गृहस्थ लोग शुद्धाचारी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। यद्यपि उनकी संख्या धीमे-धीमे कम हो रही है। माँ ने कहा था कि सबको सप्ताह में कम से कम एक दिन शुद्धता के साथ रहने और भोजन करने का व्रत लेना चाहिए। धीमे-धीमे इसकी अवधि बढ़ायी जानी चाहिए।

पूजा में शास्त्रीय नियमों का निष्ठा से पालन

माँ इस बात पर बल देती थीं कि कोई भी धार्मिक कृत्य करते समय शास्त्र में वर्णित नियमों एवं निष्ठा का लगन से पालन किया जाए। शास्त्रों के अनुसार पूजा की पारम्परिक विधि में निम्न तीन शुद्धताओं का विशेष तौर पर पालन किया जाता है:-

द्रव्य शुद्धि : पूजा में प्रयुक्त होने वाली सभी सामग्रियों को धो कर या सफाई कर शुद्धिकरण किया जाए एवं पवित्र स्थल पर सुरक्षित रखा जाये।

क्रिया शुद्धि : इस शुद्धिकरण में पूजा की सही प्रक्रिया को अपना कर, पूजा मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण कर एवं सभी क्रियाओं में शुद्धता एवं पवित्रता बनाई रखी जाती है।

मानसिक शुद्धि : मानसिक अवस्था की शुद्धता से यह आती है। पूजा कार्य में भाग लेनेवाले लोगों के लिए यह सबसे महत्वपूर्ण पक्ष होता है। इसे मुख्यत: साधना एवं संयम के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

शास्त्रों के अनुसार यज्ञोपवीत धारण करने वाले स्वस्थ ब्राह्मणों को [illegible] करने के उपरान्त और बिना सिले एवं धुले हुए वस्त्र पहनकर जपादि नित्य कर्तव्य कर लेने के उपरान्त पूजा एवं भोग के स्थान पर जाने की अनुमति होती है। इसी प्रकार केवल उन्हीं दीक्षा प्राप्त ब्राह्मण महिलाओं को अन्न-भोग तैयार करने की अनुमति होती है जो मासिक धर्म जैसी अशुद्ध अवस्था में नहीं हों। यदि कोई विशेष पूजा हो तो किसी भी पूजन गतिविधि में सम्मिलित होने से पहले उन्हें अपने को पवित्र करने के लिए 'पंचगव्य' का सेवन करना होगा। पूजा एवं भोग सम्पन्न होने तक वे कुछ भी खानपान नहीं कर सकते। यदि कोई अस्वस्थ हो या बुजुर्ग हो तो उसे अपने स्वास्थ्य की स्थिति के अनुरूप मात्र जल या शरबत, दूध, फल, फलों का रस आदि लेने की अनुमति हो सकती है परन्तु यथा सम्भव परहेज करना विधेय है।

अन्न-भोग विशेषकर दुर्गा पूजा, काली पूजा, अन्नकूट आदि विशेष पूजा के अवसरों तथा मंदिर में देवी-देवता को चढ़ाये जाने वाले दैनिक भोग को लकड़ी की आग या कच्चे कोयले पर ही पकाया जाने का नियम है। गैर ब्राह्मण लोग पूजा सामग्री की खरीद, उन्हें धोने एवं साफ करने, सब्जियों को काटने, मसाला पीसने आदि में सहायता कर सकते हैं - रसोई पकाने में नहीं। इस कारण वे पूजा एवं भोग स्थल के भीतर नहीं जायेंगे। माँ इन नियमों के पालन पर सतर्कतापूर्ण दृष्टि रखती थीं ताकि पूजा कार्य में वांछित पवित्रता बनाए रखी जा सके। अभी तक इन नियमों का माँ के आश्रमों में यथासम्भव पालन किया जा रहा है।

शास्त्रों के अनुसार परिवार में किसी व्यक्ति की मृत्यु या शिशु के जन्म होने की अवस्था में परिवार के लोग एक निश्चित समय के लिए धार्मिक कार्यों में भाग लेने के लिए उपयुक्त नहीं होते क्योंकि उसके परिवार का वातावरण इसके अनुकूल नहीं होता। इस निषेध को 'अशौच' कहते हैं। विभिन्न जांतिओं के लिए अशौच की अवधि अलग अलग होती हैं। ऐसी परिस्थिति में अशौच अवधि की जानकारी सक्षम पण्डितों से ले लेनी चाहिए।

माँ ने इसके महत्व के विषय में अपने बचपन की एक घटना बताई थी। बचपन में एक बार खेवड़ा ग्राम में पास ही किसी के घर में दुर्गापूजा हो रही थी। अधिवास के दिन दोपहर को माँ अपनी माताजी के साथ भोजन करने बैठी तो माँ ने देखा कि किसी मनुष्य की भांति चलकर स्वयं माँदुर्गा अन्य देवी देवता के साथ सामने से चली जा रही हैं। उन्होंने माँ की ओर देखकर यह कहा कि अमुक घर में पूजा तथा आयोजन में जात-अशौच-जनित (जन्म या मरण के बाद जो अशौच लगता है) संसर्ग दोष घटित हुआ है। इसलिए हम लोग वहां से बाहर निकल आए हैं। अतः पूजा आदि में इन सब विषयों में सावधानी बरतने के लिए माँ विशेष बल देती थीं।

माँ कभी इस बात की अनुमति नहीं देती थीं कि किसी वांछित सामग्री के अभाव या लापरवाही के कारण पूजा के किसी अनुष्ठान या विधान को सम्पन्न नहीं किया जाए। एक बार वेदज्ञ एवं अभिज्ञ पुरोहित बाटुदा को वृन्दावन आश्रम में दुर्गा पूजा के लिए आवश्यक सामग्रियों की लम्बी सूची बनाकर देने हेतु माँ ने कहा था। उन्होंने दो दिन तक बड़े परिश्रम से एक कागज पर अत्यधिक सावधानी से सामग्रियों की लम्बी सूची तैयार की तथा उसे गोलाई में मोड़कर माँ को देने गए। माँ ने उनसे पूछा कि कोई सामग्री लिखने से रह तो नहीं गई? उन्होंने इनकार करते हुए सूची माँ के हाथों में सौंप दी। माँ ने सूची हाथ में लेते ही बिना देखे कहा -"बाबा, सूत्र-बन्धन के लिए मौली लिखा हुआ है न?" उन्होंने आश्चर्यचकित होकर कहा, "माँ, यही एक रह गई थी।" इस पर माँ जोर से हंस दी। ऐसी थी माँ की सीख देने की पद्धति।

माँ कहती थीं कि शास्त्रों के अनुसार त्रुटिविहीन विधिवत पूजा की जाए तो फल अवश्य प्राप्त होगा। किन्तु प्रायः हम लोगों के सतर्कता के अभाव, ढिलाई, लापरवाही, स्पर्शदोष, अज्ञानता या निष्ठा के अभाव के कारण पूजा ठीक-ठीक नहीं हो पाती, इसलिए फल भी तदनुरूप अपूर्ण ही मिलता है। यह देखा गया है कि विशेष पूजा जैसे दुर्गा पूजा, काली पूजा आदि में कोई बड़ी भूल हो जाने पर कई बार प्रतिकूल परिणाम शीघ्र सामने आ जाते हैं।

ऐसी ही एक घटना वर्ष 1969 में तब हुई जब माँ के एक पुराने भक्त श्री हरीश चन्द्र बनर्जी के वाराणसी में नवनिर्मित मकान में उनके

परिवार की दुर्गा पूजा में माँ की गरिमामयी उपस्थिति हुई थी। वह संभवत: उनकी 100वीं पारिवारिक दुर्गापूजा थी। माँ पूजा में पांच दिनों तक वहां रुकी थीं।

दुर्गा पूजा में अर्पित की जाने वाली विभिन्न सामग्रियों में "बलि भोग" के रूप में चीनी भोग सप्तमी, अष्टमी, सन्धि एवं नवमी पूजा में अर्पित किया जाता है। सप्तमी पूजा के दिन माँ ने इस बारे में स्मरण भी दिलवाया था किन्तु भूलवश यह सोचा गया कि उनके परिवार की परम्परा इसे केवल अष्टमी के दिन अर्पित करने की है इसलिए उस दिन बलि भोग नहीं दिया गया।

उसी शाम, पास में लगाये गये पण्डाल में माँ सत्संग कार्यक्रम में सम्मिलित थीं। किन्तु अचानक वह हरीश बाबू के घर की ओर चल दीं। उन्होंने भक्तों से कहा कि कोई उनके पीछे नहीं आएं और वे जल्द ही वापस आ जाएंगी। यही वह समय था जब दुर्घटनावश हरीश बाबू का सबसे छोटा पुत्र (सोमूदा) माँ के कमरे के पीछे गलियारे में बिजली के एक नंगे तार के सम्पर्क में आ गया जब उस समय वहां कोई नहीं था। वह बिजली के झटके से नीचे गिर पड़ा परन्तु बिजली के तार का स्पर्श नहीं छूट पाया था। उसके मुंह से अजीब सी आवाज सुनकर कोई वहां आया और उसने तार को अलग किया।

ठीक उसी समय देखा गया था कि माँ का शरीर कड़ा सा हो गया, मानों बिजली का झटका उन्हीं के शरीर को लगा हो। इस तरह वास्तव में उन्होंने बिजली के झटके के प्रभाव को अपने ऊपर ले लिया था तथा हरीश बाबू के पुत्र का जीवन बच गया और उसे जीवनदान मिला। माँ ने यह भी स्पष्ट किया कि जब पूजा में कोई गंभीर त्रुटि हो जाती है जैसे कि बलि भोग अर्पित नहीं हुआ था, तो पुत्र बलि भी हो सकती है। इस मामले में माँ ने विशेष कृपा कर इस गंभीर त्रासदी को टाल दिया।

इस दुर्घटना के कुछ माह पहले हरीश बाबू के इस पुत्र के स्वप्न में माँ प्रकट हुई थीं। उन्होंने कहा था कि यदि वे उससे यह कहें कि उसका जीवन शीघ्र ही समाप्त होने वाला है तो क्या वह परेशान हो जायेगा? उसी स्वप्न में उसने माँ से यह विनती की थी कि माँ उसके अंतिम समय में उसके समीप उपस्थित रहें। यह स्पष्ट है कि माँ ने कृपाकर उसकी विनती

को स्वीकार कर लिया था और उसके घर की दुर्गा पूजा में सम्मिलित हुई थीं। इस तरह माँ ने न केवल उस अति संकटकालीन पल में उपस्थित थीं बल्कि उन्होंने उसे दूसरा जीवन प्रदान किया।

माँ की उपस्थिति में प्रत्येक पूजा ऐसी विधि से होती थी कि नवधा भक्ति में से प्रत्येक का अनुपालन स्वतः ही हो जाता था तथा पूजा के दौरान अनूठा दिव्य वातावरण बना रहता था। यह अनूठी प्राचीन धार्मिक परम्परा पहले पूरे देश में प्रचलित थी। किन्तु दुर्भाग्यवश यह तेजी से लुप्त हो रही है। आजकल आमतौर पर पुजारी एवं यजमान की सुविधा के अनुरूप पूजा विधि निर्धारित की जा रही है। माँ का प्रयास रहता था कि प्राचीन विधियों का निष्ठा से पालन हो जिस कारण सदैव वांछित फल मिलते थे।

माँ कहती थी कि तपस्या का अर्थ है "ताप सहना" अर्थात किसी धार्मिक कृत्य में होने वाले शारीरिक और मानसिक श्रम से उत्पन्न ताप या पीड़ा को सहन करना। इसे यदि शास्त्रों के नियमों या सद्गुरु के निर्देश के अनुसार गंभीरता से किया जाए, यह वांछित परिणाम उपलब्ध करने तथा आध्यात्मिक प्रगति को प्राप्त करने में मदद करता है। जब तक कोई ऐसी पीड़ाओं से नहीं गुजरता तब तक भगवान की ओर जाना सम्भव नहीं हो पाता है।

साधकों के कर्तव्य के विषय में माँ की कुछ अमूल्य वाणी

माँ ने कहा है, "प्रथमतः, साधारण मनुष्य जब साधना प्रारम्भ करेगा, तब उस साधक को प्रधान लक्ष्य रखना है ब्रह्मचर्य की ओर। ब्रह्मचर्य पालन न होने से कुछ भी नहीं होगा। जीव मात्र की ही साधना की नीव है - **सत्य पालन एवं ब्रह्मचर्य।"**

"मनुष्य को भगवान लाभ कैसे हो? इसके लिए व्याकुलता चाहिए। इसलिए इच्छा हो या अनिच्छा, सर्वदा उनके लिए एक अन्तर्ज्वाला सहित आकुल चिन्ता-धारा बनाया रखना आवश्यक है। शोक में डूबे रहते हुए भी जैसे लोग पहने हुए कपड़ों को सम्भाल कर रखते हैं, जैसे पान चबाते-चबाते संसार का काम-काज चल सकता है या जैसे बच्चा गोद में लेकर माता सांसारिक काम-काज कर लेती है, उसी प्रकार संसार-यात्रा के भीतर ही भगवान का नाम एवं चिन्ता की धारा प्रतिमुहूर्त स्मरण रखने की चेष्टा करनी चाहिए। किसी समय काम-काज की भीड़ में भूल हो जाने पर,

याद आते ही विशेष रूप से अनुतप्त होना आवश्यक है कि- 'हे ठाकुरजी! इतनी देर तक तुम्हे भूला हुआ था।' ऐसा होने पर भगवत् चिन्ता दिन प्रतिदिन बढ़ती जायेगी। याद रखना है, 'वह एक ही चिन्ता सत्य है'।''

''लोगों के साथ प्रयोजन के बिना कोई अतिरिक्त बात न करना। बातें सुनना या सुनाना - दोनो भावों को ही संयमित करना आवश्यक है। जिस वार्तालाप से भगवत-भाव के परिसर में वृद्धि होती हो - ऐसी आलोचना विधेय है। फिर भी यह याद रखना है कि उनका ध्यान-धारणा जितना करोगे उतना ही तुम्हारी विचार व विवेक शक्ति उद्बोधित होकर तुम्हारे लिए क्या अच्छा या प्रयोजनीय है- यह सब दिखाते हुए तुम्हारे शुद्ध चिन्तन में सहायता करेगी और देखोगे कि जागतिक बाधाएं- रूप, रस, गन्ध, स्पर्श या शब्द में तुम्हारा आकर्षण घटता जा रहा है एवं क्रमशः एकमात्र भगवत-चिन्तन में डूबे रहने में अच्छा लग रहा है। शुद्ध चिन्ता का प्रधान लक्षण यह है कि किसी के प्रति या किसी वस्तु पर विरूद्ध भाव कदापि नही आयेगा, क्रमशः दिन प्रतिदिन सत्य, त्याग, संयम, प्रेम, क्षमा, धर्य, तितिक्षा आदि गुण बढ़ते जायेंगे। और भी देखोगे कि जितना ही भगवत-कृपा-लाभ होगा उतना ही वार्तालाप आदि में एवं विभिन्न भाव- वैष्णव, शाक्त, शैव आदि पर दृष्टि घटती जायेगी तथा अपने ही इष्ट की विभिन्न पूजा होने का बोध आ जायेगा, जैसे - जो मेरे पिता वह ही किसी का मित्र, किसी के मामा। व्यवहार में भी कोई उन्हें बाबा कहकर पुकारते हैं, कोई मामा कोई चाचा बुलाते हैं - वैसा ही अनुभव होगा।''

''पूजा, प्रार्थना, ध्यान, जप, कीर्तन, यज्ञ आदि द्वारा दिवा-रात्रि का सद्व्यवहार होना चाहिए। प्रथम अवस्था में धर्म-कर्म में मन लगाने से भी जहां जागतिक भाव का कर्म रहता है, वहां आध्यात्मिक भाव के सहायक जागतिक कर्म न करने से या एक ही समय एक साथ मिश्रण करने से विशेष फल का उदय नहीं होता। कम से कम कुछ समय के लिए बहिर्जगत को भुलाकर, घर का दरवाजा बन्द कर, निर्जन में या एकान्त में भीतर-भीतर उनके अखण्ड स्मरण से अन्तर्जगत की ओर दृष्टि देनी पड़ेगी। उस समय केवल ईश्वर-चिन्ता के अतिरिक्त दूसरी ओर मन न जा सके, इसका विशेष रूप से ध्यान देना है। भगवत कार्यादि में यदि बिन्दुमात्र भी किसी प्रकार का विघ्न या अन्तर आये तो ऐसे भाव में उपासक की पहले

अश्रद्धा, अरुचि आना आवश्यक है। यदि ऐसा न आये, तब समझना होगा कि उन्हें उस (विघ्नकारी) भाव में विशेष आसक्ति रह गयी है।''

उदाहरण के लिए माँ ने कहा था कि एक बार एक महिला आश्रमवासी जिनपर देवभोग की रसोई बनाने की जिम्मेदारी दी गई थी उसने माँ के पास आकर अपना दुखड़ा सुनाया कि उसे साधना के लिए समय ही नहीं मिल पाता है, जिसके लिए वह माँ के पास आयी थी। माँ ने उसके लिए ऐसा व्यवस्था कर दी जिससे वह दिन रात अपने कमरे में ही रहकर प्रतिदिन चौबीस घंटे में से लगभग अठारह घंटा साधना में बिता सकें। समय से उसका भोजन उसके कमरे में ही पहुंचाना एवं कपड़ों की धुलाई आदि की व्यवस्था भी कर दी गई जिससे उसे कमरे से बाहर आने की आवश्यकता ही न पड़े। किसी प्रकार उस महिला ने लगभग सात दिन बिताये एवं उसके बाद उन्होंने माँ के पास आकर आत्मसमर्पण कर दिया एवं कहा कि वह पूर्ववत देवभोग की रसोई ही बनाना चाहेंगी। माँ ने समझा दिया कि कर्म की समाप्ति हुए बिना केवल साधना में समय बिताना सम्भव नहीं हो पाता है। इसलिए साधक को सभी कार्य भगवत सेवा-रूपी कर्म समझकर पूर्ण निष्ठा के साथ करना आवश्यक है।

माँ ने आगे कहा है, ''इस प्रकार कमशः साधक का फल का खण्ड-खण्ड भाव के अन्दर-बाहर एक अखण्ड अनन्त सत्ता का प्रकाश होकर क्रमोन्नति से भाव एवं कर्मादि के पूर्ण समाधान की आशा है। पूर्ण समाधान से ही उन्हें विश्वभाव में 'डूबा हुआ मणि' बना देता है। ऐसा न होने तक अपनी-अपनी उपासना का प्रथम अवलम्बन का मूलोच्छेद नहीं हो पाता है। इसलिए देखोगे कि विचार एवं युक्ति से एक अविच्छिन्न सत्ता की मीमांसा में पहुंचकर भी पूर्ण समाधान के अभाव में साधना की जो धारा को प्रारम्भ में अवलम्बन कर चलता रहा, उसके प्रति ही विशेष लक्ष्य पड़ा रह सकता है। इससे भिन्न-भिन्न निबन्ध-भाव की परिधि में साधक बंध सकता है, जिससे परिधि के आबद्ध (गण्डिबद्ध) भाव से निबद्ध हो सके। किन्तु वह द्वन्द्व रहित होने की दिशा है - द्वन्द्वातीत की नहीं।''

''मोटे तौर पर बुद्धि तीन प्रकार की है। प्रथम 'जीव-बुद्धि' - इसमें धर्म संश्लिष्ट रहने पर भी जीव साधारण भाव से इसका (जीव-बुद्धि से) व्यवहार करता है। दूसरी है 'धर्म-बुद्धि'- इसमें धर्म-निष्ठा प्रबल रहती

है। सभी कर्मो में धर्म को लक्ष्य बनाकर चलता है। तृतीय है प्रज्ञा या 'योगज बुद्धि'। उपरोक्त धारा में चलते-चलते इसका उदय होता है। जब उपासना के द्वारा चित्त-शुद्धि हो जाती है, तब प्रातःकालीन सूर्योदय जैसे उनके हृदय में एक विशुद्ध ज्ञान दिखाई पड़ता है जिसमें उन्हें परमार्थ तत्व का वास्तविक संधान मिलता है। स्वभावतः, उस समय एक निर्मल बुद्धि, जिसका नाम योगज-बुद्धि कह सकते हो, वह उसे प्राप्त होती है। यह बुद्धि केवल नित्य एवं सत्य को धारण कर खेलती रहती है। उस खेल में इस प्रकार की इच्छा या अनिच्छा (जागतिक या धार्मिक) का प्रकाश नहीं रहता।''

''जब कुण्डलिनी-शक्ति जाग्रत होती है तब नाभिमूल में जो सब ग्रन्थि हैं वे खुलना प्रारम्भ होती हैं। यह सब ग्रन्थि भेद होने से ही नानाविध शब्द सुनाई देते हैं और ज्योति दर्शन होता है। ग्रन्थि भेद से जो शब्द सुनाई देता है उसे 'अनाहत ध्वनि' कहते हैं। यह (ध्वनि) हर समय हो रही है, परन्तु चित्त स्थिर न होने तक यह सुनाई नहीं देती है। यह जगत के समस्त ध्वनि की समष्टि है। जैसे शंख, घन्टा, घड़ियाल आदि के शब्द अलग अलग होते हैं, परन्तु ये सब एक साथ बजाने पर सारी ध्वनि एकत्रित होकर अलग एक किस्म की ध्वनि बनती है, अनाहत ध्वनि भी उसी तरह है। जगत की ऐसा कोई ध्वनि नहीं है जिसके साथ इसकी तुलना हो सके। उसी प्रकार अन्य एक ग्रन्थि भेद होने से ज्योति दर्शन होता है। यह ज्योति भी अपार्थिव है। जगत की किसी भी रोशनी से इसका तुलना करना सम्भव नहीं है। रूप के विषय में भी ऐसा ही समझना चाहिए। ग्रन्थि भेद होने के साथ-साथ साधक के संस्कार के अनुरूप विविध दर्शन होता है और समस्त रूप एक रूप में विलीन हो जाता है। जगत की समस्त वस्तु एक मूल से ही उत्पन्न होती हैं। ग्रन्थि भेद होने से ही यह सब समझ पाते हैं। जिसका समस्त ग्रन्थि भेद हो गया है केवल वही जगत की सृष्टि, स्थिति एवं लय का कारण समझ पाते हैं। जिनका मात्र आंशिक भेद हुआ है वे सृष्टि के रहस्य समझ नहीं पाते हैं।''

साधकों के बाधा-विघ्न के विषय में माँ की कुछ विशेष वाणी

माँ ने कहा है, ''कोई-कोई साधक व गृहस्थ प्रारम्भ में समस्त

विषय वासनाओं की ताड़ना से अपना उद्धार पाने के लिए भगवान के नाम में, पाठ, कीर्तन, ध्यान, जप आदि में मूल लक्ष्य- अपने को बचाना, अपने को प्राप्त करना- अमृतत्व ही उनका लक्ष्य होता है। परम चरम पाना ही उनका लक्ष्य रहता है। परन्तु पहले-पहले एक समय साधक का एक प्रकार का भाव पनपता है। छोटा या बड़ा, जो कोई प्रणाम करने आते हैं, उनके मन में आता है - हमें प्रणाम क्यों किया जा रहा है; मैं तो अति दीन - कुछ भी नहीं हूं। इसलिए वह प्रणाम नहीं ले पाते - हट जाते हैं। और भी एक भय है - शक्ति क्षय होने का। जब क्रमशः कुछ शक्ति लाभ होता है, किसी-किसी के मन में और एक भाव जगने की आशंका हो सकती है। उस समय इसके अन्दर सर्व साधारण के मंगल करने का भाव जागृत होता है। कोई नमस्कार करने से आशीर्वाद करते हैं अथवा किसी के द्वारा कुछ धर्म-तत्व पूछने पर यथा साध्य समझाने की चेष्टा करते हैं। जैसे निर्धन को धन लाभ होने से अनेक समय लोगों को अन्न-वस्त्र दान कर आनन्द लाभ करने की वासना जागृत होती है। उस हालत में लोगों के साथ उनका सत-व्यवहार, क्षमा, दया आदि प्रकाश पाते हैं एवं उन्हें आनन्द मिलता है - सत्य वस्तु है न। वे सबको देना एवं सन्धान देना चाहते हैं। उनके भीतर कुछ संचित है इसीलिए श्रोता लोग उनकी बातें सुनकर आनन्द पाते हैं। ऐसे व्यक्ति के लक्षणादि कुछ-कुछ मधुर दिखते हैं। सम व्यवहार व सरल उन्मुक्त भाव उनमें दिखाई देता है। हिंसा, मिथ्या या निन्दा, उनके पास विशेष रूप से आश्रय नहीं पाते व लोभ मोह आदि से दूर रहने की चेष्टा करते हैं।''

''किसी समय किसी को यह भी हो सकता है कि दीक्षा आदि लेकर बाहर की पूजा आदि सब सीखकर - जैसे कीर्तन, ग्रन्थादि से भगवत प्रसंग पाठकर लोगों को सुनाना, पूजा-जप-ध्यानादि करना, प्रणाम करने देना, स्पर्श से भी किसी प्रकार आशीर्वाद का प्रकाश करना, फूल-गन्ध, चन्दन, माला आदि से भूषित होना आदि साधुओं का अनुकरण, ये सब भाव भी आ सकता है। जिनका इस प्रकार का अनुकरण - यह सब कर्मादि का पूर्ण फल कहां है? फल नहीं मिलेगा ऐसी बात नहीं। परन्तु यहां फल जितना मिलने को है, उतना ही प्राप्ति। क्योंकि इसके पीछे प्रशंसा, प्रतिष्ठा, वासना का मूल रखकर यह सब करना होता है न। इस क्षेत्र में प्रतिष्ठा,

प्रशंसा की वासना आदि विषय जड़ित रहने के कारण उसका फल भी उन्हें पूर्णांगीण प्राप्त होगा। क्योंकि वह क्रोध, लोभ, हिंसा, मोह इत्यादि के प्रभाव को हटा नहीं सका- इन्हें दबाकर अनुकरण- वे सब ताड़ना का फल देंगे ही।"

"सत्यनिष्ठा अवलम्बन कर और भी उन्नति करने से कभी-कभी उनमें कुछ-कुछ विभूतियों का प्रकाश भी दिखाई देता है। वह सब, प्रथमतः शरीर एवं विषय से सम्बन्धित व्यवस्थादि के माध्यम से बाहर प्रकाशित होता है। उस समय भी भीतर में छिपी हुई प्रशंसा, प्रतिष्ठा का भाव रहने के कारण, उस रस बोध में किसी को कुछ सुविधा प्रदान करने में आनन्द मिलने से या किसी से धर्मार्थ कोई विषय ग्रहण कर वे तृप्त होते हैं। प्रतिष्ठा भाव के कारण उन सब भावों का मूलच्छेद नहीं हो पाता है। इस अवस्था में विशेष रूप से मस्त होने पर शक्ति क्षय अनिवार्य है। इसका कारण यह है, सत्य वस्तु को पकड़कर जो शक्ति लाभ हुआ है, वह शक्ति यदि इन सब बाहर के खेलों में अधिकतर मात्रा में मुग्ध हो जाये तब किसी भी समय उनको सत्य पथ से विपथगामी कर सत्य-मिथ्या में लपेट सकता है। प्रारम्भ में उन्हें पता नहीं भी चल पाता है। बाद में जब उन्हें समझ आती है, तब महा-दुःख का कारण बनता है। उसी समय यथा शक्ति होशियार रहना एवं गन्तव्य में लक्ष्य स्थिर रखना है।"

"साधक साधारण विभूतियों में आकृष्ट न होकर यदि साधना में मन-प्राण उड़ेल दें, लक्ष्यपति के एक लक्ष्य में चलते रहे, तब ज्यों-ज्यों अग्रसर होते रहते हैं त्यों-त्यों उनके भीतर नाना प्रकार का आध्यात्मिक खेल खुलता जाता है। आध्यात्मिक खेल का मतलब, आध्यात्मिक भाव की बातें छोड़कर अन्य कोई विषय उन्हें अच्छा नहीं लगता है। बेकार की बातें कान में आने से बेकार के विषय आंखों से देखने पर, उनके शरीर में कांटा लगने या आग लगने जैसी ज्वाला-यन्त्रणा होती है। सब समय भगवत कथा छोड़कर अन्य बातें उन्हें अच्छी नहीं लगती है। सर्व समय आध्यात्मिक भाव में संलग्न रहने के कारण उनका हाव-भाव बहुत सुन्दर दीखता है। अपनी-अपनी साधना की गति के अनुसार यौगिक नाना प्रकार अलौकिक विभूति का प्रकाश दिखाई देता है। उन सब विभूतियों को जो हटाकर चल नहीं पाते वे खेल के भीतर ही अटक जाते हैं और जो लोग ये सब अतिक्रम कर चले जाते हैं वे उच्चतम स्तर पर आरोहण कर जाते हैं।"

"क्रमशः वे जब और अग्रसर होते हैं तब उनके बोलने कहने का भाव घटता जाता है। वह देखता है कि इस उच्च भाव की बातें बिना कर्म और गुरु-कृपा के कोई समझ नहीं सकेगा, फिर भी प्रकृत जिज्ञासुओं को सरल भाषा में समझाने की चेष्टा करते हैं। और उन्हें प्रणाम या स्पर्श यदि कोई करता है तो उन्हें बिजली लगने जैसा अनुभव होता है एवं उनके लिए असहनीय होता है। क्योंकि चूल्हे पर रखे गर्म तवे पर जल छिड़कने या जल संयुक्त कर देने पर जो हालत होती है ठीक वैसा ही उन्हें होता है। नमस्कार करने वालों की वासना, कामना रूप जो भाव है वह उन्हें आघात पहुंचाता है।"

"बाद में यदि साधक दैहिक खेल के परे चला जाता है, तब और उन्हें ये सब विषय चंचल नहीं कर पाते हैं। स्वभाव में परिणत न होने तक कोई भी भाव से छुटकारा नहीं मिल सकता। मोटी मोटी कुछ अवस्थाओं की बातें कही गई है। हालांकि जो जगतगुरु हैं, उनकी जो करुणाधारा है - वह अलग बात है।"

संयम सप्ताह महाव्रत

"संयम सप्ताह महाव्रत" का अर्थ होता है एक सप्ताह तक सांसारिकता से बचकर आत्म अनुशासन करने का व्रत लेना। इसमें भाग लेने वालों को "व्रती" कहते हैं। आध्यात्मिक प्रगति के लिए प्रयास करना संयम सप्ताह का लक्ष्य है। माँ कहती थी-"अपने को जानना, अपने को पाना, सर्व प्रकार से सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य के पालन द्वारा अपने आध्यात्मिक जीवन में उन्नति साधन की चेष्टा करना तथा सबकी आत्मोन्नति सम्पादन में सहायता देना ही इसका उद्देश्य है।"

इसका सूत्रपात बहुत पहले उस समय हुआ था जब माँ ढाका में शाहबाग रहती थीं। माँ सदैव इस बिन्दु पर बल देती थीं कि प्रारम्भ में साधकों को माह में कम से कम एक या दो दिन संयम का अभ्यास करना चाहिए। माँ कहती थीं कि पवित्र भारतीय माह वैशाख, श्रावण, कार्तिक और माघ महीनों में संयम का पालन करने से अधिक लाभ होते हैं। इन दिनों कोई पसन्द की चीज खाना, झूठ बोलना, गुस्सा करना आदि के भाव नहीं आने देना चाहिए। स्त्री को भगवती स्वरूप तथा बच्चों को बाल गोपाल की मूर्ति में देखना है।

बहुत वर्षों के पश्चात सोलन के महाराजा दुर्गा सिंहजी (योगी भाई) के मन में यह प्रेरणा हुई कि श्री माँ के सामने सभी भक्तगण एक सप्ताह तक सम्मिलित रूप से बैठकर संयम और साधना करें। उन्हें लगा कि इसमें भाग लेने वालों की आध्यात्मिक प्रगति के लिए यह बहुत उपयुक्त होगा। माँ की अनुमति और उनकी कृपा से श्री श्री आनन्दमयी संघ ने दीपावली के बाद शुक्ल अष्टमी तिथि से कार्तिक पूर्णिमा तक सात दिनों के लिए "संयम सप्ताह महाव्रत" का वार्षिक स्तर पर आयोजन करवाने का निर्णय लिया। आध्यात्मिक प्रगति में रुचि रखने वाले किसी भी धर्म या जाति के व्यक्ति को सप्ताह भर तक चलने वाले इस कार्यक्रम में भाग लेने और इसके नियमों का कठोरता से पालन करने की अनुमति दी जाती है।

प्रथम संयम सप्ताह वाराणसी आश्रम में 6 से 12 अगस्त 1952 तक आयोजित हुआ था। श्री माँ ने समवेत ध्यान के बाद निम्न पद अपनी धीमी एवं सुमधुर स्वर में गाया था:-

हे पित हे हित हे ब्रह्म तत्वम्।
हे पित हे हित हे ब्रह्म भूतम्
हे पित हे हित हे ब्रह्म स्वरूपम्।

माँ ने बताया था कि सूक्ष्म रूप में सांवले शरीर वाला एक दिव्य बालक इस शरीर (श्री माँ) को ही लक्ष्य करके इन पदों को गा रहा था। माँ ने इन पदों को उसी धुन में गाया था जिस प्रकार उस दिव्य बालक ने माँ को लक्ष्य करके इन्हें गाया था। इसके बाद से एक घण्टे तक चलने वाले ध्यान के बाद भक्तों को उनकी मौन और स्थिरता से जगाने के लिए इस पद को केवल एक या दो जनों के द्वारा उसी धुन में गाया जाता है। इसे किसी भी अन्य अवसर पर नहीं गाया जाता।

संयम सप्ताह का दैनिक कार्यक्रम सुबह चार बजे व्रतियों को नींद से जगाने के लिए घंटी बजने के साथ प्रारम्भ होता है। सूर्योदय से पहले लगभग 5.00 बजे से 'ऊषा कीर्तन' प्रारम्भ हो जाता है। प्रातः 7.30 से वेद पाठ तथा "सत्यं ज्ञानं अनंतम् ब्रह्म..." समवेत कीर्तन से प्रातः सत्र शुरू होता है। प्रति दिन सुबह आठ से नौ बजे तक सामूहिक ध्यान होता है। ध्यान के दौरान सभी व्रतियों को एक घंटे तक मौन रखना होता है। ध्यान का प्रारम्भ शंखनाद से होता है और ध्यान के अंत में "हे पित हे हित..."

प्रार्थना के उपरान्त पांच मिनट "जय जय माँ..." समवेत कीर्तन गाया जाता है। सुबह के सत्र में इसके पश्चात गीता के क्रमिक तीन अध्याय और दुर्गा सप्तशती में से एक देवीस्तोत्र एवं उपनिषद में से कुछ अंश पाठ किया जाता है। इसके बाद विद्वान महात्मागण उपनिषद एवं अन्य विषयों पर प्रवचन करते हैं।

इसी प्रकार अपराह्न 2.45 से "हे भगवान..." समवेत कीर्तन से अपराह्न सत्र शुरू होता है। इसे उसी धुन पर गाया जाता है जैसे श्री माँ ने गाया था। तीन से चार बजे तक फिर एक घंटे का सामूहिक ध्यान शंखनाद से प्रारम्भ होता है और ध्यान के अंत में "हे पित हे हित..." प्रार्थना के उपरान्त "जय जय माँ..." समवेत कीर्तन गाया जाता है। इसके बाद विद्वान महात्मागण पुराण एवं अन्य विषयों पर प्रवचन करते हैं। प्रतिदिन प्रत्येक प्रवचकों को उनके प्रवचन के पूर्व चन्दन लगाकर माला पहनायी जाती है एवं प्रवचन के उपरान्त फल का छोटा पैकेट भेंट किया जाता है। यदि महात्मा का यह अन्तिम प्रवचन हो तो उन्हें फल की टोकरी के साथ, मिठाई, वस्त्र या चादर, रुद्राक्ष की माला, कोई धार्मिक पुस्तक एवं समुचित दक्षिणा भेंट देने का नियम है।

सामूहिक ध्यान के समय हॉल के द्वार बंद कर दिए जाते हैं और किसी को भी प्रवेश की अनुमति नहीं होती है। मौन के समय माँ के समक्ष घी का प्रकाशित दीप रखा जाता है। माँ की उपस्थिति पूरे वातावरण में शांति और स्थिरता उत्पन्न कर देती है। उस समय भक्तगण इस उपयुक्त वातावरण में अपनी अन्तरात्मा में प्रवेश करने का प्रयास करते हैं।

संयम सप्ताह में भोजन को लेकर विशेष नियमों का पालन किया जाता है। पहले और अंतिम दिन केवल गंगा जल पी कर रहा जाता है। बीच के पांच दिनों में केवल दोपहर में निर्धारित एक पद का भोजन दिया जाता है। एकादशी के दिन केवल फलाहरी भोजन मिलता है। "ब" श्रेणी के व्रतियों को इन पांच दिनों में रात के समय एक गिलास दूध और अंतिम दिन दोपहर को सामान्य सात्विक भोजन भी दिया जाता है, जो "अ" श्रेणी के व्रतियों को नहीं दिया जाता हैं। सभी व्रती इच्छानुसार जल का पान कर सकते हैं।

इस अवधि में प्रत्येक व्रती को प्रति दिन न्यूनतम 5000 हजार जप

करना अनिवार्य है। व्रतियों को ब्रह्मचर्य पालन के अतिरिक्त सिर में तेल लगाना, प्रसाधन सामग्री का उपयोग करना, नाखून काटना, हजामत बनाना, धूम्रपान या कोई भी नशे की वस्तु, चाय, काफी आदि के सेवन से परहेज करने के नियमों का भी पालन करना होता है।

जो लोग इस प्रकार सीमित भोजन करने के आदि नहीं होते हैं उन्हें प्रारम्भ में कुछ कठिनाई महसूस हो सकती है। यद्यपि दो तिन दिनों तक नियमों का कठोर से पालन करते हुए इसे जारी रखने के बाद वे शारीरिक तौर पर बहुत बेहतर अनुभव करने लगते हैं तथा उनके मन का भटकाव भी बहुत कम हो जाता है। करीब पांच दिनों बाद वे यह सोचने लगते हैं कि सप्ताह भर के इस कार्यक्रम को कुछ और दिनों के लिए क्यों न बढ़ा दिया जाए। यही नहीं, इसका अनुकूल प्रभाव बहुत दिनों तक अनुभव होता रहता है।

माँ के समय सबसे अधिक आकर्षक एवं अविस्मरणीय समय था रात नौ बजे के बाद होने वाला 'मातृ सत्संग'। माँ भक्तगणों के प्रश्नों को सुनकर स्वयं उनका उत्तर देती थीं। कुछ बार ऐसा भी होता था कि माँ वहां उपस्थित आमन्त्रित महात्माओं की ओर देखकर उनसे उत्तर देने का अनुरोध करती थीं, किन्तु अधिकतर समय वे स्वयं माँ से ही उत्तर सुनना चाहते थे क्योंकि वे भी माँ की वाणी सुनने को उत्सुक रहते थे। सबसे अविस्मरणीय वे क्षण होते थे जब माँ महात्माओं के अनुरोध पर 'हरि नाम कीर्तन' गाती थीं। कभी कभी माँ द्वारा गाया जानेवाला 'हे भगवान...' भावपूर्ण कीर्तन, ईश्वरीय प्रेम की चरम अवस्था का क्षण प्रतीत होता था। उस समय हर व्यक्ति उस ईश्वरीय वातावरण से अभिभूत हो जाता था। इस प्रकार सारे दिन के कठिन संयम के बाद माँ सबको आनन्द से भरपूर कर देतीं।

एक दिन माँ ने सभी से विनती की कि वे प्रतिदिन एक निर्धारित समय में केवल 15 मिनट के लिए मौन रहकर भगवान का स्मरण करना तय कर लें। सर्वदा के लिए यही समय भगवान को दान कर दे। कभी भी किसी परिस्थिति में यह खण्डित न होने पाये। बोलने या निद्रा से यह खण्डित हो जाता है। यदि भूलवश कभी खण्डित हो जाये तो पिछले किये गये का फल समाप्त हो जाता है। इसलिए बहुत सतर्क रहना आवश्यक है। यदि ऐसा भूल हो ही जाये तो प्रयास न छोड़ें, फिर से उसी समय नियमित

मौन करने का प्रारम्भ कर उसे जारी रखें। जैसे किसी बड़े जहाज के साथ अपनी छोटी नाव को बांध कर आसानी से सागर को पार किया जा सकता है उसी तरह कठिन भवसागर को पार करने का यह एक सहज तरीका माँ ने बताया। माँ के निर्देशानुसार आश्रमों में रात 8.45 से 9.00 बजे तक प्रतिदिन मौन का पालन किया जाता है। माँ ने यह भी कहा कि प्रति दिन कम से कम एक बार श्रद्धा के साथ ईश्वर का स्मरण करना चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए, "हे प्रभु! मैं तुम्हारा हूं, मात्र तुम ही मुझे शरण दे सकते हो। मुझ पर कृपा करो, तुमको प्राप्त करने का मार्ग मुझे दिखाओ।"

संयम सप्ताह के अंतिम दिन रात 11.45 बजे से 00.15 बजे तक श्री माँ की उपस्थिति में "महानिशा ध्यान" केवल मोमबत्ती की रोशनी में सम्पन्न होता था। जितने बार संयम सप्ताह का आयोजन हुआ उतनी मोमबत्ती उस समय जालायी जाती थी। ध्यान के बाद उपस्थित हर कोई व्यक्ति माँ के समीप जाकर प्रणाम कर सकता था। माँ सारे व्रतियों को आशीर्वाद देती थीं और स्वयं अपने हाथों से प्रसाद वितरित करती थीं। वर्तमान में, संयम सप्ताह के समाप्ति के अगली सुबह सभी को माँ के समाधि स्थल के अन्दर जाकर प्रणाम करने की अनुमति दी जाती है।

इस अनुष्ठान का समापन अगली सुबह हवन के साथ सम्पन्न होता है और दोपहर में साधु भण्डारा के साथ सभी के लिए भण्डारा का आयोजन किया जाता है। उसी दिन रात से अगले दिन सूर्यास्त तक 'नाम-यज्ञ' का आयोजन किया जाता है। समस्त रात सूर्योदय तक महिलायें अखण्ड रूप से 'हरे कृष्ण' नाम कीर्तन करते हैं तथा उसके बाद पुरुष भक्त सूर्यास्त तक नाम कीर्तन करते रहते हैं। समापन कीर्तन के बाद उपस्थित भक्तों में बतासा वितरण किया जाता है। इस प्रकार संयम सप्ताह उत्सव पूर्ण हो जाता है।

माँ की उपस्थिति में इस प्रकार के संयम सप्ताह बत्तीस बार उत्तर भारत में आयोजित किए गए जिनमे से केवल वृंदावन आश्रम में ही छह बार ऐसे आयोजन हुए थे। कई बार अन्य आश्रमों के महात्माओं या कुछ अन्य सक्षम भक्तों ने अपने आश्रमों या स्थानों में इस विशाल आयोजन को करने के लिए माँ की अनुमति प्राप्त की थी। ऐसे आयोजन में हर समय उत्साह का माहौल बना रहता था। व्रती लोग महात्माओं के सत्संग के निरंतर प्रवाह का लाभ लेते थे और शिक्षाओं का पालन करने का प्रयास करते थे।

इन अवसरों पर कई अविस्मरणीय घटनाएं हुईं थीं। ऐसी ही एक घटना नवंबर 1963 में अहमदाबाद में आयोजित चौदहवें संयम सप्ताह के दौरान हुई थी। माँ के करीबी भक्त श्री के.सी. मुनशाह के अनुरोध पर एक सुसज्जित पण्डाल में इस संयम सप्ताह का आयोजन किया गया था। तीसरे दिन सुबह का सामूहिक ध्यान प्रारम्भ होने के कुछ ही मिनटों बाद एक भीषण तूफान अचानक शुरू हो गया। मूसलाधार वर्षा के कारण पण्डाल की कैनवस से बनी छत की हालत बिगड़ने लगी। यह पण्डाल मात्र बांसों के सहारे टिका हुआ था। पण्डाल की छत पर बहुत से पंखे ओर ट्यूब लाइट लगायी गयी थीं। इस बात की कल्पना करना भी कठिन है कि यदि वजनी पंखों और पण्डाल की छत पर भरे वर्षा जल के वजन से यदि वह नीचे गिर पड़ता तो संयम सप्ताह में भाग ले रहे लोगों की क्या हालत होती?

तूफान के प्रकोप से सभी चिंतित थे क्योंकि सभी व्रती, महात्मा एवं माँ पण्डाल के भीतर बैठे हुए थे। यद्यपि माँ एक घंटे का ध्यान पूरा होने तक मूर्तिवत् शांत बैठी रहीं। भीगे कपड़ों के साथ व्रती भी वहां बैठे रहे। मौन और संक्षिप्त कीर्तन के बाद सभी से अनुरोध किया गया कि पण्डाल को तत्काल खाली कर दिया जाए। माँ ने तब तक पण्डाल से निकलने से मना कर दिया जब तक कि अंतिम व्यक्ति पण्डाल से सुरक्षित बाहर नहीं निकल जाता। माँ के बाहर आते ही वह विशाल पण्डाल पलक झपकते ही ढह गया। माँ की कृपा से यह निश्चित तौर पर एक चमत्कार ही था कि कोई भी व्यक्ति घायल नहीं हुआ। बाद में रात भर में एक नया पण्डाल खड़ा किया गया और अगली सुबह पूर्ववत् वहां संयम सप्ताह होने लगा।

माँ की गरिमामयी उपस्थिति में अंतिम संयम सप्ताह वर्ष 1981 में हरिद्वार के कनखल आश्रम में आयोजित किया गया था। उसके बाद से यह बहु प्रतीक्षित कार्यक्रम प्रति वर्ष इसी आश्रम के शंकराचार्य हॉल में आयोजित किया जाता है। व्रतियों को धार्मिक विषयों पर प्रवचन देने के लिए विद्वान महात्मागणों का यहां आने का क्रम अभी तक बरकरार है। इसमें भाग लेने वाले व्रती लोगों में अनेक को माँ की उपस्थिति अनुभव होती है। माँ कहती थी कि यदि पूरे संयम सप्ताह में भाग लेना सम्भव न हो तो कम से कम एक-दो दिन के लिए भी आकर भाग लेने का प्रयास करना चाहिए।

श्री माँ के वचन हैं -''संयम व्रत भवरोग की औषधि है। हम सब भव रोग के रोगी हैं-जीवन-मृत्यु, हानि-लाभ, सुख-दुख की पीड़ा के रोगी।'' माँ ने यह भी कहा था-''महात्मा लोग ही डॉक्टर हैं, व्रती रोगी हैं, धर्म-चर्चा औषधि है और आत्मानुसंधान का मार्ग-दर्शन ही उससे छूटने का उपाय है।''

अध्याय-नवम

कुम्भ मेले में श्री श्री माँ

भारत में सबसे बड़ा धार्मिक एवं सांस्कृतिक आयोजन होता है- 'कुम्भ पर्व'। प्रत्येक बारह वर्ष के अंतराल के बाद प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन एवं नासिक में पूर्ण- कुम्भ पर्व होता है। अनुभूति सम्पन्न संत-महात्मा, विभिन्न सम्प्रदायों, आश्रमों एवं अखाड़ों के साधु-महंत, धार्मिक संगठनों के प्रमुख, सभी जाति एवं सम्प्रदायों के सामान्य श्रद्धालु जन, अमीर-गरीब सभी इस कुम्भ पर्व के अवसर पर यहां आते हैं एवं विशिष्ट दिनों में इन स्थानों की पवित्र नदियों में स्नान करते हैं। इस अवसर पर विदेशों से भी बड़ी संख्या में लोग आते हैं।

इस महा आयोजन के अवसर पर कुछ विशिष्ट तिथियों पर साधुओं का 'शाही स्नान' यात्रा का जुलूस निकलता है। चांदी के सिंहासनों पर विराजमान प्रमुख संतों और उनकी सुरक्षा में उनके साथ चल रहे नागा साधुओं के दर्शन करने के लिए मार्ग के दोनों तरफ देश-विदेश के लोगों की भीड़ उमड़ पड़ती है। नागा साधु कोई वस्त्र धारण नहीं करते। वे राख को अपने शरीर पर मले रहते हैं और बड़ी-बड़ी मालाएं धारण करते हैं। उन्हें साधुओं की फौज माना जा सकता है।

कुम्भ पर्व के धार्मिक महत्व का रहस्य पुराणों में मिलता है। समुद्र मंथन में देवताओं एवं दानवों को अमृत से भरा एक कुम्भ मिला था। इस कुम्भ को प्राप्त करने के लिए दोनों पक्षों के बीच संघर्ष हुआ और इसी संघर्ष में अमृत-कुम्भ से इन चारों स्थलों पर अमृत की कुछ बूंदें छलक गई थीं जिसके कारण ये स्थान सदैव के लिए पवित्र हो गए। कुम्भ पर्व उसी विशेष महत्वपूर्ण घटना का स्मरण-उत्सव है।

कुम्भ के बारे में श्री माँ ने कहा था-''यह कुम्भ पर्व धर्म की महाध्वजा है, जितने लोग भिन्न-भिन्न तरह से अलग-अलग उपायों से, एक के लिए प्रयत्न कर रहे, एक स्नान के लिए ही तो? एक धर्म ध्वजा के नीचे, एक को पाने के लिए एक लक्ष्य। इस एक लक्ष्य को लेकर ही कितने लोग एकत्रित हुए हैं एक जगह, किसी और देश में न ऐसा सुना न देखा। कितने भक्ति भाव से, कष्ट सहते हुए, भावमय होकर - एक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए।''

माँ ने सन् 1947 में आयोजित इलाहाबाद के अर्द्ध कुम्भ में भाग लिया था। अमावस्या तिथि में आयोजित मुख्य स्नान के दिन झूसी में स्थित प्रभुदत्त ब्रह्मचारी के आश्रम से नाव से लौटते समय माँ पवित्र नदियों गंगा, यमुना एवं सरस्वती के संगम पर रुकीं, जिसे त्रिवेणी कहा जाता है। माँ अपने जाड़ों के समस्त कपड़े पहने ही जल धारा में प्रवेश कर गईं। माँ ने बाद में प्रकट किया कि उस समय तीन सुन्दर कुंवारियों के रूप में गंगा, यमुना एवं सरस्वती उनके समक्ष आईं थी और उनसे पवित्र जल में डुबकी लेने का अनुरोध किया था।

वर्ष 1950 में कुम्भ मेले के अवसर पर माँ हरिद्वार आई थीं और सोलन महाराजा के भवन 'बघाट हाउस' में ठहरी थीं। चैत्र संक्रांति (14 अप्रैल) को मुख्य स्नान दिवस के अवसर पर माँ अपने विभिन्न भक्तों के साथ गंगाधारा में स्थित 'ब्रह्मकुण्ड' गईं। जिस समय सभी लोग गंगा में स्नान कर रहे थे, सहसा माँ ने गंगा जलधारा में छलांग लगा दी। एक बार जल के ऊपर माँ दिखाई दी और फिर जल के भीतर ही दृष्टि से ओझल हो गईं। वहां गंगाजल इतना स्वच्छ एवं पारदर्शी था कि नदी की तलहटी तक स्पष्ट दिखायी देती थी। वहां कहीं भी माँ के दिखाई नहीं पड़ने के कारण सभी भक्त चिन्ता में पड़ गए। कई लोगों ने पानी के भीतर घुसकर आसपास देखा पर माँ का कोई अता पता नहीं चला। वहां उपस्थित सभी लोगों के लिए वे क्षण बहुत पीड़ा से भरे थे। कुछ समय बाद माँ ठीक उसी स्थान पर जल से बाहर निकली जहां से वे अंदर गई थीं। बाद में माँ ने चिंतित भक्तों को बताया कि उन्हें नदी के भीतर तैरने या भासमान रहने का कोई "ख्याल" ही नहीं था। वे नदी की तलहटी पर ठीक उसी तरह लेटी थी जैसे कि चारपाई पर लेटा जाता है, हालांकि अन्य लोग वहां उन्हें देख नहीं पा रहे थे। यह स्पष्ट नहीं हो पाया कि जब नदी की तलहटी तक स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी तो वहां माँ क्यों नहीं दिखाई दे रही थीं? क्या उनका जल में विलय हो गया था? बाद में माँ ने कहा, "यदि भाव और गहरा हो गया होता तो जल से बाहर निकलने की संभावना ही नहीं थी।" इसे सुनकर सभी भक्त भयभीत हो गए। यदि यह भाव जारी रहता तो न जाने क्या परिणाम होता? माँ ने इस रहस्यमय लीला के बारे में कुछ और प्रकाश नहीं किया।

सन् 1954 में माँ पूर्ण कुम्भ के लिए इलाहाबाद गई थीं। ज्योतिर्मठ के शंकराचार्य एक दिन उनसे मिलने के लिए आए। 3 फरवरी को मुख्य स्नान के दिन स्वामी परमानन्दजी सैकड़ों श्रद्धालुओं को लेकर सुबह तीन बजे पवित्र स्नान के लिए निकले। उसके बाद माँ को असाधारण रूप से परेशान देखा गया। उसके कुछ समय बाद जब शिविर से दूसरा जत्था निकला तो माँ ने उनसे निरंतर भगवत नाम कीर्तन करने को कहा। सुबह नौ बजे माँ अचानक लेट गईं और पीड़ा भरे स्वरों में चीखने लगीं-"वे वहां कुचले जा रहे हैं, भगदड़ हो रही है, उनसे सांस नहीं ली जा रही है।" कुछ ही समय बाद सैकड़ों लोगों के भगदड़ में मारे जाने की खबर आ गई। माँ ने कहा, "पूरी घटना आंखों के सामने स्पष्ट थी तथा शवों का अम्बार लगा हुआ था। जब त्रासदी हुई तो ऐसा लगा कि इस शरीर को कुचला जा रहा है और इसके प्राण छूट रहे हैं।" माँ की असीम कृपा से माँ के कैम्प से गये किसी भक्त को भी कोई क्षति नहीं हुई।

हरिद्वार में वर्ष 1962 में हुए पूर्ण कुम्भ के अवसर पर निरंजनी अखाड़े के महात्माओं ने एक नयी परम्परा रचते हुए माँ को शाही जुलूस का नेतृत्व करने का सम्मान दिया। अन्य साधु अखाड़ों ने भी उनके द्वारा नेतृत्व किए जाने का स्वागत किया। जुलूस में माँ हाथी पर रखे चांदी के हौदे पर सवार थीं। चैत्र संक्रान्ति के पवित्र दिन को हरिद्वार में होने वाले कुम्भ मेले के प्रमुख स्नान के अवसर पर एक और परम्परा का प्रारम्भ हुआ। उस दिन निर्वाणी अखाड़े के साधुओं ने माँ के नेतृत्व में गंगा के ब्रह्मकुण्ड में जाकर पवित्र स्नान किया। इनके स्नान के बाद ही आम श्रद्धालुओं का स्नान हुआ। कुम्भ के अन्य प्रमुख स्नान के दिनों पर भी इसी परम्परा का निर्वाह किया गया। इन्हीं परम्पराओं का निर्वाह कमोबेश तब तक चलता रहा जब तक श्री माँ की शारीरिक उपस्थिति बनी रही। इस प्रकार लाखों श्रद्धालुओं को माँ के दर्शन का लाभ मिल जाता था। कुम्भ के दौरान माँ के दर्शन की मांग सबसे अधिक रहती थी।

कई बार ऐसा होता था कि तीखे विरोधों के चलते विभिन्न अखाड़ों के बीच आपसी मतभेद उत्पन्न हो जाते थे। वे अपने मतभेदों का समाधान करवाने के लिए माँ के पास आते थे। माँ के विनम्र सुझाव एवं प्रभाव के कारण समस्याओं का आपसी सहमति के आधार पर समाधान

निकल आता था। माँ सबके साथ समुचित सम्मान के साथ व्यवहार करती थीं तथा वे भी माँ की आकांक्षाओं एवं दृष्टिकोण का सम्मान करते थे। कभी-कभी कुछ साम्प्रदायिक गुट जनता के बीच अपनी छवि चमकाने के उद्देश्य से अन्य सम्प्रदायों के विरुद्ध बोल देते हैं। माँ ने कभी दूसरों की प्रतिष्ठा कम करने का प्रयास नहीं किया। माँ कहती थीं कि सभी के लिए स्थान है। लोग केवल अपने स्तर एवं स्थिति के अनुरूप बात करते हैं, इसलिए उन्हें दोष देना उपयुक्त नहीं है। कुम्भ के समय माँ अपने कैम्प में अलग-अलग दिन चार मुख्य अखाड़ों के साधुओं को माला, चन्दन, वस्त्र सहित भोजन कराते थे।

कुम्भ में आने वाले पूजनीय शंकराचार्य, अखाड़ों के महन्त, विभिन्न आश्रमों के महामण्डलेश्वर, एवं अन्य प्रमुख साधु माँ से भेंट करने आते थे और उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते थे। प्रधानमंत्री का पद संभालने के बाद श्रीमती इन्दिरा गांधी सन् 1966 में इलाहाबाद में आयोजित कुम्भ में श्री माँ का आशीर्वाद लेने के लिए उनके शिविर में आई थीं। माँ से उन्होंने कहा कि माँ तुम शक्तिमयी हो मुझे शक्ति दो। माँ ने इन्दिराजी से कहीं, "तुममें जो शक्ति है उसे जगाओ।" कुम्भ के समय विख्यात सितार वादक (बाद में भारत रत्न से सम्मानित) पण्डित रविशंकर माँ के दर्शन करने के लिए आये थे। माँ के सम्मुख उन्होंने बंगाल का प्रसिद्ध 'भटियाली कीर्तन' सितार पर बजाया जिसे सैकड़ों लोग सुनकर मुग्ध हो गये।

इलाहाबाद में वर्ष 1977 के पूर्ण कुम्भ की अवधि में माँ से मिलने के लिए देश-विदेश से आये विशिष्ट व्यक्तियों का तांता लग गया था। श्रीमती इंदिरा गांधी, उनके पुत्र राजीव गांधी, पुत्रवधू सोनिया गांधी एवं पौत्र-पौत्री सहित माँ के दर्शन करने और उनका आशीर्वाद पाने के लिए आए थे। कुम्भ में माँ के दर्शन की मांग इतनी बढ़ जाती थी कि विशाल भीड़ को सम्भालना मुश्किल हो जाता था। प्रत्येक साधु-अखाड़ा माँ को अपने शिविर में ले जाना चाहता था। श्री माँ यथासम्भव उनकी आकांक्षाओं को पूरा करती थीं।

इलाहाबाद में कुम्भ के समय माँ कभी कभी दिवंगत जस्टिस नीरज मुखर्जी के यहां जार्ज टाउन में रुक जाती थीं। पूरा परिवार माँ के विशेष भक्त थे। नीरज बाबू की पत्नी बाद में संन्यासिनी हो गई थीं एवं

उनकी दोनों पुत्री रेणुदी एवं डॉ. वीथिका मुखर्जी ने ब्रह्मचारिणी जैसा जीवन बिताया। अपने बंगले के विशाल परिसर में माँ के लिए उन्होंने एक छोटा सा आश्रम का निर्माण कराया था जहां माँ ठहर जाती थीं। सन् 1961 में यहां माँ का जन्मोत्सव का आयोजन भी किया गया था। इलाहाबाद में कुम्भ के समय माँ मेला परिसर में रहती थीं परन्तु यह आश्रम माँ का 'बेस कैम्प' जैसा हुआ करता था। वर्तमान में इस आश्रम की देखभाल इस परिवार द्वारा ही की जाती है।

एक बार माँ बनारस जाते समय इलाहाबाद रेलवे स्टेशन पर उतर गईं एवं उनके साथ आये सभी लोगों को उसी रेलगाड़ी से बनारस जाने को कह दिया गया। माँ के इस परिवर्तित कार्यक्रम के बारे में केवल ब्रह्मचारी पानुदा को ही मालूम था। वह बनारस से आश्रम की बड़ी काइजर गाड़ी लेकर एवं पेट्रोल से उसकी पूरी टंकी भरवाकर सुबह तड़के इलाहाबाद रेलवे स्टेशन पहुंच गये। कार में बैठकर थोडी ही देर में माँ ने सीधे बनारस आश्रम चलने को कह दिया। आश्रम के ड्राइवर सुधीरदा समझ नहीं पाये कि जब बनारस ही जाना था तो जिस रेलगाड़ी से सब गये, माँ भी उन्हीं के साथ चली जातीं। आते जाते लगभग 250 किलोमीटर कार को चलवाने की क्या आवश्यकता थी? उन्होंने गाड़ी चलाते हुए माँ को सुनाकर कहा कि आजकल पेट्रोल बहुत महंगा हो गया है, इसलिए सोच समझ कर गाड़ी दौड़ाना चाहिए। माँ ने तत्काल कह दिया, "अच्छा! तो पेट्रोल बहुत मंहगा हो गया?" बनारस आश्रम में माँ को पहुंचाकर पानुदा ने ड्राइवर सुधीरदा को तत्काल गाड़ी की टंकी में पूरा पेट्रोल भरवाकर तैयार रखने को कहा क्योंकि माँ पता नहीं कब किस ओर चल दें। पेट्रोल स्टेशन जाने पर तेल भरने वाले ने कहा कि गाड़ी की टंकी पूर्णतया भरी हुई है, एक बूंद डालने की जगह नहीं है। ड्राइवर सुधीरदा अचम्भित हो गये कि लगभग 250 किलोमीटर चलने के बाद भी पेट्रोल की कोई खपत क्यों नहीं हुई! इस प्रकार उनको माँ से सबक मिल गया।

माँ ने सन् 1982 में अंतिम बार इलाहाबाद के अर्द्ध कुम्भ में भाग लिया था, जो पूर्ण कुम्भ के छह वर्ष बाद होता है। सभी अखाड़ों ने आग्रह के साथ माँ की अगुवाई में शाही जुलूसों को निकालने की उसी परम्परा का पालन किया जो वर्ष 1962 के हरिद्वार कुम्भ से प्रारम्भ हुई थी। इस बार

माँ ने चांदी के बने शेषनाग नुमा सुन्दर खुली पालकी में बैठकर शाही जुलूस का नेतृत्व किया। इस दौरान माँ के प्रति साधु महात्माओं तथा मेला प्रशासन द्वारा एवं व्यापक तौर पर आम श्रद्धालुओं द्वारा जो सम्मान एवं श्रद्धा दिखायी वह अनूठी एवं अभूतपूर्व थी।

श्री माँ का सूक्ष्म शरीरधारियों से सम्पर्क

देवता, सिद्ध, दिवंगत साधु, महात्मा तथा अन्य लोग सूक्ष्म शरीर में श्री माँ से मिलने के लिए प्रायः हर समय ही आया करते थे। कभी-कभी माँ इन बातों को प्रकट कर देती थीं। माँ से उनकी भेंट होती थी, उनके साथ बातचीत होती थी, माँ उनका मार्गदर्शन करती थीं और उन्हें भी उसी तरह आनन्दित करती थीं जैसे हम सभी को करती थीं। सूक्ष्म में माँ से मिलने कितने ही वृक्ष-लताएं, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु आते थे और अपने अभाव-अभियोग को जिस तरह से प्रकट करते थे, क्या उसका कोई लेखा-जोखा हो सकता है? माँ से ऐसा भी सुना है कि कोई कोई सूक्ष्म शरीर जहां रहते हैं, वहीं उनकी वासना पूर्ण करनी पड़ती है। स्थान के आकर्षण के कारण वे उस स्थान को छोड़कर नहीं जा सकते। माँ की कृपा उन सभी तक पहुंचती है जो अपने अंतरतम से उन्हें पुकारते हैं।

गुरुप्रिया दीदी ने एक बार माँ से देह त्याग चुकी आत्माओं के सूक्ष्म अस्तित्व के बारे में विशेष तौर पर प्रश्न किया था। इसके उत्तर में माँ ने कहा था-"प्रायः मृत व्यक्ति की आत्मा सूक्ष्म भाव से आती हैं। तुम लोगों की तरह उनके भी हाथ एवं पांव होते हैं अथवा उनकी उपस्थिति को स्पर्श, शब्द, गंध या कई अन्य तरीकों से अनुभव किया जा सकता है। तुम लोग इसे सत्य नहीं मान सकते क्योंकि तुम उन्हें देख नहीं सकते। स्तर-भेद से कैसे दिखेगें? तुम लोगों ने अक्सर देखा होगा, यह शरीर उपस्थित है, पर अन्य एक रूप में शरीर चला जा सकता हैं।"

माँ ने कहा- "सूक्ष्म की घटना स्थूल में भी प्रकट हो सकती हैं। यह शरीर जैसे तुम लोगों के निकट है, वैसे ही उन लोगों के निकट भी प्रकट है। तुम इस शरीर को यहां देख रहे हो लेकिन वहां भी इसी तरह है। अगर यह स्वप्न है तो सभी कुछ तो स्वप्न ही है। तुम लोग जैसे इस शरीर के निकट बैठते हो, हाथ-पैर सहलाते हो, सूक्ष्म शरीर भी ठीक इसी प्रकार

करते हैं। अनेक आते हैं, स्पर्श से ही समझा जा सकता है। वहां तो यहां की तरह का समय बन्धन नहीं है, घण्टे बीत जाते हैं।'' माँ ने यह भी कहा था, ''जैसा व्यवहार तुम लोगों के साथ होता है, ठीक वैसा ही उन लोगों के साथ होता है। इस कारण विश्राम कहने से तुम लोग जैसा मानते हो, वह नहीं होता।''

जब देहरादून के रायपुर आश्रम में माँ का जन्मोत्सव मनाया जा रहा था, तो बाद में माँ ने कहा था कि सूक्ष्म जगत में भी इसी तरह का उत्सव चल रहा है। एक बार वृंदावन में माँ यथावत विश्राम कर रही थीं। कुछ देर बाद माँ बोली- ''सोने का भाव ही नहीं है। खोल-करताल की आवाज से कान भर जा रहे हैं। बहुत सारे लोग इस शरीर को मध्य में रखकर खूब कीर्तन कर रहे हैं। वे गा रहे हैं - एशो दिगम्बर, अरुण शिखर एशो, एशो, एशो हे! (आओ दिगम्बर, अरुण शिखर, आओ आओ आओ हे!)।''

माँ बोलीं -''कभी कभी अशरीरी आत्मा कुछ मांगती भी हैं। फिर हर समय ये चंचलता प्रकट नहीं करते, उत्तर प्रति-उत्तर भी नहीं कर पाते। जिस-जिस भाव की बातें होती हैं, उस-उस भाव के अशरीरी वहां बिन बुलाये आकर एकत्रित हो जाते हैं। एक समय तुम लोग देखते हो कि बातचीत अच्छी तरह जम गई, तब समझना होगा कि अशरीरी लोग वहां आकर उन बातों के भावों में सहयोग दे रहे हैं। जिस तरह तुम लोग इस शरीर के निकट प्रत्यक्ष सत्य हो, वैसे ही वे भी हैं।'' माँ ने यह भी खुलासा किया कि अनेक बार सूक्ष्म शरीरी भी आकर माँ से दीक्षा की प्रार्थना करते हैं। तुलसी एवं बिल्व पत्र पर मन्त्र लिखवाकर माँ ने अनेक बार उनके नाम से गंगा में विसर्जन करवाया था।

सन् 1952 में माँ के दक्षिण भारत में भ्रमण काल के दौरान एक सूक्ष्म शरीरधारी महात्मा उनके पास आया था। महात्मा ने जो जो साधन की थी, उसके बारे में माँ को अवगत कराया। माँ ने उस महात्मा से कहा कि वह उनसे रामेश्वरम में आकर मिले और उसके बाद वे द्वारिका में भेंट करें। उस समय माँ के साथ उपस्थित हरिबाबा एवं कोई-कोई ब्रह्मचारी को भी उस महात्मा का एक झलक दर्शन करने का अवसर मिला था। द्वारका पहुंचने के उपरान्त द्वारिकाधीश मन्दिर में श्री माँ ने उन्हें मोक्ष प्रदान किया। इस महान तथ्य को सुनकर हरिबाबा भावुक हो गए। उन्होंने आश्रम के एक

ब्रह्मचारी का शरीर झकझोरते हुए कहा, "माँ को क्या समझते हो? माँ स्वयं मोक्षदायिनी हैं।" बाद में माँ ने इंगित किया था कि वह महात्मा अपने पिछले जन्म में द्वारिकाधीश मन्दिर का ही पुजारी था।

एक बार अल्मोड़ा आश्रम में माँ ने नैष्ठिक ब्रह्मचारी स्वामी भास्करानन्दजी का हाथ पकड़कर भाईजी के समाधि मन्दिर में प्रवेश किया। वहां जाते ही वह ब्रह्मचारीजी देखते हैं कि भाईजी की समाधि के चारों ओर भूमि से कुछ ऊपर शून्य स्थान में ऋषि-मुनिगण गहन ध्यान में बैठे हैं। माँ जब ब्रह्मचारीजी का हाथ छोड़ देती थीं तो उन्हें यह सब दृश्य दिखायी देना बन्द हो जाता था। माँ के पुनः उनके हाथ पकड़ते ही वे सब फिर दिखने लगते थे। भाईजी के समाधि मन्दिर से बाहर निकलते ही ब्रह्मचारीजी ने माँ से यह बात कही। माँ ने कहा कि अच्छा तुमने यह देखा तो इतना जप इसी स्थान में बैठकर पूरा करो। जप संख्या करोड़ों में थी ओर वह उन्होंने पूरी की।

ऐसी अनेक घटनाएं हैं जब माँ ने बहुत दूर के स्थानों पर सूक्ष्म रूप से जाकर लोगों का दुःख-हरण किया या अपने भक्तों को असमय मृत्यु से उबारा। ऐसी ही एक घटना भाईजी के साथ उस समय घटी जब माँ रायपुर (देहरादून) आश्रम में थीं। भाईजी जून 1932 में रायपुर से ढाका जा रहे थे। वे वाराणसी में रेलगाड़ी से उतर गये और दोपहर के समय गंगास्नान के लिए गए। उस समय गंगा का वह घाट पूरी तरह से निर्जन था। जब उन्होंने गंगा नदी में पैर रखा तो उनका पांव फिसल गया और वे गहरे पानी में जाकर गिरे। वे जब डूबने ही वाले थे कि सहसा कोई घाट से उतरा और उन्हें डूबने से बचा लिया। बाद में जब वे रायपुर आश्रम लौट गए तो उन्हें पता चला कि घटना के दिन ठीक उसी समय माँ रायपुर आश्रम में अपने बिस्तर पर बैठे हुए जल से पूरी तरह भींग गई थीं। उनके सारे वस्त्र पूरी तरह से गीले थे और उनमें से ऐसे पानी टपक रहा था मानों वे नदी में नहाकर निकली हों। इस प्रकार की अनेक घटनाएं भक्तों को ज्ञात-अज्ञात हैं किन्तु इन सब का सम्पूर्ण विवरण कैसे रखा जा सकता है!

माँ की अव्यक्त की ओर लीला

10 अप्रैल 1982 को अगरतला, कोलकाता एवं वाराणसी की यात्रा पूर्ण कर श्री माँ कनखल पहुंची थीं। ये माँ की अंतिम लम्बी यात्रा थी।

बनारस में बिपिनेश्वर शिव मन्दिर संलग्न मामाजी के घर के पतले बरामदे में ही माँ रात में विश्राम किया। कई वर्षों से माँ बनारस आश्रम में रात्रि विश्राम करना छोड़ दिया था एवं मामाजी के घर के पतले बरामदे में देर रात केवल रात्रि-विश्राम के लिए ही आ जाती थीं। इसका कोई विशेष कारण अवश्य रहा होगा जिसे माँ ने कभी प्रकट नहीं किया।

कनखल आश्रम में आगमन के कुछ ही दिनों बाद 26 अप्रैल को माँ नवनिर्मित "मातृ निवास" में स्थानान्तरित हो गईं। यह मातृ निवास गंगा तट पर निर्मित किया गया था। मई 1982 में माँ का जन्मोत्सव इसी स्थान पर अप्रत्याशित भीषण तूफान और मूसलाधार वर्षा के बीच मनाया गया। इस अवसर पर श्री माँ के दर्शन करने के लिए अनेक महात्मा, गणमान्य लोग एवं भक्तों का समागम हुआ था।

16 जून 1982 को शरदा पीठ के श्रृंगेरी मठ के जगतगुरु शंकराचार्य अपने सैकड़ों शिष्यों के साथ माँ के दर्शन करने के लिए आए। उस समय माँ का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। शंकराचार्य ने माँ से अपने शरीर का ध्यान रखने एवं स्वास्थ्य को बेहतर रखने का विशेष अनुरोध किया, किन्तु माँ का ख्याल अब अपने मूल स्वरूप में लौटने की ओर था। माँ ने शंकराचार्यजी से कहा, "पिताजी, कोई रोग नहीं है। अव्यक्त की ओर खिंच रहा है।" कई महात्माओं ने श्री माँ से शरीर में बने रहने का अनुरोध एवं विनती की किन्तु उनका कोई परिणाम नहीं हुआ। शंकराचार्य को दिया गया माँ का जवाब इस बात की घोषणा थी कि माँ अब इस जगत को त्याग रही हैं।

माँ ने भोजन करना लगभग छोड़ दिया था तथा वे शनैः शनैः क्षीण हो रही थीं। माँ अव्यक्त की ओर लौट रही थीं। मातृ निवास में माँ करीब दो माह रुकीं और यह उनका कनखल आश्रम में अंतिम प्रवास था। 4 जुलाई 1982 को माँ को कनखल आश्रम से देहरादून में श्रीमती राजाबेन खेतान के निवास पर ले जाया गया। इस भवन का परिसर कल्याणवन आश्रम से लगा हुआ था एवं माँ के उपयोग के लिए पूर्व में निर्मित संगमरमर की कुटिया में माँ रुकी थीं। गुरु पूर्णिमा के पवित्र अवसर पर 6 जुलाई 1982 को वहां विशेष आयोजन किया गया था। माँ ने गुरु पूर्णिमा के अवसर पर भक्तों को एक दुर्लभ सन्देश दिया-- "अपनी पूर्ण पहचान की तलाश करो, गुरुदेव की कृपा सदैव तुम्हारे साथ है।"

ग्यारह जुलाई को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी अपने पुत्र राजीव एवं पुत्रवधू सोनियाजी के साथ माँ के दर्शन के लिए आयीं। इन्दिराजी माँ के बिगड़ते स्वास्थ्य को लेकर काफी चिन्तित लगीं। कुछ मिनटों के लिए माँ अपने बिस्तर पर बैठीं और उन्होंने इन्दिराजी से थोड़ी बात की। यह संभवत: अंतिम बार था जब माँ किसी को दर्शन देने के लिए अपने आप से बैठी थीं।

माँ की तबीयत दिन प्रति दिन बिगड़ रही थी। उन्हें 24 जुलाई की सुबह किशनपुर आश्रम में ले जाया गया। वे आंगन में रखी कुर्सी पर थोड़ी देर बैठीं और वहां से उन्हें सीधे पहली मंजिल पर स्थित उनके कक्ष में ले जाया गया। उस दिन के बाद से माँ कभी अपने कक्ष से बाहर नहीं आईं। कई महात्माओं, पुराने भक्तों और गणमान्य व्यक्तियों का माँ के दर्शन के लिए आना जारी रहा। डॉ. चेन्ना रेड्डी इनमें शामिल थे। उस समय वह पंजाब के राज्यपाल थे। माँ ने उनसे कहा, "जैसे हमेशा आते हो, वैसे अपना समझकर आते रहना।" संभवत: यह सभी भक्तों के लिए उनका अन्तिम सन्देश था।

प्रख्यात अनुभूति-सम्पन्न वृद्ध संत सीतराम बाबा ओंकारनाथजी को जब माँ की स्वास्थ्य स्थिति के बारे में सूचना मिली वे अपनी लगभग सौ वर्ष की आयु में कन्याकुमारी से लम्बी यात्रा कर जुलाई 1982 में स्वयं माँ से मिलने के लिए आए। उन्होंने माँ से आकर प्रार्थना की कि विश्व कल्याण के लिए माँ की शारीरिक उपस्थिति विशेष रूप से प्रयोजनीय है। किन्तु उनकी इस प्रार्थना का भी कोई प्रभाव नहीं हुआ। मुंबई से प्रख्यात अनुभवी एवं विशेषज्ञ चिकित्सक माँ के स्वास्थ्य की पड़ताल करने के लिए आए। काफी सतर्कतापूर्वक स्वास्थ्य जांच करने के बाद उन्होंने यह घोषणा की कि माँ के शरीर के किसी भाग में कोई अस्वस्थता या रोग नहीं है।

पच्चीस अगस्त को श्री माँ ने आश्रम में रह रहे और उनकी सेवा में निरत लोगों को संदेश दिया, "जो जहां है, बैठ जाने को कहो।" इस प्रकार माँ ने संकेत दिया कि जो जहां भी हैं वहीं साधना करने में लग जांय। आश्रम के स्वामी निर्मलानन्दजी ने माँ से पूछा-"किसके साथ अब जीवन व्यतीत करें?" इस पर माँ ने कहा, "भगवान के साथ, भगवान के साथ, भगवान के साथ।"

27 अगस्त 1982 को रात पौने आठ बजे माँ ने इस जगत से अपनी लीला सम्वरण कर ली। इस समय माँ की आयु 87 वर्ष चल रही थी। जो महान दिव्य प्रकाश पूरी मानवता को प्रकाशित कर रहा था वह अब नहीं रहा। अपनी परम आदरणीय विश्वजननी श्री श्री माँ के जाने की अपूरणीय क्षति के कारण भक्तगण बहुत ही दुखी हो गये क्योंकि जब भी वे परेशानी या चिन्ता में पड़ते थे तो माँ हर परिस्थिति में उनकी सुरक्षा करती थीं। इसके अतिरिक्त, आध्यात्मिक प्रगति में माँ का समुचित सहयोग तथा मार्गदर्शन एवं उनके अथाह स्नेह और कृपा से अब वे वंचित हो गए थे।

28 अगस्त को माँ की पार्थिव शरीर को सड़क मार्ग से हरिद्वार के कनखल आश्रम लाया गया तथा इस अवसर पर हजारों भक्त एवं महात्मा शामिल थे। सभी अखाड़ों के महामण्डलेश्वर एवं महन्तों ने माँ के पवित्र शरीर को अपना अन्तिम प्रणाम एवं श्रद्धा-सुमन व चादर निवेदित किया।

29 अगस्त को श्री माँ की पार्थिव शरीर का दर्शन करने के लिए विशाल जनता की भीड़ उमड़ पड़ी। पुलिस द्वारा सड़क के दोनों ओर बांस-बल्लियों से अवरोधक लगाए जाने के बाद भी भीड़ को नियन्त्रित करने में काफी कठिनाई हो रही थी। भारत के राष्ट्रपति ने अपने एडीसी को भेजकर माँ के प्रति अपने श्रद्धासुमन अर्पित करवाए। उसी दिन माँ को श्रद्धांजलि देने के लिए प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी, कई राज्यपाल, केन्द्रीय मंत्री, राज्य के मुख्यमंत्री सहित विभिन्न गणमान्य लोग आए।

श्री माँ के पवित्र पार्थिव शरीर को गायत्री यज्ञशाला के एक तरफ खुले स्थान में रखा गया था जहां महासमाधि करवाई जानी थी। उस स्थान पर एक पीपल वृक्ष था जिसके नीचे बैठकर कई अवसरों पर माँ ने भारत एवं विश्व के विभिन्न भागों से आए असंख्य भक्तों को दर्शन दिए थे। महानिर्वाणी अखाड़े के महन्तजी तथा माँ के आश्रम एवं अन्य आश्रमों के विभिन्न महात्मा माँ की पार्थिव देह का महासमाधि देने के अवसर पर उपस्थित थे। वेद मन्त्रोच्चारण एवं कीर्तन के साथ संगमरमर से बनायी गयी समाधि के भीतरी हिस्से में माँ के पवित्र शरीर को सदा के लिए रखा गया एवं नमक व मृत्तिका डालकर पत्थर के स्लेब से ढंक दिया गया।

हरिद्वार से दिल्ली लौटने से पहले श्रीमती इन्दिरा गांधी बहुत



खेवड़ा (बांगलदेश) में श्री श्री माँ का पवित्र जन्म स्थल



किशनपुर (देहरादून) में माँ आनन्दमयी आश्रम जहाँ माँ ने अपना शरीर त्यागा था

व्यथित थीं और उन्होंने कहा कि उनकी स्वयं की माता के बहुत पहले निधन के बाद उन्होंने दूसरी बार अपनी माँ को गंवाया है।

"समाधि" पर भव्य मन्दिर बनाने के कई प्रस्ताव आए। तथापि, इन्दिराजी द्वारा अनुमोदित की गई डिजाइन पर अंततः निर्माण शुरू हुआ। आधार शिला रखने के अवसर पर इन्दिराजी उपस्थित थीं तथा उन्होंने एक ईंट स्वयं भी रखी थी। समाधि पर 87 फुट ऊंचा शिखर सहित सफेद संगमरमर का विशाल भव्य मन्दिर निर्मित किया गया। मन्दिर का नाम "आनन्दमयी महाज्योति पीठम्" रखा गया। इंदिराजी के दुखद निधन के बाद उनके पुत्र श्री राजीव गांधी भारत के प्रधानमंत्री बने। उन्होंने भी मन्दिर के निर्माण में काफी सहायोग प्रदान किया।

सन् 1987 में अक्षय तृतीया के पावन अवसर पर महात्माओं की उपस्थिति में मन्दिर का उद्घाटन हुआ। उसके बाद से समाधि पर सुबह एवं संध्या को प्रतिदिन पवित्रता एवं श्रद्धा के माहौल में माँ की पूजा सम्पन्न की जाती है। अनेक तीर्थयात्री एवं भक्त मन्दिर में नित्य आते हैं। सन् 2013 में माँ के मन्दिर की विशेष मरम्मत व नवीकरण करवाई गई थी।

वर्ष में चार अवसरों पर सभी भक्तों को पंक्ति में एक एक कर समाधि के भीतरी स्थल पर जाने की अनुमति दी जाती है। ये चार अवसर हैं--

(1)- मई माह में प्रातः काल माँ की जन्मतिथि-पूजा के बाद,
(2)- जुलाई में गुरुपूर्णिमा के अवसर पर प्रातः-कालीन पूजा के बाद,
(3)- अक्तूबर माह में विजयादशमी को शाम की पूजा व आरति के बाद
(4)- नवंबर में संयम सप्ताह पूर्ण होने की अगली सुबह पूजा के बाद।

यद्यपि हमने माँ की भौतिक उपस्थिति को खो दिया है किन्तु उनकी दिव्य उपस्थिति हर समय हमारे साथ है। श्री माँ की यह अमर वाणी उनके सभी भक्तों के लिए सांत्वना का महास्रोत है--"मेरा आना भी नहीं होता है, जाना भी नहीं।" विश्वजननी सदा से हैं, हमारे लिए सदैव रहेंगे।

उपसंहार

माँ का जीवन चरित्र लिखना सागर को गागर में भरने के प्रयास के समान है। मातृ लीला का नगण्य-सा अंश ही प्रकाशित हो पाया है। विरले ही लोग श्री माँ की उपस्थिति के अनन्त महत्व में से कुछ ही समझ पाने में समर्थ थे। स्वयं अपने बारे में माँ ने मौन साधे रखना ही पसन्द किया था। माँ ने अपने वास्तविक स्वरूप की पहचान को कभी प्रकट नहीं किया। माँ ने जिज्ञासु के समक्ष अपने को वहीं तक प्रकाशित किया जितना उसकी अपनी आध्यात्मिक अवस्था और प्रगति के अनुरूप जानने की क्षमता थी। शब्दों में माँ को व्यक्त करना सम्भव नहीं है।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से साधना लीला के दौरान श्री माँ में जितनी क्रियाएं हुई थीं वे सब आध्यात्मिक जगत एवं पूर्ण मानवता के लाभ के लिए स्वतःस्फूर्त प्रस्फुटन था। अन्यथा पूर्ण ज्ञान के साथ जन्म लेने वाली माँ को साधना की क्या आवश्यकता थी? मानवता के प्रति उनकी कृपा का कोई भी विवरण देना असम्भव है। माँ कहती थीं-''जंगलों में फल के वृक्षों से कितने फल जमीन पर गिरते जाते हैं किसको खबर।'' श्री श्री माँ ने कितने रोगियों की रोग पीड़ा को अपने पर ले लिया, कितने शोकाकुल भक्तों के शोक को अपने में समा लिया, कितनों को आसन्न विपदा से बचा लिया, कितनों की निश्चित मृत्यु को टाल दिया, कितनों को मोक्ष प्रदान किया...आदि का विवरण भला कौन दे सकता है। माँ के अविराम कृपा वर्षा में से हम लोगों ने कितना पाया, यह मात्र माँ ही जानती हैं। माँ ने जितना जानने दिया, हम केवल उतना ही जान पाए हैं। सम्भवतः शुकदेव जैसे कोई आत्मज्ञानी महापुरुष ही माँ की प्राकृतिक एवं आप्राकृतिक लीलाओं के विषय में यथेष्ठ प्रकाश डाल सकते हैं।

सम्पूर्ण मानवता पर माँ का सबसे बड़ा वरदान यही है कि वह स्वयं हमारे बीच आईं। एक बार गुरुप्रिया दीदी ने उन भक्तों के बारे में गहरी चिंता जताई जो माँ के महाप्रयाण के बाद आएंगे। इस पर माँ ने आश्वासन दिया था कि जो आएंगे और माँ को देखेंगे अथवा जो माँ का केवल फोटोग्राफ देखेंगे या उन्हें एक बार भी स्मरण कर लेगें, उनका कभी पतन नहीं होगा। उन्होंने कृपा कर ऐसे सभी के लिए कितना बड़ा

आश्वासन दिया है!

माँ कभी देश, काल या परिस्थिति से नहीं बंधीं। उन्होंने अपने स्वतः प्रस्फुटित ''ख्याल'' के अनुसार लीला की। उनके लिए कुछ भी अज्ञात नहीं था। उन्हें ब्रह्माण्ड के हर प्राणी के भूत, वर्तमान एवं भविष्य के बारे में पूर्ण ज्ञान था। माँ हर स्थान पर व्याप्त हैं। माँ कहती थीं कि उन्हें करवट बदलने की भी जगह नहीं है। वह प्रायः प्रवचन नहीं देती थीं। जिज्ञासुओं को व्यक्तिगत रूप से उनकी स्वयं की क्षमता एवं सीमितताओं के अनुरूप मार्गदर्शन करना पसंद करती थीं।

माँ ने कहा था-''इस शरीर की सभी क्रियाएं तुम्हारी आवश्यकताओं के अनुसार स्वतः हो रही हैं।'' स्थान, काल एवं पात्र के अनुसार जो भी सबसे अधिक अनुकूल होता था, तदनुसार क्रियाओं का सम्पादन स्वतः माँ से हो जाता था। माँ के ये कर्म हमारी भलाई के लिए ही होते थे तथा माँ की ओर से इसमें कोई कमी या त्रुटि की तनिक भी सम्भावना नहीं होती थी। उनके सारे कर्म उनके ''ख्याल'' का परिणाम होते थे जिसमें उनकी दिव्य प्रेरणाओं में उनका अपना कोई प्रोत्साहन नहीं होता था। वे सदैव यह चाहती थीं कि सभी प्राणी शीघ्रता से अपने आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर हों तथा जन्म-मृत्यु के चक्र वाले सुख एवं दुख से भरे सांसारिक जीवन से मुक्ति पाएं।

श्री माँ की अपने बच्चों पर शाश्वत कृपा एवं करुणा, इन शब्दों में स्पष्ट होती है-''उठो एवं जागो, अपनी दृष्टि ईश्वर की ओर डालो जो अनन्त काल के साथी के रूप में तुम्हारे में मौजूद हैं एवं जो तुम्हारे आध्यात्मिक प्रयासों का लक्ष्य हैं। अपनी सम्पूर्ण शक्ति के अनुसार तुम कार्य एवं अभ्यास करो। उसके बाद जितना रह जायेगा मैं पूर्ण कर दूंगी - अरे, माँ पूर्ण कर देगी।''

विश्व के उस उच्चतम अस्तित्व--हमारी प्रेमास्पद माँ के चरणों में हमारा सश्रद्ध प्रणाम।

------- 0 -------

आश्रम का संध्या कीर्तन

श्री मातृका ध्यान

ॐ धृत-सहज-समाधिं विभ्रतीं हेमकान्तिं
नयन-सरसिजाभ्यां स्नेहराशीन् किरन्तीम्।
मनसि कलितभक्तिं भक्तमानन्दयन्तीं
स्मितजितशरदिन्दुं मातरं धीमहीह ॥ 1 ॥
तपन-शकल-कल्प कल्पवृक्षोपमानं
शरणागतजननां तारकं क्लेशपाशात्।
हृदय-कमलमध्ये स्थापयित्वेह मातुः
विहितविविधकल्पं पादपीठं भजामः ॥ 2 ॥

माँ का संध्या कीर्तन (रचना - भाईजी)

(जय) हृदय-वासिनी शुद्धा सनातनी (श्री)आनन्दमयी माँ ।
भुवन उज्ज्वला जननी निर्मला पुण्य-विस्तारणी माँ ॥
राजराजेश्वरी स्वाहा स्वधा गौरी प्रणव-रूपिणी माँ ।
सौम्या सौम्यतरा सत्या मनोहरा पूर्णपरात्परा माँ ॥
रविशशिकुण्डला महाव्योमकुन्तला विश्वरूपिणी माँ ।
ऐश्वर्य्यभातिमा माधुर्य्यप्रतिमा महिमामण्डिता माँ ॥
रमा-मनोरमा शान्ति-शान्ता-क्षमा सर्वदेवमयी माँ ।
सुखदा वरदा भक्ति-ज्ञानदा कैवल्यदायिनी माँ ॥
विश्व प्रसविनी विश्व-पालिनी विश्व-संहारिणी माँ ।
भक्त-प्राणरूपा मूर्तिमति कृपा त्रिलोकतारिणी माँ ॥
कार्य्यकारणभूता भेदाभेदातीता परमदेवता माँ ।
विद्याविनोदिनी योगिजनरञ्जिनी भवभयभञ्जिनी माँ ॥
मन्त्रबीजात्मिका वेद-प्रकाशिका निखिल व्यापिका माँ ।
सगुणा सरूपा निर्गुणा निरूपा महाभावमयी माँ ॥
मुग्ध चराचर गाहे निरन्तर तव गुणमाधुरी माँ ।
(मोरा) मिलि प्राणे प्राणे प्रणमि श्रीचरणे जय जय जय माँ ॥

डाको माँ माँ माँ माँ माँ माँ
बलो माँ माँ माँ माँ माँ माँ
भजो माँ माँ माँ माँ माँ माँ
जपो माँ माँ माँ माँ माँ माँ
गाहो माँ माँ माँ माँ माँ माँ
डाको बलो गाहो भजो जपो माँ माँ

माँ का प्रणाम मन्त्र

ॐ भवताप प्रणाशिन्यै आनन्द घन मूर्तये ।
ज्ञान भक्ति प्रदायिन्यै मातस्तुभ्यं नमो नमः ।

माँ आनन्दमयी के बारे में हिन्दी में प्रकाशित कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें

- **मातृ दर्शन :** लेखक भाईजी (ज्योतिषचन्द्र राय)
- **मातृवाणी :** लेखक भाईजी (ज्योतिषचन्द्र राय)
- **श्री श्री माँ आनन्दमयी :** लेखिका गुरुप्रिया दीदी
- **श्री श्री माँ आनन्दमयी प्रसंग :** लेखक अमूल्यकुमार दत्तगुप्त
- **माँ आनन्दमयी :** लेखक डॉ. पन्नालाल
- **अमृतकथा :** लेखक भाईजी (ज्योतिषचन्द्र राय)
- **अमर वाणी :** संकलन एवं व्याख्या डॉ. गोपीनाथ कविराज
- **वांग्मयी माँ :** माँ के वचनों का संकलन

माँ के राज्यवार स्थापित आश्रम व वहां के टेलीफोन / मोबाइल नम्बर

प्रदेश	स्थान	टेलीफोन / मोबाइल नंबर
1. बिहार	1. राजगीर	06112-647590,09359215567-
2. दिल्ली	2. नयी दिल्ली	011-26826813
3. गुजरात	3. भीमपुरा	02663-233208/233782
4. झारखण्ड	4. जमशेदपुर	0657-2306245
	5. रांची	0651-2331181
5. मध्य प्रदेश	6. भोपाल	0755-2641227
6. महाराष्ट्र	7. पुणे	020-5537835
7. उड़ीसा	8. पुरी	06752-223258
8. उत्तराखण्ड	9. अल्मोड़ा	05982-233120
	10. धवलछीना (अल्मोड़ा)	05962-262013
	11. किशनपुर (देहरादून)	0135-2734271
	12. कल्याणवन (देहरादून)	0135-2734471
	13. रायपुर (देहरादून)	09359
	14. कनखल	01334-312565 / 212025
	मुख्यालय (हरिद्वार)	246575 / 244776
	15. केदारनाथ	01364-261219 (पी.पी.)
	16. उत्तरकाशी	01374-224343
9. उत्तर प्रदेश	17. नैमिषारण्य	
	अ. आश्रम	05865-251369
	ब. पौराणिक संस्थान	05865-251249
	18. वाराणसी	
	अ. आश्रम	0542-2310054
	ब. कन्यापीठ	0542-2311794
	स. अस्पताल	0542-290977
	19. विंध्याचल	05442-290977
	20. वृंदावन	
	अ. आश्रम	0565-3442024
	ब. वर्धमान कुंज	09456418375 (पी.पी.)
10. पश्चिम बंगाल	21. अगरपाड़ा(कोलकाता)	033-25531208
	22. तारापीठ	094344008381 (पी.पी.)
11. त्रिपुरा	23. अगरतला	0381-2208618/2221298
12. बांग्लादेश	24. सिद्धेश्वरी (ढाका)	008802-405266
	25. खेवड़ा	0088-1711619798 (पी.पी.)

माँ आनन्दमयी महाज्योति पीठम् मंदिर
कनखल, हरिद्वार

